वसन्त त्रयम्बक शेवडे कृत
"शुम्भवध-महाकाव्यम्" का साहित्यिक अध्यय
VASANT TRYMBAK SHEVDE KRIT SHUMBH VADH-MAHAKAVYAM KA SAHITYIK-ADHYAYAN

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल् उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशिका :
डॉ० (श्रीमती) मञ्जुला जायसवाल
एम० ए० डी० फिल्०, डी० लिट्०
रीडर संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद,

शोधकर्ता :
प्रेम शङ्कर मिश्र
एम० ए० (संस्कृत)

संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
2002

विषयानुक्रमणिका

	अध्याय		पृष्ठाङ्क
1	भूमिका		01
2	प्रथम अध्याय	महाकवि का जीवनवृत्त एवं रचनाए	09
3	द्वितीय अध्याय	महाकाव्य की कथावस्तु, मूल, मूल से परिवर्तन, परिवर्तन का प्रयोजन, तथा महाकाव्यत्व के सिद्धि के प्रमाण।	23
4	तृतीय अध्याय	महाकाव्य में सन्धि - सन्ध्यङ्ग विवेचन	65
5	चतुर्थ अध्याय	महाकाव्य में पात्र विवेचन	90
6.	पञ्चम अध्याय	महाकाव्य में अलंकार एवं छन्द योजना	116
7.	षष्ठ अध्याय	महाकाव्य में गुण, रीति, वृत्ति विवेचन	157
8.	सप्तम अध्याय	महाकाव्य में रस विवेचन विमर्श	181
9	अष्टम अध्याय	महाकवि की भाषा शैली एवं अन्य महाकवियों का महाकवि पर प्रभाव	201
10.	नवम अध्याय	महाकवि का कवित्व एवं पाण्डित्य	242
11	परिशिष्ट	1 महाकाव्य के अन्य चित्रण 2 महाकाव्य के अन्य वैशिष्ट्य 3 महाकाव्य की मुख्य सूक्तियाँ	
12	उपसंहार		265

****

भूमिका

सरस्वतीं प्रणम्यादौ, ब्रह्माविष्णुमहेश्वरान्
गणाधिप च नमस्कृत्वा कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ।।
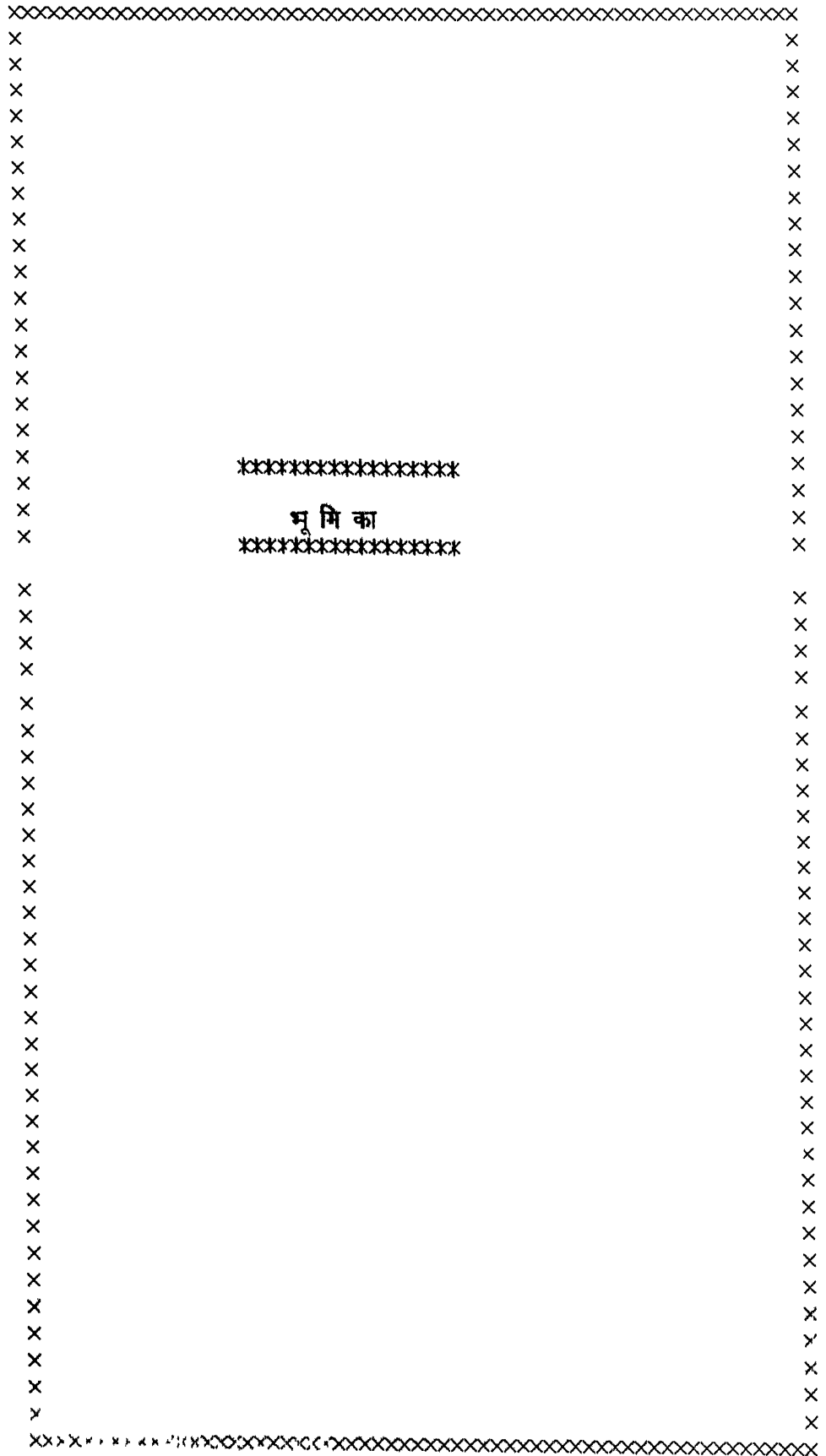
मेरे मन में हमेशा से इच्छा रही है कि शिक्षा के क्षेत्र मे आगे बढ़ने। की जब मैंने इण्टरमीडिएट की परीक्षा के0वी0एम0 इण्टर कालेज, कमला नगर, इलाहाबाद से 1988 में पूर्ण किया तो उच्च शिक्षा के लिए मात्र इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद में प्रवेश परीक्षा फार्म भरा। विधाता की कृपा से प्रवेश प्रीक्षा उत्तीर्ण करके बी0ए0 में नामांकन कराया। आर्थिक स्थिति दयनीय होने से विश्वविद्यालय प्रशासन ने बी0ए0 तक शुल्क मुक्त कर दिया। पुन. एम0ए0 में सरोजवासिनी ट्रस्ट से मुझे एक वर्ष छात्रवृत्ति भी दी गयी।

भावी प्रबल होती है। मैं बी0ए0 के बाद शिक्षा बन्द करना चाहता था, परन्तु उस समय श्री लक्ष्मीशंकर ओझा (भू0पू0 अध्यक्ष छात्रसघ इलाहाबाद विश्वविद्यालय) ने मुझे एम0ए0 के लिए बहुत ही प्रेरित किया।

एम0ए0 करने के बाद मेरी इच्छा शोध करने की हुई, उस समय उचित अवसर पर आज वे प्रशंसा के पात्र हैं प्रो0 श्री सुरेश चन्द्र पाण्डेय महोदय जी, जिन्होंने मुझे शोध करने की प्रेरणा दी। मैं उन्हीं के निर्देशन में शोध करना चाहता था, परन्तु उनसे मुलाकात न होने से संयोगवश एक बार डा0 श्री रूद्रकान्त मिश्र महोदय जी से भेंट हुई, मैंने चर्चा किया और वे स्वयं शोध निर्देशन के लिए तैयार हो गये। शोध के विषय हेतु मेरा सहयोग मेरे ही साथ में शोध कर रहे श्याम बहादुर दीक्षित जी का रहा। हम दोनों श्री पाण्डेय जी से मिलकर शोध विषय प्राप्त किया। मेरा विषय मिला - वाल्मीकीय रामायण में सुन्दरकाण्ड का साहित्यिक अध्ययन। परन्तु

तत्कालीन विभागाध्यक्ष डा० श्रीमती ज्ञान देवी श्रीवास्तव जी ने किसी कारणवश निरस्त कर दिया और पुन: श्री पाण्डेय महोदय जी से मिलकर वसन्त त्रयम्बक शेवडेकृत "देव देवेश्वर महाकाव्य का साहित्यिक अध्ययन" विषय का चयन किया। जिसकी पुस्तक इलाहाबाद में अप्राप्त थी। सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय, वाराणसी गया, वहां पर मुझे विश्वविद्यालय के पुस्तकालय मे बड़े सम्मान के साथ मेरा शोध के नाम पर सहयोग दिया गया परन्तु वहां भी यह पुस्तक अप्राप्त लगी, वहीं एक बैठे हुए वहां के भूतपूर्व छात्र ने "शुम्भवध महाकाव्य" की सलाह दिया। मैं चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी गया, जहां मुझे शुम्भवध महाकाव्य की पुस्तक प्राप्त हो गयी। वहां से लेकर विभागाध्यक्ष के पास आया, उन्होंने स्वीकृति दे दिया और डा० श्री रूद्रकान्त मिश्र महोदय के निर्देशन में मेरा शोध कार्य चलता रहा। अनेकानेक बाधाओं और कठिनाईयों के दौर से गुजरता हुआ मैं शोध कार्य करता रहा। शोध कार्य पूर्ण होने को हो रहा था, तभी दुर्भाग्यवश डा० श्री रूद्रकान्त जी हम सबको छोडकर असामयिक रूप से परमधाम को चले गये। जून में फोन करने पर पता चला कि डा० साहब स्वर्गवासी हो गये। आज के युग में श्री मिश्र जी जैसे स्वभाव वाले हंसमुख व्यवहार कुशल शिष्यों से पुत्रवत् व्यवहार करने वाले, हर किसी कार्य में हर किसी का सहयोग करने वाले, भारतीय संस्कृति और संस्कृत भाषा के पक्षधर व्यक्ति का नितान्त अभाव हो गया है।

उसी समय उचित अवसर पर नाविक विहीन नौका को पार करने वाली डा० श्रीमती मञ्जुला जायसवाल महोदया जी का सहयोग मिल गया। जिन्होंने अथक प्रयास करके मेरा शोध कार्य सम्पन्न कराने में अतुलनीय

सहयोग दे रही हैं। डा0 श्री मिश्र जी का निधन अत्यधिक दुःखदायी रहा। मैंने तो सोचा किसी अच्छे निर्देशक के अभाव में मेरा शोध कार्य बाधित हो सकता है, परन्तु विधाता ने डा0 श्रीमती जायसवाल महोदया जी से स्वीकृति दिला दी जो मातृवत् व्यवहार करने वाली अपने घर का सदस्य मानती हुई हर समय सहयोग प्रदान करने वाली हैं। जिनके सहयोग से शोध प्रबंध प्रस्तुत करता हूं, जिसका विषय है -"वसन्त त्रयम्बक शेवडे कृत शुम्भवध महाकाव्य का साहित्यिक अध्ययन" जिसका संक्षेप इस प्रकार है।

इस महाकाव्य में 14 सर्ग हैं और 816 श्लोक हैं। इसमें देवी भागवत में वर्णित शुम्भ और निशुम्भ आदि दैत्य सम्राटों के वध का वर्णन है। जैसे -

(1) प्रथम सर्ग में शुम्भ और शुक्राचार्य से दैत्य - देवता के विरोध पर वार्ता और नीतिगत कथनों का प्रयोग है। बीच मे समुद्र मन्थन से लेकर हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु वध और "वामन-बलि" की कथा भी है। अन्त में दोनों, शुम्भ और निशुम्भ दिग्विजय के लिए तैयारी करते हैं।

(2) द्वितीय सर्ग में सेना की तैयारी है, जिसमें शरद ऋतु का वर्णन है।

(3) तृतीय सर्ग में सेना प्रस्थान और रास्ते में पड़ाव डालने का वर्णन है।

(4) चतुर्थ सर्ग में पृथ्वी लोक पर शुम्भ विजय प्राप्त करके चक्रवर्ती सम्राट् बन बैठता है।

(5) पांचवें में नाग, गंधर्व, यक्ष और देवलोक के जीतने का वर्णन है और शुम्भ से हारकर देवता देवी के पास शुम्भ के वध के लिए जाते हैं।

(6) छठें सर्ग में हिमालय वर्णन है। देवता देवी की स्तुति के लिए हिमालय पर जाते हैं जहां गंगा का दर्शन होता है वहीं पर मां जगदम्बा की स्तुति करते हैं। उसके बाद हिमालय पर्वत पर मां जगदम्बा से मिलने जाते हैं।

(7) सातवें सर्ग में देवी का शिव सहित दरबार लगता है, मा शिव के साथ सिंहासन पर विराजमान रहती हैं। देवताओं से मन्त्रणा करके नन्दिकेश्वर को दूत बनाकर शुम्भ के पास भेजा जाता है। शुम्भ भी सुग्रीव को दूत बनाकर देवी के पास भेजता है। सुग्रीव शिव से प्रभावित होकर सन्देश कहकर चला जाता है।

(8) आठवें सर्ग में बसन्त वर्णन है। शुम्भासुर का दण्डाधिकारी धूम्रलोचन स्वयं दुर्गा को पकड़ लाने के लिए दैत्य सम्राट से निवेदन करता है। शुम्भासुर आदेश देता है।

(9) नवें सर्ग में धूम्रलोचन हिमालय पर्वत पर चढ़ायी करता है। जब देवी प्रतिज्ञा बताती हैं कि जो उन्हें युद्ध में जीत लेगा

वही उनका पति होगा। तो वह देवी को पकड़ने दौड़ता है देवी हुंकार मात्र से उसको भस्म कर देती हैं। वह भस्मसात् हो जाता है।

(10) दशमें में चण्डमुण्ड आते हैं। जिनका वध देवी के द्वारा होता है।

(11) एकादश में रक्तबीज का वध होता है।

(12) द्वादश में निशुम्भ का वध होता है।

(13) तेरहवें में अन्त में शुम्भासुर का वध हो जाता है।

(14) शुम्भ वध के बाद देवता देवी की स्तुति करते हैं। देवी सबको अपने अधिकार के अनुरूप रहने का आदेश देती है और पुनः दैत्यों द्वारा कष्ट मिलने पर पुनः अवतार लेने की बात कहकर अर्न्तध्यान हो जाती हैं। यहीं पर सर्ग समाप्त होता है और महाकाव्य भी सम्पन्न हो जाता है।

शुम्भवध महाकाव्य वीररस प्रधान और श्रृंगार रस विहीन महाकाव्य है। वैदर्भी रीति में रचित माधुर्य ओज और प्रसाद गुण से सम्पन्न है। जिसमें प्रसाद गुण की प्रधानता है। उपमा, उत्प्रेक्षा, परिकर तथा अनुप्रास अलंकारों की बहुलता है। सरल, सरस एवं सुमधुर तथा स्वल्प समास युक्त पदावली का प्रयोग है।

अब हम उन सभी व्यक्तियों के प्रति आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने मेरे इस शोध जैसेसर्वोत्तम कार्य में मेरा सहयोग दिया है।

सर्वप्रथम हम अपने परम आदरणीय गुरूश्रेष्ठ प्रो0 श्री सुरेश चन्द्र पाण्डेय महोदय के प्रति आभार व्यक्त करते हैं जिन्होंने बी0ए0 से लेकर शोध कार्य तक और आज तक मेरा सहयोग देते रहे हैं और आवश्यकता पड़ने पर मार्गदर्शन भी करते रहे हैं। उसके बाद हम डा0 श्री रूद्रकान्त मिश्र महोदय की स्मृति में अपना श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं, जिनका स्मरण होने पर आज भी असहनीय दुःख होता है। उसके बाद विभाग के सभी गुरूजनों को आभार व्यक्त करते हैं तथा विभाग के एक-एक कर्मचारी के प्रति आभार व्यक्त करते हैं। विश्वविद्यालय के पुस्तकालय विभाग के प्रति भी आभार व्यक्त करते हैं। तत्पश्चात् मैं अपनी निर्देशिका डा0 श्रीमती मञ्जुला जायसवाल महोदया के चरण कमल में बार-बार नतमस्तक होकर प्रणाम करता हूं जिन्होंने मुझे अमूल्य समय और अपना योगदान दिया है और आगे भी सहयोग देने को कहा करती हैं। हम डा0 श्री जय कृष्ण त्रिपाठी (धासी टोला, चौखम्भा, वाराणसी) को धन्यवाद एवं आभार देते हैं, जिन्होंने शेवडे जी के बारे में जीवन परिचय से लेकर अन्य आवश्यक सामग्रियां तथा सहयोग प्रदान किये हैं।

तत्पश्चात् मैं अपने इष्ट मित्रों में सर्वप्रथम अपने सहपाठी मित्र श्याम बहादुर दीक्षित को आभार व्यक्त करते हैं, जिन्होंने मेरा हर परिस्थिति में सहयोग दिया है और समय-समय पर अनेकों पुस्तकों इत्यादि का सहयोग प्रदान किया है और आज भी सहयोग देते रहे हैं। श्रीमती रेखा शुक्ला (शोधरत छात्रा गंगानाथ झा केन्द्रीय अनुसंधान संस्थान) को

आभार प्रदर्शित करते हैं जिन्होंने मुझे शोध के पहले और आज भी प्रेरित किया करती हैं और समय - समय पर मेरा सहयोग देती रही हैं। सबसे अधिक आभार तो हम अपने मामा श्री राम दुलार दुबे के प्रति व्यक्त करते हैं जिनके यहां निवास करते हुए जन्म से लेकर आज उन्हीं के खर्चे पर जीवन निर्वाह करते आ रहे हैं। यदि उनका हर प्रकार का सहयोग न होता तो शायद आज मैं अशिक्षित ही रहता।

इसके अतिरिक्त मैं उन अपनी कुलपूज्य देवी दुर्गा, देवी काली और देवता बजरंग बली के प्रति मेक मनाता हूं, जिन्होंने समय-समय पर स्वप्न देकर या मन में आदेश देकर अपनी कृपा कटाक्ष से अभिसिंचित किया है, जिनकी छाया एवं कृपा मेरे ऊपर हर वक्त रहा करती है। जहां भी जो कार्य करने जाता हूं, असफल नहीं होता।
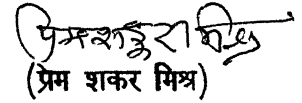
आज मुझ पर मां दुर्गा की कृपा ही कहा जाय या पूर्व जन्म का शायद कुछ पुण्य था जिससे कि शेवडे जी ने दुर्गा भक्ति पर महाकाव्य लिखा और मैं ढूंढ़ने दूसरा महाकाव्य गया और मिल गया दूसरा। इसीलिए देवी के भक्त द्वारा देवी की भक्ति पर लिखा गया शुम्भवध महाकाव्य देवी के ही अज्ञानी सेवक को सर्वप्रथम समीक्षा करने को मिला।

अन्त में मैं (प्रेम शंकर मिश्र) उन सभी के प्रति आभार व्यक्त करता हूं जिन्होंने मेरा थोड़ा सा भी सहयोग किया या उन पाठकों के ऊपर भी आभार प्रदर्शित है, जो आगे मेरे द्वारा लिखित शोध प्रबंध का अध्ययन करेगें। अतः हम पाठकों से करबद्ध निवेदन करते हैं कि इस शोध प्रबंध

मे कमियाँ अवश्य होंगी, क्योंकि दोष सबमे होता है ससार मे कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है जो दोष विहीन हो । गुण और दोष व्यक्ति मे एक सिक्के के दो पहलू के बराबर है । जहाँ गुण रहेगा वहाँ दोष रहेगा, जहाँ दोष रहेगा वहाँ गुण रहेगा । इस लेख को पूर्ण करने मे मैने अपनी समस्त इन्द्रियो एव मस्तिष्क का पूर्णरूप से प्रयोग किया है, फिर भी यदि मेरे इस लेख मे कोई त्रुटि लेखन अथवा टंकण में पाई जाती है, तो मे क्षमा प्रार्थी हू । इसी के साथ में यह कहता हूं कि साहित्य, शिक्षा और ज्ञान तथा दोषो का भी अन्त नहीं है ।

सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे न्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु कश्चित् मा दु खा भाग् भवेत् ।।

गुरुजनाऽज्ञावशबद

(प्रेम शकर मिश्र)
एम0 ए0 "संस्कृत"
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

प्रथम अध्याय

(महाकवि का जीवन वृत्त)

एवं

रचनाएं

*****

(महाकवि का जीवन वृत्त एव रचनाए)

शुम्भवध के रचनाकार श्री शेवडे जी के जीवन परिचय मे हमे कोई शका नहीं होती जितना कि अन्य महाकवियो के बारे मे संदेहास्पद होना पडता है ।

देखा जाय तो शायद वे भारतीय इतिहास मे उत्तरकालिदास समझे जाने वाले पहले संस्कृत के महाकवि हैं, जिनका कि जीवन परिचय पूरे विस्तार से प्राप्त होता है ।

इनकी सभी प्राप्त रचनाओं मे वश सहित इनका उल्लेख मिलता है । शुम्भवध महाकाव्य मे इनका जीवन परिचय महाकाव्य के सम्पादक डा0 श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी जी ने दिया है[1], जिनके यहाँ रहते हुए इन्हे ससार से मुक्ति मिली । अब हम उपर्युक्त "महाकाव्य रचयितु: परिचय" नामक शीर्षक के अन्तर्गत इसकी विस्तृत झाकी इस प्रकार प्रस्तुत की गई है -

लोकोत्तर चरित्रवाले सज्जनों, विशिष्ट विद्वानो और महाकवियो का जन्म सासारिक लोगो मे किसी श्रेष्ठता के लिए ही हुआ करता है, ऐसे ही पुण्य चरित्र वालो मे अन्यतम (श्रेष्ठतम) स्थान है महाकवि शेवड़े महाशय का, यह विद्यानिधि महाराष्ट्र के अन्तर्गत सतारानगर में पैदा हुए ।

यह नगर गाय - ब्राह्मण की रक्षा करने वाले क्षत्रियकुलोत्पन्न छत्रपति शिवाजी महाराज के वंशजों की राजधानी के रूप मे चिरकाल से सुशोभित हो रहा था । क्षत्रियकुल के कर्णाभूषण स्वरूप छत्रपति की सभा से शेवडे कुलोत्पन्न लोग

---

1 शुम्भवध महाकाव्य काव्यम् प्रकाशित सस्करण 1983, चोखम्भा प्रकाशन

सम्मानित स्थान प्राप्त करने वाले और राजनीति मे कुशल थे, यह सुविदित है । उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे आपस मे कलह से क्षीण बल वाला मराठा साम्राज्य कथा शेष को प्राप्त हो गया था । बचे हुए लोगो ने अंग्रेजों की अधीनता स्वीकार कर ली थी ।

1848 ई0 मे सबसे बाद के छत्रपति श्री शाह जी महाराज अप्पा साहेब महोदय स्वर्ग को चले गये और सपुत्र विहीन अप्पा साहेब महाराज ने अपने राज्य सञ्चालन के लिए किसी को दत्तकपुत्र स्वीकार कर लिया था, किन्तु उस समय के गर्वनर जनरल पद पर प्रतिष्ठित "लार्ड डलहोजी" ने उत्तराधिकार को स्वीकार नहीं किया । इस प्रकार सतारा राज्य विपन्न (असहाय) हो गया । उसके बाद पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त करने वाले शेवडे महोदय के पितामह मध्य प्रदेश मे राजकीय विद्यालय में प्रधानाध्यापक रूप से नियुक्त हुए । उस समय शेवडे वंश वाले प्राचीन मध्य प्रदेश (जो आज कल महाराष्ट्रान्तर्गत स्थित) विदर्भ के निवासी होते थे । श्री शेवड़े के पिताजी श्री त्रयम्बक लक्ष्मण शेवडे महोदय बी ए, एल एल बी की उपाधि को प्राप्त कर के और अधिवक्ता पद को अच्छी तरह अलङ्कृत कर के प्रारम्भ मे अमरावती नगरी और बाद मे नागपुर मे व्यवहाराजीव कार्य प्रारम्भ किया । ये मेधावी और प्रतिभा सम्पन्न थे । इसलिये कुछ समय बाद वह महाधिवक्ता पद (एडवोकेट जनरल) और बाद में न्यायमूर्ति (हाईकोर्ट जज) पद को ससम्मान प्राप्त किया । शेवडे की माता का नाम "विमलाबाई" था । इन्होंने बाईनगर मे स्थित 'बखाले' कुल मे जन्म प्राप्त किया । शेवड़े महोदय के नाना श्री सदाशिव रामचन्द्र बखाले महाशय मुम्बापुरी (बम्बई बाद में मुम्बई) में स्थित उच्च न्यायालय मे रव्यात नामक अधिवक्ता (एडवोकेट) थे ।

श्री शेवडे जी का जन्म मुम्बापुरी में 02 अक्टूबर सन् 1917 ई0 (02-10-1917 ई0) में उनके नानी के घर मे हुआ था । आपकी प्रारम्भिक शिक्षा अमरावती में और बाद की शिक्षा नागपुर में पूर्ण हुई थी । आपने 1941 में नागपुर विश्वविद्यालय से एम ए की परीक्षा सम्मान सहित उत्तीर्ण किया। आपके माता पिता का कुल संस्कृतानुरागी था । अत पारम्परिक सस्कारवश बाल्यावस्था से ही आपका संस्कृत मे अनुराग आवश्यक था । इसलिए आपने गुणग्राही गुरुओं और सच्चे गुरुओं से साहित्य-न्याय-व्याकरणादि अनेकानेक शास्त्रो का विधिपूर्वक ज्ञान प्राप्त किया, जिनका स्वाध्याय (अद्यावधि अर्थात्) जीवन पर्यन्त चलता रहा ।

श्री शेवड़े महाशय ने प्रारम्भ मे मराठी भाषा के सहारे पद्य रचना शुरू किया । बाद में संस्कृत के अभ्यास में निपुण (होकर) अनेकों काव्यों की रचना की । कवि का कुल भगवती भवानीपति (शंकर जी) का उपासक था । आपके कुल की देवता जगत्माता श्री दुर्गाजी थीं । अत स्तोत्र के माध्यम और महाकाव्य के द्वारा आपने बहुत ही आराधना किया ।

श्री शेवडे जी वाराणसी मे डा0 श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी जी के यहाँ रहते हुए 05 जुलाई सन् 1999 को महानिर्वाण को प्राप्त हो गये । श्री शेवडे जी आजीवन ब्रह्मचर्य रहे अविवाहित रहते हुए 81 वर्ष जीवन बिताये ।

झाँसी की रानी लक्ष्मी बाई और इनकी दादी एक ही कुल की थीं, जिनका बहन का सम्बन्ध था ।

<u>शेवडे जी के बारे मे अन्य जानकारियाँ</u>

डा0 श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी जी के सुपुत्र डा0 श्री जयकृष्ण त्रिपाठी जी ने इनके बारे मे कुछ जानकारियाँ दीं, जो निम्न हैं -

व्यक्तित्व·

ये व्यक्तित्व के धनी थे । लम्बे कद वाले, गेहुँए रग के थे। ये किसी भी बात का बेबाक जवाब देते थे, हँसमुख स्वभाव वाले, विनोद प्रिय मनोरञ्जन प्रिय प्रसन्नचित्त रहने वाले थे । विरोधियों के सामने झुकना इन्हे स्वीकार्य नहीं था । हमेशा विरोधियो से सतर्क रहने वाले थे ।

साहसी

ये बड़े ही साहसी थे । ये कभी भी डर का अनुभव नहीं करते थे । जब कहीं कोई शंका होती तो ये अकेले ही चल पडते थे । इसी पर एक उदाहरण प्रस्तुत है - शेवडे जी की बातों पर डा0 जय कृष्ण जी ने बताया कि एक बार जब 06 दिसम्बर, 1992 को राम जन्म भूमि बाबरी मस्जिद का (कल्याण सिंह की सरकार मे) कार सेवकों ने विध्वस कर के मन्दिर का झण्डा फहराया था, उस समय बनारस मे विश्वनाथ मन्दिर पर पी ए सी का पहरा था । यह रात्रि मे 2 या 2 30 बजे बिना किसी से बताये लाठी ले कर बाहर टहल रहे थे । जब शेवडे जी से पूछा गया कि बाहर आप अकेले लाठी ले कर क्यों टहल रहे है, तो उनका उत्तर था कि- "मैने सोचा कि शोरगुल हो रहा है, ऐसा लगा कि कुछ मुसलमान विश्वनाथ मन्दिर पर धावा बोल रहे है । इसलिए मै लाठी ले कर बाहर टहल रहा हू" । जब फिर पूछा गया कि आप अकेले वृद्धावस्था मे क्या कर पायेगे ? तो फिर उनका उत्तर था कि जो साहसी होता है वह अकेले ही शत्रुओं को परास्त कर देता है, जब मुझमें साहस है तो दूसरे को बुलाने कहाँ जाऊँ ? क्यो दूसरे को ढूढता फिरुँ ? मै चालीस साल तक पहलवानी किया हूँ ।

कालिदास के प्रतिस्पर्धी:

श्री शेवडे जी के काव्यो व महाकाव्यों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि ये कालिदास की स्पर्धा मे ही लगे रहे । कालिदास ने दो महाकाव्य - "रघुवंश और कुमार संभव" लिखा तो इन्होने तीन महाकाव्य

विन्ध्यवासिनी विजय पर उ0प्र0 सरकार की ओर से (उत्तर) कालिदास पुरस्कार से सम्मानित किया गया ।

कालिदास ने मेघदूत लिखा तो शेवडे जी ने आधुनिक आधार पर अभिनव मेघदूत लिखा । कालिदास ने ऋतुसहार लिखा तो इन्होने भी छ ऋतुओं को लिखा, जो मुद्रित व प्रकाशित नहीं है केवल हस्तलिपि प्राप्त है ।

कालिदास जी से बढ़ कर एक कदम आगे होने का साहस दिखाया है । हर मोड़ पर कालिदास से आगे बढ़ने का प्रयास किया है । अन्तर इतना है कि कालिदास "कविता कामिनी विलास" है तो शेवडे जी "उदात्त चित्रण" के कवि है । वे घोर विलासिता को प्रश्रय नहीं देते थे । इसीलिए वे कालिदास की निन्दा भी कर देते थे । एक बार डा0 त्रिपाठी जी ने पूछा कि कहाँ कालिदास जैसे महाकवि और कहाँ आप ? आप मे उनमे महान् अन्तर है, आप उनके समान कैसे हो सकते हैं ? तो उन्होंने तपाक् से जवाब दिया, "उस कालिदास की बात करते हो जो अपने माता - पिता की श्रृगार की मर्यादा को पार कर जाता है । वह तो कालिदास - काली का दास है, नौकर है वह तो मेरे समान हो ही नहीं सकता क्योंकि मै तो काली का पुत्र हू, मै माता-पिता (शिव पार्वती) की आज्ञा का पालन करता हूँ, मुझे उनके श्रृगार से क्या मतलब ? शिव और पार्वती उसके पिता तो नहीं हैं, जगत् के पिता है - "जगत पितरौ बन्दे पार्वती परमेश्वरौ ।। रघु. । । ।। परन्तु पार्वती मेरी माँ हैं शिव मेरे पिता हैं, मैं उनका पुत्र हूँ, तो नोकर और पुत्र मे समानता कहाँ हो सकती है ? नौकर तो मालिक को प्रसन्न रखने की युक्ति सोचता है परन्तु पुत्र पर तो माता - पिता स्वयं प्रसन्न रहते है, पुत्र तो उनकी सेवा के लिए प्रस्तुत रहता है ।"

अतः शेवडे जी कालिदास से अपने को उच्च मानते थे । वे भक्ति भावना को मानते थे ।

स्वभाव
----- शेवडे जी विनम्र स्वभाव के थे । सबसे बडी विनम्रता से बात करते थे ।

सहज रूप में काव्य की रचना कर लेते थे । चलते-उठते-बैठते हुए बात - बात मे उन्होंने अभिनव मेघदूत की रचना कर डाली । बात करते समय जब भी याद आ जाता तुरन्त बात रोक कर श्लोक लिख लेते इस प्रकार मात्र 28 दिनो में ही अभिनव मेघदूत की रचना कर डाली । आजीवन जब तब जीवित रहे काव्य सृजन कार्य मे लगे रहे । जो रचनाए हस्तलिखित है, उसके प्रकाशन का बीडा डा0 जय कृष्ण त्रिपाठी जी ने उठाया है ।

युद्ध विद्या में निपुण
------------ श्री शेवडे जी घुडसवारी, हाथी सवारी, बाण, बर्छी, कटार, लाठी चलाना, पहलवानी करना शस्त्रास्त्र में निपुण थे ।

सङ्गीतादि में निपुण
----------- सङ्गीत, गायन, वाद्य आदि बजाने मे निपुण थे ।

अतः श्री बसन्त त्रयम्बक शेवडे जी चतुर्मुखी प्रतिभा के धनी थे ।

दुर्भाग्यवश उनका साक्षात्कार न हो पाने से उनके व्यक्तित्व की पूरी जानकारी नहीं हो सकी । जो ऊपर लिखा गया वह सब डा0 जयकृष्ण त्रिपाठी जी की बातचीत ही लिखी गयी है ।

रचनाएँ :
----- 'शुम्भ वध महाकाव्यम्" के अतिरिक्त शेवडे जी की रचनाए निम्न हैं -

1 **रघुनाथ तार्किक शिरोमणि चरितम्-** ये प्रसिद्ध नेयायिक थे । इनके चरित्र का प्रथम प्रकाशन सम्पूर्णानन्द सस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी से सरस्वती सुषमा पत्रिका मे हुआ । और बाद मे स्वतत्र पुस्तक के रूप मे पूना से प्रकाशित हुई जो इस समय पूना प्रकाशन मे भी अनुपलब्ध है ।

2 **वृत्तमञ्जरी** इसमे सौ से अधिक छन्दों के लक्षणों का सरलता से सुन्दर वाणी से निर्देश किया गया है । जिसमें उदाहरण रूप से उद्धृत किये गये सभी पद्य भगवती की स्तुति परक है । यही ग्रन्थकर्ता की विशेषता है । छन्दोज्ञान (वेद - ज्ञान) भाषा ज्ञान, प्रकाशिका यह निश्चय ही अनन्य और असाधारण कृति है । इसमें स्वोपज्ञान वृत्ति का विषय का विशद् वर्णन है । यह रचयिता के प्रयत्नों से ही प्रकाश पदवी को प्राप्त किया, इस ग्रन्थ की प्रशसा विद्वज्जनो के द्वारा भूरिश की गयी है, जैसे आर्याछन्द का लक्षण कवि के अनुसार इस प्रकार है -

आर्या- **प्रथमतृतीये द्वादश दशाष्टमात्रा द्वितीयके यस्याम् ।**

तुर्ये पञ्चदश तथा तामार्यां पिङ्गलो ब्रूते ।।वृत्तमंजरी 2/1/।।

उदाहरण "फुल्लसरोरुहनयना कोमलशशिकला चुम्बित किरीटम् ।

काञ्चन चम्पकगौरीमार्यां करुणामयीं ववन्दे ।।वृत्तमञ्जरी 2/2 ।।

विद्युन्माला मो मो गो ग पादे यस्या विश्रामः स्याद् वेदाम्नाये ।

छन्दःशास्त्रे तामेवाहुर्विद्युन्माला सारङ्गाक्षि ।।वृ0म0 3/24 ।।

उदाहरण विद्युन्माला तुल्या लक्ष्मी सौख्यंसर्वदु खोपेतम् ।

एवं ज्ञात्वा ध्येयं नित्यं श्री दुर्गाया पादाम्भोजम ।।वृ म 3/25 ।।

उदाहरण हसी
-------- दैत्यस्त्रीणां वदन पिठरैकृत्वा व्यक्तं नेना सलिलम् ।

ह्रासक्षीरं त्वरितमपिबद् दुर्गे । हंसी तव भुजलता ।।वृ म 3/51 ।।

लक्षण इन्द्रवज्रा·
--------- राजन्तिवर्णा यदि रूद्रसख्या पादे तथा चेत् ततजागुरुच ।

सम्फुल्लनीलोत्पलपत्रनेत्रे । तामिन्द्रवज्रा कवयो वदन्ति ।। 3/52 ।।

उदाहरण उपेन्द्रवज्रा

उपेन्द्रवज्रायुधपद्मयोनि - किरीटनीराजित पादपद्मा ।

अशेष भूमीधरराज कन्यातनोतु नित्य मम मङ्गलानि ।।वृ म 3/116 ।।

प्रस्तुत वृत्तमञ्जरी की रचना सवत् 2014 (1957 ई0) मे हुई । जो पाँच स्तबको (भागों) में बटा है । इसमे कुछ 103 महत्वपूर्ण छन्दो को उनके लक्षण और उदाहरण दे कर समझाया गया है । उदाहरण रूप मे उद्धृत पद्य भगवती पराम्बा की स्तुति रूप फल प्रदान करने मे भी समर्थ हैं । सर्व प्रथम वृत्तमञ्जरी पर ग्रन्थाकार ने **"स्वोपज्ञभावबोधिनी व्याख्या"** लिखा । जो सामान्य बुद्धि के छात्रों के लिये बोधगम्य नहीं थी । तब डा0 ब्रह्मानन्द त्रिपाठी महोदय ने इस पर **"सुषमा टीका"** लिखा ।

विन्ध्यवासिनी विजय महाकाव्यम्
------------------------ दुर्गा भक्ति से प्रभावित, उनकी प्रेरणा से प्रेरित शेवडे कुलाभूषण महाकवि शेवडे कृत यह अभिनवमहाकाव्य कवि की श्रेष्ठ प्रतिभा को प्रदर्शित करता है । इसमे विन्ध्यवासिनी की महिमा एव विन्ध्य पर्वत पर अगस्त मुनि द्वारा उनकी स्थापना का प्रस्ताव और स्थापना का वर्णन, 9 सर्गो मे है । दसवें सर्ग से सूरसेन जनपद, कृष्ण-जन्म, गोकुल-गमन, कस वध एवं वसुदेव द्वारा चण्डीयज्ञ का विस्तृत वर्णन हुआ है । इसकी सर्ग सख्या 16 और पद्य संख्या 1039 है ।

कथानक का सारांश·
----------- इसका कथानक नितान्त पौराणिक होते हुए भी कवि कल्पना के द्वारा पर्याप्त परिवर्तित है । सक्षेप मे इसकी कथा इस प्रकार है-

प्रथम सर्ग मे विन्ध्याचल के पास नारद - गमन, दूसरे मे इन्द्र के द्वारा प्रतिकार करने की भावना की बात कह कर विन्ध्याचल को भडकाना, चतुर्थ मे विन्ध्याचल द्वारा योग विद्या से उनकी शरीर की बृद्धि, जिसके दर्शनार्थ ससार के हर प्रकार के प्राणी आते है । पाँचवे मे विन्ध्य की बृद्धि से भयभीत इन्द्रादि का बेकुण्ठ - गमन, छठे मे इन्द्रादि द्वारा बेकुण्ठ से लोटते समय प्रयाग, वाराणसी आदि की यात्रा का वर्णन, सातवे मे इन्द्र द्वारा अगस्त्य ऋषि को बुलाया जाना और विन्ध्याचल को घटाने की जिम्मेदारी इन्द्र द्वारा सोपा जाना, आठवें मे अगस्त्य ऋषि का विन्ध्याचल को समझाना, तथा उनके शिखर पर भगवती के निवास का प्रस्ताव रखना, नवें सर्ग मे श्री जगत्माता का विन्ध्याचल पर निवास का चित्रण है । दशम सर्ग मे शूरसेन जनपद का वर्णन, एकादश मे वसुदेव और देवकी का विवाह वर्णित है, द्वादश सर्ग मे वसुदेव का गर्ग द्वारा विन्ध्याचल पर सहस्रचण्डी यज्ञ विधान का वर्णन, तेरहवे मे श्रीकृष्ण जन्म, चोदहवे मे कृष्ण-गोकुल पहुचाया जाना, पन्द्रहवे मे कस वध तथा सोलहवे सर्ग मे विन्ध्याचल पर नवरात महोत्सव का विधान वर्णित है, यहीं ग्रन्थ समाप्त हो जाता है ।

भाषा - शैली :

विन्ध्यवासिनी विजय महाकाव्य की भाषा शेली सरल, सरस, सुबोध है । सुललित पदावली का प्रयोग है । इस महाकाव्य मे पदलालित्य अपनी पराकाष्ठा पर है । अनुप्रास, उपमा, उत्प्रेक्षा की छटा बडी मनोहर है । यह अति प्रसन्नता का विषय है कि सवत् 2040 (1983) मे उत्तर प्रदेश अकादमी ने कवि को इस कृति पर "कालिदास" नामक सर्वोच्च पुरस्कार से सम्मानित किया । इस महाकाव्य मे अलकारों की कुछ छटा दृष्टव्य है-

अनुप्रास
----- नीया समीपा· कुटजद्रमाणा काला प्रियाला स्तबके फलानाम् ।

शाला विशाला निविडस्तमाला जालानि यस्मिन् लवलीलतानाम् ।।

विन्ध्य वा0वि0 ।/8/ ।

रङ्गत्तरङ्गा मुदितान्तरङ्गा सस्पर्श मात्रात् विहितार्ति भङ्गा ।

रेवाऽपि सेवाव्रतमाचरन्ती यत्पादनिर्णेजन्मातनोति ।।वि वि ।/18 ।।

उटजान् कुटजान्तिकस्थितान् द्रुतमुत्सृज्य वनात् तपस्विन ।

चलिता कलिताक्षमालिका.प्रपथुर्विन्ध्यगिरेरूपत्यकाम् ।।वि वि. 4/10 ।।

उपमा
--- मुकुलीकृत लोचना यशोदा प्रययौ सूति निकेतने सुषुप्तिम् ।

अजनि प्रसवस्य वेदनामभिज्ञा नितरां यथा हि बन्ध्या ।।वि वि ।4/23 ।।

मानयन् गुरुजनान् कुटुम्बिनो बान्धवाँश्च सुहृदोऽनुजी विन ।

आतनोत् स निखिलान् वंशगतान् मन्त्रविद्भुजगपुङ्गवानिव ।।

वि0वा0वि0 ।।/29

इसी प्रकार अन्य अलकार भी प्राप्त होते है ।

विन्ध्यवासिनी विजय महाकाव्य मे सर्वत्र प्रसाद गुण ओर वैदर्भी का साम्राज्य छाया है । जिसे पढने और सुनने से मन पुलकित हो जाता है । प्रकृति का चित्रण मनोरम है । वीर रस, अद्भुत रस, हास्य रस आदि अनेको रसो से युक्त यह महाकाव्य है ।

इसमें, उपजाति, वसन्ततिलका, मालिनी, शालिनी, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्र वज्रा, आदि छन्दों का प्रयोग है ।

देवदेवेश्वर महाकाव्य
------------ ।6 सर्गो वाला यह महाकाव्य **पुण्यपत्तनस्थ देवदेवेश्वर सस्थान"** का परिचायक है । यह पुण्यश्लोक छत्रपति श्री शिवाजी महाराज से ले कर पेशवा कुलोत्पन्न महाराज बाला जी बाजीराव पर्यन्त" महाराष्ट्र के ऐतिहासिक

वर्णनयुक्त वीर रस प्रधान ऐतिहासिक महाकाव्य है । इसकी श्लोक सख्या 1577 है ।

इस ग्रन्थ के लेखन की प्रेरणा के सदर्भ में स्वय इसी ग्रन्थ मे कहा गया है कि "1988 में श्री शेवड़े जी श्रीमान् नाना साहेब पेशवा धार्मिक-सास्कृतिक-आणि-आध्यात्मिक पुरस्कार" से सम्मानित किये गये - वह स्थान था देवदेवेश्वर सस्थान । वहीं पुण्य बन्दरगाह पर आये कुछ सुहृद जनो ने महाराष्ट्र के दिव्य अद्भुत ओर इतिहास के सहारे गीर्वाण भाषा मे शेवडे जी को महाकाव्य लिखने को प्रेरित किया । उसी प्रेरणा के फलस्वरूप महाकवि ने देवदेवेश्वर महाकाव्य की रचना कर डाली ।

महाकाव्य के विषय मे इसी ग्रन्थ के प्रस्तावना मे प्रशसा की गई है -

"यद्यपि पुण्य श्लोकच्छत्रपति शिवराणप्रभृतीना महाराष्ट्र शासकाना सम्बन्धिनी विपुलैतिहासिक सामग्री महाराष्ट्र भाषाया प्रकाशिता समुपलभ्यते तथापि सस्कृतभाषायां परमानन्द कवि प्रणीत श्रीशिभरतप्रभृतयो विरला एव ग्रन्था दृष्टिपथ-मायान्ति । महाकाव्यमिद निश्चय प्रचयमेव तस्यास्त्रुटे पूर्ति विद्यास्पति ।"

देवदेवेश्वर महाकाव्य प्रस्तावनाया
'श्री देवदेवेश्वरो विजयते' इति प्रसङ्गात्'
मनोहर य0 जोशी
प्रधान विश्वस्त
प्रा0 बसन्त कृष्ण नूलकर [1]

यह महाकाव्य 1650 से 1750 ई0 पर्यन्त सो वर्षो तक के काल खण्ड के इतिहास के आधार पर रचित है । 1988 मे कवि कार्यवश दुबई गये । समय प्राप्त होने से और देवी की कृपा कटाक्ष होने से इसके दो सर्गो को इन्होंने वहीं रच डाला । आठ माह बाद त्रुटि हो जाने के विचार से भारत

---

1 पुणे से 1990 मे प्रकाशित देवदेवेश्वर महाकाव्य की प्रस्तावना मे उद्धत ।

आकर पुण्यपत्तन मे भूल कर के यहाँ रह कर कुछ सदर्भ प्राप्त करक के वाराणसी आकर पाच ही माह मे इस महाकाव्य को रच डाले । जो सभी लक्षणो से परिपूर्ण है ।

इस महाकाव्य में श्रीमान् नाना साहब पेशावा द्वारा पुण्य पत्तन पर स्थित देवदेवेश्वर-मन्दिर निर्माण को निरुपित किया है । यह विशुद्ध वीर रस महाकाव्य है । उपजाति, बसन्ततिलका, इन्द्रवज्रा, पुष्पिताग्रा, शालिनी, रथोद्धता, इत्यादि अनेक छन्दो का समावेश है ।

अभिनव मेघदूत प्रसन्न मधुर देव वाणी से गुम्फित यह खण्ड काव्य कालिदास के काव्य मार्ग को बलात् स्मरण कराता है । यह भी मन्दाक्रान्ता छन्द मे है । इसमे 158 श्लोक है । पूर्व मेघ मे 97 और उत्तर मघ मे 68 है । चोखम्बा से प्रकाशित है ।

स्तवमञ्जूषा इसमे 36 स्तोत्र है । जिसमे स्तोत्रकर्ता की स्वाभाविक भक्ति स्वच्छन्द रूप से विहार करती हुई किसी अलोकिक सुखातिशय को प्राप्त कराती है । इसमे कुल 1008 श्लोक है । यह 1985 मे चोखम्बा द्वारा प्रकाशित है ।

प्रकाशित अप्राप्त रचनायें शुम्भवध महाकाव्य की भूमिका मे शेवडे जी की कुछ अन्य रचनाओं का परिचय मिलता है, जो प्रकाशित होने पर भी सम्प्रति अप्राप्त है । जो इस प्रकार है -

श्रीकृष्ण चरितम् नागपुर से प्रकाशित प्रसन्न मधुर वेदर्भी रीति से सुशोभित सौ श्लोको वाला खण्ड काव्य है । यह भी सम्प्रति अप्राप्त है ।

स्फोटतत्व निरुपण तत्व प्रकाशिका: व्याकरण शास्त्र प्रसिद्ध स्फोट तत्व के रहस्य को करामलकवत् प्रकाशित करती हुई श्री शेषकृष्ण द्वारा विरचित "स्फोटतत्व निरुपण" की विशदार्थ बोधिका व्याख्या है । यह भी अप्राप्त है ।

न्यायकुसुमाञ्जलेस्तत्व प्रकाशिका व्याख्या: यह न्यायशास्त्र से सम्बन्धित रचना है । श्री मदुदयनाचार्य विरचित प्रमाणपूर्वक, ईश्वर सिद्धि परक सुप्रसिद्ध "न्याय कुसुमाञ्जलि" नामक ग्रन्थ की, न्याय शास्त्र के विद्वानों और अन्य शास्त्रज्ञों की समानरूप से हृदयहारिणी विशदार्थ प्रकाशिनी व्याख्या है ।

अन्य रचनाएं: महाकवि शेवड़े जी ने कुछ और रचनाएं की है, और कुछ को बिना पूर्ण किये ही आप महानिर्वाण को प्राप्त हो गये । आपकी जितनी रचनाए प्राप्त हो सकीं हैं, उनका विवेचन इस प्रकार है -

गर्दभाख्यानम्: इसमे मात्र 25 श्लोक हैं, इसमे आज के युग की घूसखोरी, लूट खसोट करने वालों पर कटाक्ष किया गया है ।

निर्वेददशक: इसमें महाकवि ने अपने हृदय की पीड़ा को अभिव्यक्त किया है, कि आज के युग में सच्चे और काव्य-मर्मज्ञ महाकवियो का अभाव हो रहा है, जो कवि भी हो रहे हैं, वे कोओं और बगुलों की तरह राजहसों की सभा मे बेठना चाह रहे है, चाहे ज्ञान हो या न हो ।

स्तवचतुष्टयम्:- इसमें "गंगास्तव ", (8 श्लोक,) यमुनास्तव (10 श्लोक,) पयोष्णीस्तव (12 श्लोक)

ऋतुवर्णन : वर्षा वर्णन (17 श्लोक), हेमन्त (5 श्लोक) आदि ।

समस्यापूर्ति : समस्या पूर्ति पर कई प्रतियॉं लिखी गयी हैं ।

काव्य प्रदीप:- कवियों की प्रशसा मे लिखी काव्य शास्त्र पर आधारित काव्य रचना है । यह रचना अधूरी है । मात्र दो भाग (उच्छ्वास) ही लिखी जा सकी ।

हे काशिराज तुभ्यं नमामः इसमें मात्र 10 श्लोक है ।

रचनाओ के आधार पर महाकवि की समीक्षा : इन काव्यो एव रचनाओ की समीक्षा से ज्ञात होता है कि भारवि, का[illegible] आदि की श्रेणी मे अपने को पहुचाने के लिये काव्य रचने का मन बना लिया । कहीं ऐसा नहीं लगता कि इनसे छूट गया है । विशेषत: इन्होंने कालिदास से ही प्रेरणा ली है । उन्हीं से अपने को तुलनात्मक रखते हुए काव्यों को रचा है । अत धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक, साहित्यक, प्राकृतिक आदि चित्रण में अपनी अनूठी छाप छोड रखी है, जो अक्षुण्ण रहेगी ।

****

द्वितीय अध्याय

(महाकाव्य की कथावस्तु, मूल, मूल से परिवर्तन,)
परिवर्तन का प्रयोजन तथा महाकाव्यत्व के
सिद्धि के प्रमाण

*****

:· द्वितीय अध्याय ·

(शुम्भवध महाकाव्य की कथावस्तु)

शुम्भवध महाकाव्यः

अपार कल्पना-शिल्पी महाकवि श्री शेवडे जी के इस महाकाव्य में 14 सर्ग हैं, जिनमे 816 श्लोक है । इसका कथानक नितान्त पौराणिक होते हुए भी कवि कल्पना के द्वारा कवि के द्वारा पर्याप्त परिवर्तित है । संक्षेप मे इसकी कथा वस्तु इस प्रकार है ।

महाकाव्य मे अनेकों छन्दों का प्रयोग कवि छन्दोवशवदता को सूचित करता है । कहीं भी अनुष्टुप्छन्दों का प्रयोग नहीं हुआ है । सस्कृत साहित्य मे दुर्गा-चरित्र पर आश्रित्य लिखा गया प्रस्तुत महाकाव्य (एव विन्ध्यवासिनी विजय महाकाव्य) निश्चय ही उच्छिष्टसारस्वत वैभव है । इसके प्रकाशन से पहले कलकत्ता के "हनुमान ट्रस्ट" के अधिकारियों ने कवि को पुरस्कृत किया ।

महाकाव्य की कथावस्तु

प्रस्तुत महाकाव्य की कथावस्तु सर्गानुसार निम्नत प्रस्तुत है -

प्रथम सर्गः

प्रथम सर्ग में मगलाचरण, महाकाव्य-नामकरणादि के बाद कवि प्रारम्भ करते है कि महिषासुर के प्रसिद्ध वंश मे समान गुण वाले, सगे भाई शुम्भ और निशुम्भ दो दैत्य उत्पन्न हुए :-

देव्या भवान्या निहतस्य युद्धे वंशे प्रसिद्धे महिषासुरस्य ।
शुम्भो निशुम्भश्च बलावलिप्तो सहोदरो तुल्यगुणावभूताम् ।।

शुम्भ वध - 1/4 ।।

एक दिन अपने गुरू शुक्राचार्य से वे दोनो पूछने लगे कि - भगवन् आप ही तीनो लोकों में ज्ञानी हैं । अत आप यह बतायें कि कहाँ से देवता उत्पन्न हुए कहाँ से दैत्य ? और आपस मे दोनों का शास्वत विरोध क्यो चलता आ रहा है, तब शुक्राचार्य देवता और दैत्यों को कश्यप मुनि से उत्पन्न एक पिता की दो सगी सन्तान बताते हैं । जिनमें दैत्य दिति की और देवता अदिति की सन्तान है । पिता की कृपा प्राप्त होने से देवता निरकुश अधिपति हो गये, फिर भी दैत्य देवताओ मे भ्रातृत्व का भाव दिखाते रहे और इतने पर भी अपने अधिकार से वञ्चित रहे -

देत्या· अपत्यानिदितेर्बभूवुस्तस्मान्महर्षेरदितेरमर्त्या ।।

शु0 व0 - 1/10

तत्पश्चात् सुरासुर में युद्ध होने लगा । पुन पिता के प्रभाव से सन्धि कर के क्षीर सागर मथने लगे । जिसमे मन्दराचल को मथानी, नागराज को रस्सी बना कर देवता तो पूँछ की ओर हुए और दैत्य मुँख की ओर । जिससे नागराज के मुख से निकले विषमय श्वाँस से दैत्य काले हो गये ।

समुद्र मन्थन मे लक्ष्मी कौस्तुभमणि आदि चौदह रत्न निकले । जिसमे अच्छा रत्न देवता ले लिए और शेष दैत्यों को दे दिया । विष को दया के सागर शिव जी पी गये परन्तु अमृत को नहाने का बहाना बना कर देवता हथिया लिये जिससे उनका जातिगत बैर चला आ रहा है ।

तत परं दानवनिर्जराणामनारतं पुष्याति जाति वैरम् ।।

शु0 व0- 1/24/1

कभी देवता हारते कभी दैत्य । किसी समय हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु दो दैत्य राज्य कर रहे थे, उन दोनों को भी विष्णु ने क्रम से सुअर का रूप धारण कर और नृसिंह का रूप धारण कर मार डाला । हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रह्लाद विष्णु का सेवक बन गया । उसका पुत्र विरोचन भी पूर्ववत् आचरण करता रहा । यज्ञ करने वाले बलि के पास विष्णु वामन का रूप धारण कर के दान माँगने आये

और मुझे कौए की तरह एक नेत्र वाला बना दिया । अतिबुद्धिमान 'कच' मेरी सजीवनी विद्या मेरी सेवा कर के छल कर के हरण कर ले गया ।

शुश्रूषया मा परिचर्य विद्यां जहार लक्ष्मीमिव केतवेन ।।

शु0 व0- 1/31/

तपस्या करते वृत्तासुर को महेन्द्र ने वन में मार डाला । इसके बाद शुम्भ और निशुम्भ को शुक्राचार्य नीतिगत उपदेश देते हैं[1] । नीति परायण जयेषी पराक्रमी राजा राज लक्ष्मी को युद्ध मे ऐसे वश मे कर लेता है जैसे काम-क्रीडा के क्षेत्र में निपुण नव युवक कान्ता को वश में कर लेता है । राजा को सन्धि विग्रह वैय्याकरणों के समान करनी चाहिए । जो राजा प्रजा मे अनुराग नहीं बना पाता वह नष्ट हो जाता है । बाह्य शत्रु से ज्यादा आन्तरिक भेदिया खातरनाक होता है । व्यक्ति को अभिमानी नहीं होना चाहिए वह घमण्डी विवेकहीन हो जाता है इसके बाद दोनों भाई घनघोर आवाज मे गुरु से बोले - अरे हम कितने शाली है कि देत्यकुल मे जन्म लिए और आप जेसे मन्त्रदृष्टा पुरोहित मिल गये। अब हम कश्यप जी का ध्यान कर के विजय - यात्रा के लिये प्रयाण करते है । अब आप हम दोनो का अभिषेक करा दे । शुक्राचार्य वेदिक रीति से स्वस्त्ययन कराते है । यही सर्ग समाप्त हो जाता है ।

द्वितीय सर्ग

द्वितीय सर्ग मे गुरू की आज्ञा ले कर शुम्भ - निशुम्भ सेना की तेयारी करते है । जिनमें घोडे, हाथी, ऊँटों, खच्चरो और घडे - घडे भर दूध देने वाली गायों वाला वर्णन है । यवन, गरुण्ड, हूण, किरात आदि ने सेना मे प्रवेश ले लिया । प्रास, गोली, बन्दूक, धनुष बाण, तलवार, फरशे आदि अस्त्रों को देत्य पुत्र ले आये । तत्पश्चात् वर्षा के बाद क्रम से शरदृतु

---

1 शुम्भवध - 1/33 - 1/52 तक

का आगमन होता है[1] इस शरद्ऋतु को शुभ लक्षण मान कर शुम्भ वन मे जा कर अश्मन्तक और शमी वृक्ष की पूजा करने के लिए नगर सीमा से निकल जाता है । कुल परम्परानुसार उस स्थान से सभी आत्मीय लोगो के साथ लौटता हुआ, सम्मानित युवतियों के द्वारा लावे की वर्षा किये जाते हुए वह शुम्भ राजधानी में प्रवेश कर गया । राजसभा मे सम्मानित लोगो को भेंट-उपहार दिया । ताम्बूलादि दे कर अपने नोकरो को सम्मानित किया । छोटे भाई निशुम्भ को सेनापति बना कर सेना की तैयारी करा दिया । उसकी सेना की तैयारी को सुन कर समस्त राजमण्डल ऐसे डर गया जैसे कुम्भजमुनि से समुद्र और अन्य ग्रह डर गये ·

श्रुत्वासज्ज सदनुजबलं दण्डयात्रा विधातु

शुम्भ स्वप्रणिधिवदनाद्राराजलोकस्त्रिलोक्याम् ।

दृष्ट्वा कुम्भोद्भवमिव मुनि सन्निकृष्ट समुद्र

प्राप्तोत्कम्प ग्रहगण इव त्रस्तधी सैहिकेय्यम् ।।[2]

यही सर्ग समाप्त हो जाता है । -शु0व0-2/56

<u>तृतीय सर्गः</u>

तीसरे सर्ग मे अपना राज्य भार मन्त्रियों पर सौंप कर, विश्वसनीयों को किले का रक्षक नियुक्त कर, पड़ोसी राजाओं से सन्धि करके शुम्भासुर भूलोक-विजय के लिए चल देता है । रास्ते में महलों की खिडकियों से आँख फाड कर कटाक्षत देखती हुई मानों नीले-नीले कमलों की स्त्रियाँ वर्षा कर रही हो—

निर्यात्यस्मिन् पत्तनात् पारनार्यो मध्येमार्गं सौधवातायनस्था ।

कर्णाभ्यर्णस्पर्शिनेत्रा कटाक्षैश्चक्रुर्धारावृष्टिमिन्दीवराणाम् ।।

-शु0 व0 3/3

---

1 शु0वध - श्लोक 2/13 से 2/39 तक

2 शु0 वध - 2/56.

आगे प्रबुद्ध नागरिको द्वारा देखा जाता हुआ भेरी नाद से दिक्प्रान्त को कँपाता हुआ, शुम्भ गोलोक की ओर चल देता है ।

सेना के कोलाहल को सुन कर गाँवों के आवाल वृद्ध स्त्री सभी प्रान्त भाग पर आ जाते है । एक दूसरे से जन्तुओं के बारे मे पूछने लगते हैं । पुन वे ग्रामीण सेवको से डरते - डरते शुम्भ - निशुम्भ आदि के विषय मे पूछते है, तो वे सभी का क्रम से परिचय कराते है । तदनन्तर रास्ते मे सूर्यास्त हो जाता है । इसके बाद सेनाओं के स्नान, वस्त्र, प्रक्षालन भोजन करने आदि का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत है[1] । तत्पश्चात् चाँदनी रात्रि हो जाती है, शुम्भ सेवको के अक्षक्रीडा खेलता है । पुन सभी सो जाते हैं । सियार, उल्लू इत्यादि बोलने लगते हैं । असुरो की थकान मिटाने वाली मन्द - मन्द हवा चलने लगती है । यहीं सर्ग समाप्त हो जाता है ।

<u>चतुर्थ सर्ग</u>

चतुर्थ सर्ग का प्रारम्भ प्रातःकाल से होता है । सूर्य निकलने पर बैतालिकों के गान को सुन कर शुम्भ जागते है । नित्य क्रिया कर के पुन शुम्भादि जेत्रयात्रा के लिये प्रयाण कर देते है । शुम्भ गणों के राज्यों से युद्ध करते है । मतवाले हाथी के समान शुम्भ से गण राज्य हार जाते हैं।वह उनसे कर ले कर, शलातुर पुर मे विश्राम कर के आकाश को धूलधूसरित करता हुआ, पुरी, तक्षशिला विशाला आदि को जीत कर लूटपाट करता हुआ पञ्जाब में प्रवेश करता है । भयानक सग्राम होने पर भी पञ्जाब नरेश का पराक्रम वसे विनष्ट हो गया जेसे दिन समाप्ति पर सूर्यास्त हो जाता है -

ऊर्जस्विनः पञ्चनदाधिपस्य प्रभासमानोऽपि दिन समग्रम ।
ययौ प्रतापो विलयं क्रमेण सहस्ररश्मेरिव वासरान्ते ।। [2]

---

1 शुम्भवध श्लोक - 3/31 से 3/39 तक,

2 शुम्भवध श्लोक - 4/30

पुन॰ इरावती, व्यास, कल्लोलवती आदि नदियों को पार कर के कश्मीर की ओर बढ़ता है । कश्मीर नरेश डर कर आत्म-समर्पण करके 'कर' देना स्वीकार कर लेते हैं । मथुरा नरेश डर कर भाग जाता है । शुम्भ उसे बुलाकर सम्मानित कर के, कन्नोज, कोसल को जीत लेता है । मुक्तिपुरी वाराणसी को दूर से ही प्रणाम कर के मगध गोड़, उडीसा, कलिंग आदि जीत कर, गोदावरी कृष्णा को पार कर कॉञ्ची नगरी पहुँचता है, जो पृथ्वीरूपी नायिका की काञ्ची लग रही थी -

वसुन्धरायाः कुलनायिकाया सुवर्णकाञ्चीव विभासमाना ।
गरीयसी सा नगरी व्यतानीदसम्मित देत्यपते प्रमोदम् ।।[1]

तत्पश्चात् चोलवश, पाण्ड्यराज को वश मे कर के शुम्भ केरल पहुचा । कर्नाटक को जीत कर महाराष्ट्र पहुचा । वहाँ की सेना जगदम्बा की भक्त थी और उनके प्रभाव से मायावी भी थी । उनके सामने शुम्भ को मृत्यु निकट आयी हुई लगी । विधाता स्वय सहायक बने और शुम्भासुर सन्धि कर लिया ।

गोमान्तक नरेश से "कर" लेकर "श्री सप्तकोटीश्वर" के गोरव को प्राप्त कर वहाँ से लोट आया । गुजरात को जीत कर हूणो, शकों पल्हव आदि को भी जीत कर "समुद्रवलया वसुन्धरा" पर निरकुश शासन करने लगता है और यज्ञ, नाग, देवता आदि को जीतने का मन बनाता है ।

जित्वा समुद्रवलयां वसुधामशेषा देत्येश्वर॰ सकरदीकृतभूमिपाल ।
यक्षाधिप सुरपति भुजगाधिप च जेतुं निरंकुशतया मतिमाततान ।।[2]

---

1 शुम्भवध - 4/60

2 शुम्भवध - 4/82

यही सर्ग समाप्त हो जाता है ।

पञ्चम सर्ग : पञ्चम सर्ग के प्रारम्भ मे शुम्भासुर गुरु से आशीष ले कर नाग, सुर आदि को जीतने के लिए प्रस्थान करता है । रास्ते में, धानादि की फसल , सुगन्धित हवा बहती है, प्रकृति मनोरम है, अनेकों शकुन होते है[1] नागलोक मे नागनायकों (तक्षकादि) से और शुम्भासुरादि से घमासान युद्ध होता है । "भार्गवी" नीति से शुम्भ ने नागलोक को जीत लिया । नागलोक को जीत कर यक्ष, किन्नर, कुबेर आदि को जीत कर अमरावती पर चढाई कर दिया । देवों और देत्यों का ऐसा भयानक युद्ध हुआ कि त्रिभुवन कॉंपने लगा, चॉंद और तारे भी अदृश्य हो गये -

कल्पान्तवत् क्षुभितभूतपञ्चक सर्वङ्कषं त्रिभुवनप्रकम्पनम् ।

विक्षिप्ततिग्मरुचिचन्द्रतारक देवासुरं तदभवन्महारणम् ।। 5/45 ।।[2]

अन्त मे शुक्राचार्य के तपोबल से शुम्भासुर इन्द्र को जीत लिया । इन्द्रादि देवता भाग गये । देव गन्धर्व पत्नियो सहित महल छोड कर वन मे रहने लगे । शुम्भ स्वर्ग का भ्रमण करता है । स्वर्गनगरी का वर्णन है[3] स्वर्ग का शासन करते हुए शुम्भ को कुछ समय बीत गया । शुम्भ लक्ष्मी पा कर धर्मातिक्रमण करने लगता है । तीनो लोक व्यथित हो जाता है । वह भार्गवी नीति को भूल जाता है । चारो ओर वेद - पाठ रुक जाता है। छ. दर्शन का विलोप और नास्तिकवाद का उदय होने लगता है । तब इन्द्रादि दु खी हो कर गुरु बृहस्पति से शुम्भ के पराभव का उपाय पूछा तो उन्होने मात्र एक आधार जगदम्बा को बतलाया । इतना सुनकर देवता इन्द्र को आगे कर के जगदम्बा को प्रसन्न करने के लिए हिमालय की ओर चल दिये ।

---

1 शुम्भ वध - 5/1 से 15 श्लोक तक।
2 शुम्भ वध - 5/45
3 शुम्भ वध - 5/50 से 5/56 तक

"श्रुत्वावचस्तदनुवद्यमुपात्ततथ्य सर्वे सुरा दशशताक्षरपुर सरास्ते ।

देवी प्रसादमितुमार्तिहरा भवानींप्रालेयशैलमुप लक्ष्य सहर्षमीमु ।।[1]

षष्ठम सर्ग :

षष्ठ सर्ग मे देवता हिमालय पर पहुंचते है । इसमे हिमालय वर्णन, प्रकृतिवर्णन, वन वर्णन आदि का वर्णन है । इस प्रकार देवता हिमालय का अवलोकन करते हुए जाह्नवी गंगा का भी दर्शन करते है।[2] गगा तट पर पहुचकर सभी देवता देवी की स्तुति करने लगते है -

नगनन्दिनी सर्गकाड्.क्षया भवसि त्वं पुनरादिदम्पती ।।शु0व0 6/51

तव शारिफलं जगत्त्रयं गिरिकन्ये वयमत्र शारिका ।।शु0व0 6/52 ।।

अनेकानेक स्तुतियो के बाद देवी शुम्भपुर मे स्थित दैत्यसेना को विनष्ट करने की बात को हृदयङ्गम कर लेती हैं -

दनुजबलमुरीचकार हन्तु वृकमिव शुम्भपुर सरन्नृशसम् ।।शु0व0 6/65

यही पर सर्ग समाप्त हो जाता है ।

सप्तम सर्ग :

सप्तम सर्ग में देवी चण्डिका चन्द्रमौलि के सहित मणिपीठासीन पर विराजमान है । इन्द्रादि देवताओं से एकान्त मे मन्त्रणा करती है और बृहस्पति आदि का सभा में स्वागत करती है और शुम्भ के मारने का उपाय पूछती है । बृहस्पति दूत भेजने का प्रस्ताव करते हैं -

नीतिशास्त्रनिपुणा इह सन्धिविग्रहाद्हिततरं कथयन्ति ।

तज्जगज्जननि शुम्भसमीप प्रेषय त्वमपि कञ्चन दूतम् ।।

शु0व0 7/14

---

1 शुम्भ वध - 5/68

2 शुम्भ वध - 6/1 से 6/22 श्लोक तक ।

अन्त में शिव जी नन्दिकेश्वर को सूचित किया । नन्दिकेश्वर शुम्भ के पास जाता है । नन्दिकेश्वर शुम्भासुर से कहता है । हे भार्गव शिष्यों । पार्वती ने सन्देश दिया है कि "भार्गवी नीति" के सहारे त्रिलोक को जीत क़र मद मे चूर, राजधर्म का उल्लंघन कर के त्रिलोक को पीडित कर रहे हो । उर्वशी इत्यादि अप्सराये तुम्हारी ही सभा मे नृत्य करती है ब्राह्मण यजनहीन हो कर शूद्रवत् आचरण कर रहे है । सभी कर्म से भ्रष्ट हो गये है । यदि आप मेरी बात माने तो महिषासुर के मार्ग पर न चलें यह उचित नहीं है, क्योंकि महिषासुर को मैने ही मारा था —

पालयन्तु वचन मम सर्वे मा व्रजन्तु महिषासुरवर्त्म ।

दुर्गमोऽपि भवता न स पन्था येन मद्विनिहतो महिषोऽगात् ।।

शु0 व0 7/33

इतना सुनते ही शुम्भ आग बबूला हो कर दूत को भला-बुरा कहता है । नन्दिकेश्वर लोट आता है ।

तुरन्त सुग्रीव को बुला कर सन्देश भेजता है कि "हे महेशि। मै महिषासुर के समान कपट को न जानने वाला नहीं हू, मै शुम्भ हूँ - नीतिशास्त्र निपुण हूँ । अरे । शैलकन्ये । तुम्ही बताओ यदि कोई युद्ध छोड कर कायरो की भाँति भाग जाय तो उसका स्वर्ग पर कौन सा अधिकार है ? यदि इन्द्र की राज्य लालसा है तो युद्ध में जीत कर राज्य ले लें" -

इन्द्रोऽपि शौर्यमवलम्ब्य तनोतु शौर्य हस्ते करोतु च पुन सुरराजलक्ष्मीम् ।।

शु0 व0 7/51

आगे कहता है । ऐसा लगता है तुम्हारी मूर्खता की बुद्धि है तुम थोड़ा भी राजनीति नहीं जानती हो क्योंकि राज्य न दिया जाता है न माँगने पर मिलता है । इस प्रकार अनेकानेक बातो को कह कर सुग्रीव को पार्वती

की सभा में भेजता है । सुग्रीव हिमालय पहुँच कर देवी के दरबार मे शाकर जी को पार्वती समेत राज सिंहासन पर आसीन देख कर आश्चर्यचकित हो कर भगवान् शंकर की चरणों मे ध्यान लगा कर सिखाये तोते के समान शुम्भ का संदेश सुना कर प्रमथपति से पूँछ कर प्रणाम कर के शिव-भवन से निकल जाता है । यहीं सर्ग की समाप्ति होती है ।

अष्टम सर्ग : अष्टम सर्ग मे वर्णन है कि सुग्रीव वहाँ से लौट कर शुम्भनिशुम्भ से समस्त समाचार बता कर चला जाता है । शुम्भ सचिवो सहित देवी को जीतने की मन्त्रणा करता है । चण्ड - मुण्ड प्रमुखों सहित अपने छोटे भाई निशुम्भ को सेनापति बना कर युद्धार्थ सेना की तेयारी करने लगता है । उसी समय बसन्त वर्णन शुरू होता है - "मानो शिशिर को लोटाता हुआ बसन्त आदेश के समान आ पहुँचा ।"

चिरप्रसक्तं शिशिरं निधर्तयन् वसन्त आदेश इवाऽगमद्भुवम् ।।

शु0 व0 - 8/4

वसन्त वर्णन श्लोक 5 से 42 तक है ।

जब बसन्त ऋतु अपनी चरम सीमा पर होती है, तो दैत्यनाथ की सभा मे उनकी उपस्थिति में दण्डाधिकारी धूम्र लोचन सादर शुम्भ से देवी को अपने वश मे लाने की बात करता है । शुम्भ अट्टाहस कर के कहा - "कुछ दैत्य वीरों के साथ जाओ और उस दुष्टा को मेरे पास लाओ।"

साहित्व कतिपयदैत्यवीरयुक्तो दुष्टां ता मम निकट समानयस्व ।।

शु0 व0 8/48

वह धूम्रलोचन दैत्यनाथ की आज्ञा शिरोधार्य कर के चला जाता है । यह पर सर्ग का समापन होता है ।

नवम सर्ग

नवम् सर्ग धूम्रलोचन के आक्रमण से प्रारम्भ होता है । जिसमे उसकी मृत्यु होती है, वह महासुर ६०। हजार सेना ले कर चलता है । रास्ते मे अपशकुन होने लगे । सियार बोलने, गीध उडने लगे । हिमालय पर्वत के पास पहुँच कर, तपाये गये सोने की छवि वाली, खिलते हुए कमलवत् विशाल नेत्र वाली, शैलकन्या को देखा और उस देवी के पास बैठे हुए विकराल दाँत वाले सिह को देखा । तब ग्राम्य - जन्तु की तरह घबडा कर आत्मविकत्थन भूलता हुआ भ्रमित हो गया । फिर भी धैर्य धारण करता हुआ अपने स्वामी शुम्भासुर की प्रशंसा और देवताओं पर व्यग्य करने लगा और देवी से कहता है कि "घमण्ड छोड कर मेरे स्वामी के पास चलो अन्यथा केशाकर्षण पराभव को प्राप्त हो जाओगी ।" देवी कहती है "मुझे बलपूर्वक ले चलो क्योंकि तुम्हारे स्वामी ने सेना भेजा है"। इतना सुनकर वह पार्वती और शिव को पकड़ने दोडा । पार्वती ने हुँकार मात्र से धूम्रलोचन भस्म कर डाला । तब दैत्य सेनाओं के साथ देवी की घमासान लडाई हुई । दैत्य मारे गये जो शेष बचे भाग निकले। यहीं सर्ग समाप्त हो जाता है ।

दशम सर्ग :

दशम सर्ग में चण्ड मुण्ड की मृत्यु का वर्णन है, कि शेष बचे हुए दैत्य डरते हुए शुम्भासुर से धूम्रलोचन के भस्म होने का समाचार सुनाया -

स्वामिन् यातो भस्मतां धूम्रनेत्रस्तस्या देव्या हन्त हुँकारमात्रात् ।
दीपज्वालासङ्गताङ्गः पतङ्गो दावाश्लिष्टो देवदारुद्रुमोवा ।।

शु0 व0 10/2

इतना सुनते ही शुम्भ प्रचण्ड क्रोध में आ कर चण्ड - मुण्ड को चढ़ाई करने का आदेश देता है और जीवित अथवा मृत लाने का आदेश देता है । चण्ड - मुण्ड के चढाई करने पर देवी इतनी क्रोधित हुई कि आँखो

लाल ओर मुँख काला हो गया और भ्रूभङ्गिमा से काली निकल पडीं जो साक्षात् मृत्युदूती लग रही थीं । वह कालिका देत्य सेना पर टूट पडी और देत्य सेना का भयकर विनाश करने लगी तब सेना के भयकर विनाश को देख कर चण्ड-मुण्ड दौड़ते हैं और कालिका पर बाणों की वर्षा करने लगते है । इस दृश्य को देख कर देवी सिंह पर सवार हो कर चलती है, जिनको देख कर चण्ड देवी की ओर बढ़ पाता कि बिजली की तरह उसके रथ पर कूद पडीं और चण्ड को मार डालती है । चण्ड को मृत देख कर मुण्ड दौडा उसके भी सिर को शरीर से अलग कर देती है । तब चण्ड और मुण्ड के सिर को ले कर कालिका दुर्गा के पास आती हैं । तब देवी कहती है -"चण्ड-मुण्ड के सिर को लाने के कारण अब तुम्हे लोग "चामुण्डा" इस नाम से जानेंगे और "चामुण्डा" इस नाम से प्रसिद्ध हो जाओगी"-

तावानीतौ चण्डमुण्डौ विलोक्य प्राक् प्रीता कालिकां शैलकन्या ।

प्रसादप्राप्ता गृह्णन्तीचण्डमुण्डौ चामुण्डेति ख्यातिमभ्यस्तस्त्वम्।।

शु0 व0 - 10/44

जो देत्य बच गये, जा कर शुम्भ से चण्ड-मुण्ड की मृत्यु का समाचार कह सुनाया । यहीं सर्ग समाप्त हो जाता है ।

<u>एकादश सर्ग</u> : ग्यारहवें सर्ग मे रक्तबीज वध होता है । जब शुम्भासुर चण्ड-मुण्ड की मृत्यु का समाचार सुनता है तो बन्धु-बान्धवों, सचिवो, मित्रो और सेनानायकों आदि के साथ अपने हित पर विचार विमार्श कर के मोह मे पडकर "भार्गवी नीति" को भुलाकर त्रिभुवन नायिका को युद्ध द्वारा जीतने का वैसे निश्चय किया, जैसे दुर्भाग्य को नियति जीतना चाहता है -

व्यामोहात्तदपि स भार्गवोपदिष्टं विस्मृत्यप्रशममुपायमात्मनीम् ।

युद्धेन त्रिभुवन नायिकां विजेतुं दुर्भाग्य नियतिमिव प्रणिश्चिकाय।।

हूणो यवनों आदि की सेना सहित, सागर की उमडती हुई लहरो के समान दैत्य सेना को देख कर देवी ने अपने घनघोर शिञ्जिनी की निनाद से ब्रह्माण्ड को भर दिया । तभी देवों के कल्याण और दैत्यो के विनाश के लिए द्रुहिण, शिवा आदि शक्तियाँ कवि की कल्पना के समान उस देवी से निकल पड़ी । दोनों ओर से घनघोर संग्राम होने लगा । दैत्य सेना मे भगदड मच गयी । इसके बाद रक्तबीज आ धमका । रक्तबीज पर बाणों की वर्षा होने से रक्तबीज के जितने रक्त कण जमीन पर गिरते उतने रक्तबीज तैयार हो जाते है ।

तत्पश्चात् देवी भद्रकाली से कहती हैं कि तुम इतना मुख फैलाओ कि जितना भी शस्त्रास्त्र-प्रहार रक्त गिरे वह जमीन पर न गिरने पाये, उसे पी डालो । भद्रकाली मुख फैला कर रक्त बीज का सारा रक्त पीती जाती है और रक्त समाप्त होने पर रक्त बीज कटे वृक्ष के समान गिर पडता है ।

उन्मूलितो द्रुमइव प्रबलानिलेन भूमौ पपात स जवाद् भ्रमयंस्त्रिलोकीम्।।

शु0 व0 - 11/46

रक्तबीज के जमीन पर गिरने पर इतना भयकर विराब होता है कि ब्रह्माण्ड को चीरता हुआ तीनों लोकों को बधिर कर दिया । रक्त बीज की मृत्यु के बाद शुम्भासुर क्षण - भर के लिए बेहोश हो जाता है । यहीं पर सर्ग का अन्त हो जाता है ।

<u>द्वादश सर्ग</u> ·

द्वादश सर्ग में निशुम्भ की मृत्यु वर्णित है । रक्तबीज की मृत्यु से क्रोधित दुरात्मा दैत्याधिपति निशुम्भ सहित सेना ले कर चढाई करता है और मातृका और कालिका सहित देवी को घेर लेता है । निशुम्भ को देख कर देवी अट्टहासपूर्वक, गर्जना करती हुई बोली कि मुझ अबला को चतुरंगिणी सेना ले कर जीतने आये हो । जाओ पहले गुरु से राजनीति सीख आओ । दोनों ओर से पहले कर्कश वचनों की बौछार होती है फिर भयंकर युद्ध होने

लगता है । कभी निशुम्भ देवी को मारता तो कभी देवी निशुम्भ को । देवी के गदा के प्रहार से निशुम्भ बेहोश हो गया और शखध्वनि से त्रिलोक बधिर होने लगता है । दैत्य सेना के हाथी पेशाब करने लगे । तब शुम्भासुर रथ पर सवार हो कर दौड़ा । कात्यायनी ने उसके हृदय मे ऐसा शूल मारा कि शुम्भ भी मूर्छित हो गया । तत्क्षण चेतना को प्राप्त निशुम्भ देवी से पुन लड़ने लगा । पुन देवी और निशुम्भ से भयंकर सग्राम होने लगा । देवी ने शूल से उसके हृदय को बीध डाला । तब उसके हृदय से रुको-रुको ऐसा बोलता हुआ एक पुरुष निकल पडा तब माता ने ताड के समान उसकी गर्दन को काट डाला । यहीं सर्ग समाप्त होता है । निशुम्भ का वध होता है ।

<u>त्रयोदश सर्ग</u> · त्रयोदश सर्ग मे शुम्भवध हो जाता है । चेतना प्राप्त शुम्भ अपने सारथी से निशुम्भ- मृत्यु पर्यन्त की घटना सुनता है । भाई की मृत्यु सुनते ही उसका हृदय विदीर्ण हो जाता है । वह उस शोक को अन्दर ही दबा कर युद्ध क्षेत्र मे पहुचता है । देवी से कहता है तूने धूम्रनेत्र को भस्म कर दिया, भाई को मार डाला । मायाविनी रुको - 2 जाओ मत । तुम व्यर्थ घमण्ड करती हो, मैं तुम्हे मार कर भाई का तर्पण करता हूँ । देवी भी कायर आदि कटुवचन कहती है । तब शुम्भासुर देवी पर प्रहार करने लगता है, देवी और शुम्भ का भयंकर एव निर्णायक युद्ध प्रारम्भ हो गया । कभी विजय देवी की दिखाई पडती तो कभी शुम्भ की । एकाएक शुम्भ पार्वती को ले कर आकाश मे उड़ता है । आकाश मे तुमुल युद्ध होता है । देवी ने उसे जमीन पर पटक दिया । वह दुरात्मा कुछ क्षण जमीन पर पडा रहा । पुन उठकर देवी को मारने दौडा तो देवी ने अन्त मे शूल से ऐसा भेदन करती हैं जैसे पका कटहल । शुम्भवध के बाद सुरभवन से पुष्प वर्षा होने लगती है, प्रलय की जलधारा शान्त हो जाती है, ब्राह्मण वेद - पाठन करने लगते है, लोग अपना - अपना कार्य, कर्म करने लगते हैं । यहीं सर्ग का अन्त होता है ।

चतुर्दश सर्ग चतुर्दश सर्ग मे देवी की देवताओं द्वारा स्तुति[1] तथा माता जगदम्बा के द्वारा वरदान दिये जाने का वर्णन है । जैसे "हे माँ तुम्ही जगत् की माता हो, तुम्हीं ब्रह्मस्वरूप नारायणात्मकतया से विश्व की रक्षा करती हो । कोई महेश, कोई विष्णु, कोई ब्रह्मा आदि, भाषा प्रभेद के कारण कहते है । इस सर्ग मे कवि ने कल्पना का पूरा लाभ उठाया है । इसमे, साख्य, वेदान्त, न्याय आदि का ज्ञान स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है । कवि ने इसी सर्ग मे बौद्ध, चार्वाक आदि का खण्डन, स्तुति और उपमा आदि के माध्यम से किया है । देवी देवताओं को वरदान देती हैं कि जब - जब दानव-भय उत्पन्न होगा तो उन मतवालों को मारुंगी ।-

युगे युगे दानवसम्भव भयं यदा यदा वस्त्रिदशा भविष्यति ।

तदाऽवतीर्याऽहमसशयं भुवि रणे हनिष्यामिमदोद्धतानमून् ।।

शु0 व0 - 14/50

अन्त मे दो श्लोकों मे कवि अपनी उदारता और मगलाचरण से महाकाव्य का समापन करते है -

"सक्त· पादप सरोरुहे भगवतश्चन्द्रार्ध चूडामणे -

देव्या भार्गवरामवद्गिरिजया पुत्रीकृत· शेशवात् ।

शास्त्राभ्यासविवर्जितोऽपि रचनानेपुण्यहीनोऽपिसन्

काव्या शुम्भवधाभिधं व्यरचयच्छ्राव्य वसन्त कवि ।।

शु0 व0 - 14/52

जयति भगवतीनगेन्द्रकन्या जयति चिर करुणानिधिर्महेश ।

जयति कविजन शिवेकनिष्ठो जयति चिर गिरिजा गिरिजायशः प्रबंध ।।

शु0 व0 - 14/53

यहीं सर्ग समापन के साथ महाकाव्य का समापन हो जाता है ।

---

1 शु0 व0 - 14/2 - 14/50 श्लोक तक ।

(शुम्भवध महाकाव्य की कथा वस्तु का मूल)

शुम्भवध महाकाव्य की कथावस्तु श्रीमद्देवी भागवत् पुराण तथा मार्कण्डेय पुराण पर आधारित है । अधिकाश प्रमाण देवी भागवत् मे ही प्राप्त होता है ।

देवी भागवत के अनुसार शुम्भ वध की कथावस्तु श्रीमद्देवी भागवत पुराण के पञ्चम स्कन्ध (21वे अध्याय से 31वे अध्याय तक) मे शुम्भवध की कथा का उल्लेख मिलता है । वहाँ वर्णन प्राप्त होता है कि पुरुषो के द्वारा अवध्य दो सगे भाई शुम्भ - निशुम्भ नायक वीर दैत्य हुए ।

यथा शुम्भो निशुम्भश्च भ्रातरौ बलवत्तरौ ।

वभुवतुर्महावीरो अवध्यो पुरुषे किल ।।दे0 भा0 5/21/2 ।।

ये दोनो पाताल लोक से आकर पृथ्वी पर पुष्कर तीर्थ मे तपस्या करने लगे । एक अयुत वर्ष की तपस्या के बाद ब्रह्मा से अमरत्व का वरदान माँगा । ब्रह्मा के द्वारा अदेय वरदान कहने पर किसी पुरुष के द्वारा मृत्यु को न प्राप्त होवे ऐसा वर माँगा । ब्रह्मा से वरदान पाकर शुक्राचार्य जी को पुरोहित बनाया । शुक्राचार्य ने शुम्भ (बडे भाई) को राजा बनाया । तब शुम्भ के राजा बनने का समाचार सुनकर चण्ड-मुण्ड, धूम्रलोचन रक्तबीज आदि अपनी सेना सहित शुम्भ के साथ हो लिये । पुन बलपूर्वक पृथ्वी के सभी राज्य को जीत कर देवत्व, गन्धर्व, नाग, किन्नर आदि लोकों को जीत लिया । देवता वन मे रहने लगे । तब देवताओ ने अपने गुरु बृहस्पति से शुम्भ से जीतने का उपाय पूछने लगे । तो उन्होंने हिमालय पर निवास करने वाली देवी की

आराधना को उपाय बताया । देवता माया-बीज-मन्त्र जपने के बाद स्तोत्र के रूप से देवी की स्तुति करने से देवी प्रसन्न हुई और देवताओं को दर्शन दिया ।

जगन्नमोहनलावण्या सर्वलक्षणलक्षिता ।

अद्वितीय स्वरूपा सा देवानां दर्शन गता ।।दे भा 5/22/45 ।।

देवी कहती है - यहाँ क्या कर रहे हो ? कोन सा कार्य आ पडा ? तब देवता पुराना वरदान याद दिलाते है और शुम्भ - निशुम्भ से प्राप्त कष्ट को सुनाते हैं । उस स्तुति से प्रसन्न देवी उसी समय अपने शरीर परम रूप प्रकट किया जो पार्वती के शरीर - कोश से उत्पन्न होने के कारण कोशिकी कहलायी । कौशिकी के निकलने से पार्वती काले रग की हो गई । अत कालिका इस नाम से विख्यात हुई, जो कालरात्रि भी कही गयीं। तत्पश्चात् कालिका के साथ शत्रु-नगर मे एक बगीचे मे जा कर जगन्मोहन गीत गाने लगी । वहाँ आये हुए शुम्भ के सेवक चण्ड और मुण्ड आश्चर्य मे पड गये । वे जा कर शुम्भासुर से बताये और बोले कि आप पता करे, इतनी मोहिनी किसकी कन्या है, क्यो आई है ? इतना सुन कर शुम्भ सुग्रीव को दूत बना कर भेजता है । सुग्रीव अम्बिका के पास जा कर शुम्भ की प्रशसा करता है तो देवी कहती है उन्हीं की प्रशसा सुन कर देखने आयी हूँ । देवी युद्ध मे जीतने वाले के साथ ही विवाह करने की प्रतिज्ञा को बताती है । सुग्रीव काफी समझाता है परन्तु देवी वही प्रतिज्ञा की बात रखती है-

बिना युद्ध न मे भर्ता भवतिकोऽपि सोष्ठवात् ।।

दे भा 5/24/14

दूत लौट जाता है । दूत की बात सुन कर निशुम्भ कहता है धूम्रलोचन को भेज दे वही जीत कर लावे तो विवाह हो जायेगा । फिर धूम्र लोचन को हुँकार मात्र से कालिका भस्म कर देती है । धूम्रलोचन वध

के बाद एकान्त मे शुम्भ निशुम्भ से विचार विमर्श करता है । चण्ड-मुण्ड भेजे जाते है । उसी प्रसग मे चण्डिका के मस्तक से काली की उत्पत्ति होती है । चण्ड-मुण्ड का वध कालिका करती है अत वे चामुण्डा के नाम से विख्यात होती है। चण्ड-मुण्ड के वध के बाद देत्यगण शुम्भको समझाते है और शुम्भ द्वारा मागे गये वरदान का भी स्मरण कराते है कि यह स्त्री शायद आपको मरने आयी हो -

पुरा त्वया तपस्तपन्तपुष्करे देवायतने ।

वरदानाय सम्प्राप्तो ब्रह्मा लोक पितामह ।।दे भा -5/27/15 ।।

तस्मात्त्वां हन्तुकामेषा प्राप्ता योषिद्वरा प्रभो

युद्ध मा कुरु राजेन्द्र विचार्यवधियाऽधुना ।।दे भा -5/27/18 ।।

शुम्भ कहता है सब कुछ काल के वश होता है । कालवश मे भी धर्म पालन के कारण युद्ध करुगा चाहे जीतूं या नष्ट होऊँ । तब रक्त बीज को भेजता है । रक्त बीज देवी को साहित्य, दर्शन शास्त्र आदि की दृष्टि से नीतिगत रूप से शुम्भ की ओर प्रेरित करता है । देवी वही प्रतिज्ञा दुहराती है । रक्तबीज पहले तो मूर्छित हो जाता है, तो उसके गिरने की आवाज को सुन कर शुम्भ अपने सेनिको को देवी को घेरने का आदेश देता है । तब देवी के शखनाद आदि से देवियाँ आ पहुची उसी समय शक्तियों से घिरे हुए शँकर जी युद्ध क्षेत्र मे पहुँच देवियो को शुम्भ-निशुम्भ को मारने के लिये प्रेरित करने लगे । शँकर के इतना कहते ही देवी के शरीर से अद्‌भुतशक्ति निकली जिसने शिवजी को दूत बना कर शुम्भादि के पास भेजा । शिव जा कर शुम्भ से कहते है या तो स्वर्ग छोडकर पाताल जाओ या मरने के लिए तेयार हो जाओ । इतना सुनते ही देत्यगण देवियों पर बाण वर्षा करने लगे । तब इसी युद्ध में रक्तबीज मारा गया । इतने पर भी कालविमोहित शुम्भ अन्य देत्यो को फटकारता है । निशुम्भ कहता है । चिन्ता नहीं करना है । निशुम्भ "मृत्यु

होवे या विजय होवे" - यह निश्चय कर के सेना सहित चल दिया और शुम्भासुर युद्ध का प्रेक्षक बन जाता है -

प्रेक्षकोऽभूद्रणे राजा सङ्ग्रामरसपण्डित ।।दे भा श - 5/30/2 ।।

देवी कालिका से कहती है - हे कालिका इन दोनो मूर्खो को देखो काल से विमोहित ये दोनो दैत्य मेरी माया से विमोहित हो कर मेरे पास आ गये है, आज मे देखते - 2 इन्हे मार डालूगी । इतना कह कर देवी निशुम्भ के सामने आ गयीं । घमासान युद्ध हुआ । निशुम्भ का मस्तक देवी ने काट दिया तो कबन्ध हाथ मे गदा लिये घूमने लगा, देवी ने बाणों से उसके हाथ और पैर काट दिये । वह पापी मर जाता है । शुम्भ पुन अन्य दैत्यो के समझाने पर भी देवी से लडने की बात करता है । कहता है कि रक्तबीज और निशुम्भ सभी मारे गये तो मै अकेले जीवित रह कर क्या करुँगा ? विनाश तो ब्रह्मा का भी निश्चित है -

प्राप्ते काले स्वय ब्रह्मा परार्द्धद्वयसम्मिते ।

निधन याति तरसा जगत्कर्तास्वय प्रभु ।।दे भा -5/31/10 ।।

तत्पश्चात् शुम्भ देवी के पास पहुच जाता है । सिह वाहिनी त्रैलोकमोहिनी देवी को देखकर शुम्भासुर काम-मोहित हो जाता है । वह काफी सोच -विचार कर देवी से श्रृगारिक कथन कहता है -

नारीणा लोचने वाणा भ्रुवावेव शरासनम् ।

हावभावस्तु शस्त्राणि पुमाँल्लक्ष्य विचक्षण· ।।

सन्नाहश्चाङ्गरागोऽत्र रथश्चापि मनोरथ. ।

मन्दप्रज्जवलितं भेरी शब्दौ नाऽन्य. कदाचन ।।

अन्यास्त्रधारण स्त्रीणां विडम्बनामसंशयम् ।

लज्जेव भूषण कान्ते न च धाष्ट्र्यं कदाचन ।।

युद्ध्यमाना वरानारी कर्कशेवाऽभिदृश्यते ।

स्तनौ सङ्गोपनीयो वा धनुष· कर्षणे कथम् ।।[1]

---

[1] देवी भागवत - 5/31/36 से 39 तक

इसके बाद आगे कहता है कि यदि युद्ध करना है इतनी रूप योवन वाली न बनो, कुरुपा बनो, लम्बे ओंठ वाली बनो - इत्यादि ।

इतना सुन कर देवी ने कहा मूर्ख । मै प्रेक्षिका हू तुम कालिका या चामुण्डा चाहे जिससे युद्ध करो । मै तुमसे युद्ध नहीं करुँगी ।

कालिका ओर शुम्भासुर मे भयकर संग्राम हुआ शुम्भ मारा गया ।

चारो ओर शुभ कार्य होने लगे । यहीं तक शुम्भ कथा देवी भागवत मे मिलती है ।

दुर्गा सप्तशती के आधार पर शुम्भ वध की कथा और देवी भागवत में अन्तर

मार्कण्डेय पुराण मे उद्धृत दुर्गासप्तशती के आधार पर शुम्भ की कथा का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि देवी भागवत् ओर दुर्गासप्तशती मे ज्यादा अन्तर नहीं है । मात्र अन्तर थोडा सा है ।

(1) देवी भागवत मे पुष्कर तीर्थ मे शुम्भ निशुम्भ की तपस्या का वर्णन है और ब्रह्मा का वरदान देना वर्णित है जब कि दुर्गासप्तशती मे ऐसा नहीं है ।

(2) देवी भागवत में शुम्भ वरदान पा कर इन्द्रादि को जीत लेता है तो मार्कण्डेय पुराण मे यह वर्णन नहीं है ।

(3) युद्ध प्रकरण मे दुर्गासप्तशती मे "कम्बु" नामक चोरासी और उदायुद्ध नामक छियासी सेनानायक का वर्णन, पचास कोटि वीर्य कुल के और सो "धोम्र" कुल के असुर सेनापति आदि तेयार होते है । देवी भागवत मे सेनानायको का नामकरणादि नहीं है ।

बाकी शेष कार्य देवी भागवत जेसा दुर्गासप्तशती मे भी है ।

शुम्भवध महाकाव्य में मूल कथा से परिवर्तन

प्रस्तुत कथानक मे महाकवि ने पर्याप्त परिवर्तन किया है । कही कल्पना की उडान दिखाई पडती है तो कहीं पर कथानक का साम्य है, तो कहीं पर थोडा परिवर्तन है । जो महाकाव्यानुशीलन के पश्चात् इस प्रकार दृष्टिगोचर होता है-

(1) प्रारम्भ मे वश परिचय मे ही परिवर्तन है । पुराणो मे वर्णित है कि दो दैत्य पाताल लोक से आये । तपस्या के बाद वरदान प्राप्त कर शुक्राचार्य को पुरोहित बनाया, जबकि शुम्भवध मे महिषासुरवशीय दोनो भाईयों को शासन की राजगद्दी पर बेठते ही अपना गुरु शुक्राचार्य जी को बना कर देवता और दैत्यो मे विरोध का कारण पूछते है । शुक्राचार्य जी दोनो (देवों और दैत्यों) की उत्पत्ति कश्यप की दो पत्नी अदिति और दिति से बताते है । पुन समुद्र मन्थन से ले कर दैत्यवश के हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु और बलि का दान आदि का वर्णन, और शुम्भ आदि को नीतिगत उपदेश से युद्ध की ओर प्रेरित करना आदि वर्णन अन्य पुराणो मे है । देवी भागवत या अन्य पुराणो मे नहीं है ।

(2) दूसरा सर्ग पूर्णतय कवि की कल्पना प्ररोह है । यह भी पुराणो मे नहीं मिलता है । तीसरे सर्ग मे दोनो भाई अपना राज्य मन्त्रियो को सौंप कर नगर सीमा से निकलते है तो नागरिक अभिनन्दन, स्त्रियो द्वारा पुष्प वर्षा, रास्ते मे पडाव डालने से ले कर रात्रि विश्राम तक का वर्णन भी कल्पना मात्र है । यह भी पुराणो मे नहीं है ।

(3) चतुर्थ सर्ग मे वर्णित गणों के राज्य से ले कर महाराष्ट्र पर्यन्त आक्रमण और युद्ध का वर्णन शलातुर मे विश्राम आदि के अन्तर्गत अनेकानेक सिन्धु, सतलज, चन्द्रभागा, बेतवा आदि नदियों को पार करना आदि पूरा सर्ग कल्पना प्ररोह ही है यह वर्णन भी पौराणिक नहीं है ।

पञ्चम सर्ग पूरा पौराणिक है परन्तु शब्द शैली आदि मे परिवर्तन है । थोडा सा अन्तर मिलता है कि देवी भागवत मे एक हजार वर्ष तक शुम्भ शासन करता है । शुम्भवध मे वह शासन करते समय "भार्गवी" नीति को भूल कर त्रैलोक को व्यथित करता है, दोनों पुराणो मे भार्गवी नीति का उल्लेख नहीं है बल्कि शुम्भ के घमण्ड का वर्णन है, ओर किसानो से लगान लेना, रत्न व्यापारियो से रत्न, का कर, प्रजाप मे घूसखोरी दैत्यो द्वारा कराया जाना, प्रजा से हाथी , घोडे, गाय, ऊँट जो भी अच्छे लगे ले लेना आदि सभी वर्णन काल्पनिक है यह सभी पुराण सम्मत नहीं है ।

(4) षष्ठम सर्ग मे खास परिवर्तन नहीं है, जो प्रसग परिवर्तित है, उसमे मात्र कवि का पाण्डित्य ही प्रदर्शित है, जैसे, हिमालय वर्णन, वन वर्णन, गगा वर्णन आदि पुराण मे नहीं है । इसमे भी कवि कल्पना है ।

सप्तम सर्ग मे हिमालय पर्वत पर शिव के भवन मे देवी का दरबार लगा है, जहाँ देवी शिव के साथ सिहासन पर विराजमान है, इन्द्रादि से मत्रणा और नन्दिकेश्वर को दूत बना कर भेजना शुम्भ से जा कर देवी का सदेश कहना, पुन सुग्रीव का दूत बनकर जाना इस स्थल पर यह सब देवी भागवत या मार्कण्डेय पुराण मे नहीं है, बल्कि पुराणो मे जब देवता स्तुति करने लगते है तो देवी प्रकट हो कर कारण पूछती है । वहीं कौशिकी की उत्पत्ति होती है बल्कि सुग्रीव भेजना, चण्ड-मुण्ड के दर्शन के बाद होता है । यह सब शुम्भवध मे इस प्रकार नहीं है ।

5 आठवे सर्ग मे शुम्भ सेना तैयारी में बसन्त का आगमन, बसन्त वर्णन, शुभ लक्षण मान कर शुम्भ का दण्डाधिकारी धूम्रलोचन स्वय आता है और युद्धार्थ जाने की प्रार्थना करता है परन्तु, पुराणों मे धूम्रलोचन को बुलाया जाता है और बसन्त वर्णन पुराणों में नहीं है ।

नवम सर्ग मे मार्कण्डेय पुराण से कथानक मिलता है परन्तु देवी भागवत से धूम्रलोचन की सेना से युद्ध नहीं होता । धूम्रलोचन से ही भयानक युद्ध होता है । यहाँ भी परिवर्तन है । धूम्रलोचन वध के बाद देवी भागवत में दैत्य सेना से युद्ध नहीं होता परन्तु शुम्भवध और मार्कण्डेय पुराण मे युद्ध होता है ।

(6) दशम सर्ग का कथानक पौराणिक है थोडा सा परिवर्तन है । चण्ड और मुण्ड के वध के बाद कालिका का मस्तक लाया जाना है, परन्तु देवी भागवत मे चण्ड प्रतापी है । एक बार मूर्छित होता है, पुन युद्ध करता है चण्ड-मुण्ड और देवी का सवाद होता है । इसी समय देवी के अट्टहास पर काली निकलती है, इस प्रकार से वर्णन "सवाद" शुम्भ वध और मार्कण्डेय पुराण मे नहीं है । देवी भागवत मे चण्ड-मुण्ड और दैत्य सेना जब देवी को घेर लेती है तब अट्टहास करने पर काली निकलती है, जबकि शुम्भवध मे सीधे क्रोध से काली निकलती है ।

देवी भागवत मे चण्ड - मुण्ड का वध कालिका ने किया है तो शुम्भ वध और मार्कण्डेय पुराण मे देवी ने वध किया है ।

(7) एकादश सर्ग मे शिवजी का प्रकट होना दूत का कार्य करना नहीं है, परन्तु पुराणों मे यह वर्णन मिलता है और उसी समय देवी के शरीर से एक अद्भुत शक्ति निकलती है । वही शिव को दूत बना कर भेजती है वही शिवदूत कहलाती है । यह वर्णन शुम्भवध मे नहीं है ।

द्वादश सर्ग का कथानक मार्कण्डेय पुराण से तो मिलता है परन्तु देवी भागवत् मे निशुम्भ और देवी का सवाद ज्यादा है । खास परिवर्तन नही है ।

(8) त्रयोदश सर्ग मे शुम्भवध है । वह दुर्गा को मार कर अपने भाई की तर्पण की बात करता है । देवी उसे कायर आदि कहती है । परन्तु, देवी भागवत् मे शुम्भ देवी को देख कर मोहित हो जाता है । और काम भावना से बात कर के व्यग्य कसता है । अन्त मे कहता है कि यदि युद्ध करना है तो लावण्यमयी रूप त्याग कर भयकर रूप धारण करो । देवी उससे युद्ध नहीं करतीं । कालिका के द्वारा उसका वध होता है । शुम्भ वध मे ऐसा कोई वर्णन नहीं है । बल्कि देवी उसका वध स्वय करती है ।

चतुर्दश सर्ग मे मात्र देवी की स्तुति है । जैसा कि मार्कण्डेय पुराण मे शुम्भ वध के बाद देवता करते हैं । परन्तु चतुर्दश सर्ग की स्तुति मे कवि अपनी पराभक्ति, देवभक्ति, दार्शनिक ज्ञान आदि का दृष्टान्त सहित ज्ञान प्रदशित करने का अवसर प्राप्त करता है ।

----x----x----

(मूल कथा से परिवर्तन का मुख्य प्रयोजन)

शुम्भवध महाकाव्य मे पर्याप्त परिवर्तन के मुख्य प्रयोजन को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है -

1 प्रथम सर्ग मे शुक्राचार्य और शुम्भ - निशुम्भ का वार्तालाप है, वह मूल कथा मे नहीं है । इसके परिवर्तन का प्रयोजन है । महाकाव्य के लक्षणो मे बीज तथा आरम्भ दो शर्तो की पूर्ति । जो इस परिवर्तन से पूर्ण हो जाता है ।

अधिकाशत पुराणो मे दैत्यों को भयकर आक्रमणकारी आदि प्रदर्शित किया गया है । परन्तु शेवडे जी ने गुरू भक्त, इष्ट भक्त, पूर्वज भक्त, वैदिक धर्म आदि में आस्था रखने वाला बता कर दैत्यो मे भी अच्छे गुणों का समावेश कराया है । यही परिवर्तन मे प्रयोजन है ।

2 द्वितीय सर्ग मे शुम्भ की सेना मे हूण, शक, आदि का वर्णन ऐतिहासिक ज्ञान की ओर प्रेरित करना है । इसमे अच्छे सेनानायक के गुण का प्रदर्शन है । तीसरा सर्ग भी महाकाव्यगत् पडाव, प्रात , सूर्योदय, रात्रि आदि के वर्णन वाले लक्षणो को प्रदर्शित करने के लिये ही दिखाया है । यहाँ प्रयोजन सिद्ध है । चतुर्थ सर्ग भी नदी, देश, युद्ध आदि महाकाव्य के लक्षण का प्रयोजन सिद्ध करता है ।

3 पञ्चम सर्ग मे शुक्राचार्य भार्गवी नीति को भूल कर त्रिलोक व्यथित करता है । दैत्यगण घूसखोरी, लूट-खसोट आदि प्रारम्भ कर देते है । यह कवि की कल्पना है और कल्पना का प्रयोजन है कि यदि वह अपने गुरु के अनुसार चला होता तो उसका पतन न होता । पूरी दैत्य सेना मनमानी करने लगी । इसका प्रयोजन है कि सब कुछ दूसरे पर

नहीं छोड़ देना चाहिये । अत शुम्भासुर जैसा आचरण जो करेगा वह अवश्य ही पतन को प्रापत होवेगा । इसमे शुम्भ का शासन नहीं बल्कि आम राज्य का शासन है । यदि शासन व्यवस्था अस्थिर हुई तो पतन अवश्यम्भावी है ।

4 षष्ठम सर्ग मे देवी दुर्गा और देवताओं का राज दरबार मे मन्त्रणा कराना भी प्रयोजन है। युद्धादि के पहले राज दरबार मे मन्त्रणा करना, दूत-प्रेषण, सन्धि विग्रह आदि महाकाव्य मे लक्षण है । अत इसकी पूर्ति किया है । मूल कथा मे सुग्रीव विवाह का प्रस्ताव ले कर आता है । इसे महाकाव्य में बदल दिया गया है । प्रयोजन है कि शुम्भ के चरित्र को उज्जवल रखना । इस सर्ग मे राजनीति ज्ञान जैसे प्रयोजन की सिद्धि होती है । जैसे महाभारत मे श्रीकृष्ण स्वय दूत बन कर जाते है, तो यहाँ नन्दिकेश्वर दूत बन कर जाता है । यह सप्तम सर्ग मे है । अष्टम सर्ग मे बसन्त का आगमन और वर्णन यह महाकाव्य के ऋतु सम्बन्धी प्रयोजन की सिद्धि करता है ।

5 नवम् सर्ग मे मूल कथा मे धूम्रलोचन के सेना के साथ युद्ध वर्णन नहीं है परन्तु मार्कण्डेय पुराण और शुम्भवध मे युद्ध होता है । यहाँ सेनाओ से युद्ध करने का प्रयोजन देवी और सिह की बहादुरी तथा सैनिको की स्वामिभक्ति को प्रदर्शित करना है ।

दशम सर्ग मे रक्तबीज के युद्ध क्षेत्र मे आने पर शक्तियो सहित शिवजी के आने और शिवदूती की उत्पत्ति और शिवजी को दूत बना कर भेजना आदि महाकाव्य मे नहीं है । परन्तु मूल कथा मे है । प्रस्तुत महाकाव्य से इन्हे हटाने का प्रयोजन है कि लोकशकर लोकपावन त्रैलोकी शिव शुम्भ के दरबार मे दूत बन कर जाये यह श्री शेवडे जी को अच्छा नहीं लगा । इसीलिए शेवडे जी ने युद्ध के पहले ही दूत कार्य कर दिया । अत शिवजी को दूत बनाना अच्छा नहीं था ।

6 अन्य परिवर्तन की जो अन्यत्र महाकवि ने किया है उसका प्रयोजन है कि काव्य का निर्वाह उचित ढंग से हो सके, महाकाव्य ऊबाऊ, बोझिल न होवे, धारा प्रवाह मे बाधा न आ जावे । और भी महाकाव्यगत लक्षणों को ही ध्यान मे रखते हुए भी शेवडे जी ने परिवर्तन किया है । और अपनी कल्पना और पाण्डित्य को सजोया है । देश, काल और परिस्थितियो आदि को ध्यान मे रख कर ही महाकाव्य मे परिवर्तन किया गया । यही तर्क समीचीन भी लगता है ।

----x----x----

(महाकाव्य में काव्य - प्रयोजन की सिद्धि)

काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट ने काव्य प्रकाश मे किसी काव्य के प्रयोजन को बडे अच्छे ढग से प्रस्तुत किया है -

काव्य यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।

सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ।।का पु ।/2 ।।

काव्य यश के लिये, अर्थ (धन प्राप्त करने) के लिये, व्यवहारिक ज्ञान के लिए तत्क्षण परम आत्मानन्दानुभूति के लिए ओर सुख - दु ख मे) पत्नी के समान उपदेश परक होता है ।

महाकाव्य में कारिका की सिद्धि

काव्य यशशेऽर्थकृते - काव्य की रचना यश के लिए अर्थ साधन आदि के लिए होती है । श्री शेवडे जी ने शुम्भवध की रचना कर के अपनी मृत्यु के बाद भी यश को अमर कर दिया है , यदि महाकाव्य की रचना न करते तो इन्हे कोन जानता ? इन्होंने अपने को देवी पुत्र प्रदर्शित किया है । अपने को कालिदास विल्हण आदि के समान कीर्तिशाली बनाने का प्रयोजन दिखलाया है जो यश के लिए ही है ।

कुलक्रमादीश्वरभक्तिभाजन पुरस्कृत पुत्रवदद्रिकन्यया ।

पथिस्थितो विह्लणकालिदासयो कविर्वसन्तो विदुषा वशवद ।।

- निवेदन - 5,

सनूतन शुम्भवधाभिधानं काव्य निज मुद्रयितु प्रवृत्त ।

कृताञ्जलिः प्रार्थयते समस्तान् सहित्यशास्त्रार्णवकर्णधारान् ।।[1]

- निवेदन - 6,

प्रथम सर्ग का प्रयोजन स्पष्ट झलकता है -

माहेश्वर· काव्यपथप्रवृत्त पुत्रीकृत स्नेहवशात् भवान्या ।

निर्माति शर्मप्रदमादृताना काव्य नवं शुम्भवध बसन्त ।।

-शु0 व0 1/3 ।। 2

"अर्थकृते" नामक बिन्दु की समीक्षा करने से "कवि" के लिए यह कथन उतना अनुकूल नहीं है, क्योंकि कवि ने लालचवश काव्य नहीं रचा है बल्कि इससे सम्बन्धित अन्य लोगों की अर्थ सिद्धि अवश्य हो जावेगी । यह अर्थकृते भी सिद्ध होता है ।

व्यवहारविदे·
------ काव्यादि की रचना राजागत यथोचित व्यवहारिक ज्ञान के लिए होती है । शुम्भ वध के अवलोकन से ज्ञात होता है कि शुम्भासुर जेसा व्यवहार नहीं करना चाहिए । पहले तो कवि ने शुम्भ को गुरु भक्त, राष्ट्र भक्त आदि बता कर अच्छे गुणों वाला प्रदर्शित किया है । बाद मे वह शुक्राचार्य की नीति को भुला कर अत्याचार करता है और फलस्वरूप विनष्ट होता है । इसी बात को प्रथम सर्ग मे उपदेश दिया गया है ।

पौराञ्जनान्जानपदान् गिरिस्थान्नयेत् स्ववश्याननुरञ्जनेन ।

नश्येत् स राजा स्वयमेव नून नोत्पद्यते यस्यजनानुराग ।।2

अत महाकाव्य मे व्यवहारिक ज्ञान की जानकारी दिलाकर "व्यवहारविदे" नामक बिन्दु की पुष्टि हो जाती है ।

शिवेतरक्षतये
-------- "शिव" अर्थात् कल्याण कारक और "शिवेतर" अर्थात् "शिवात्इतर" तस्यक्षतयें - अर्थात् दु·ख के विनाश के लिए अर्थात् दु खादि से रक्षा के लिए भी काव्य की रचना हो जाती है, जेसे मयूर भट्ट ने रोग निवारण के लिए सूर्यशतक की रचना की जो आज अनुपलब्ध है ।

शुम्भवध के पक्ष मे भी यह तर्क सिद्ध होता है । इस काव्य के मनन और पठन - पाठन से देवी दुर्गा की भक्ति प्राप्त हो सकती है । जिससे व्यक्ति का कल्याण हो सकता है । जैसे दुर्गासप्तशती का पाठ करने से अनेकानेक प्रकोप शान्त हो जाते है । उसी प्रकार शुम्भवध मे स्तुति पर श्लोको से पाठक की "शिवेतर" से रक्षा हो सकती है । अत यहाँ इस प्रयोजन की भी सिद्धि हो जाती है ।

सद्य परनिवृत्तये
---------- काव्य भी ब्रह्मानन्द के समान तत्क्षण परमाह्लादक होता है यह भी एक प्रयोजन है । काव्यानुशीलन करने से पाठक विगलित वेद्यान्तर हो जाता है उसको अलौकिक आत्मानन्द की अनुभूति होती है । सब कुछ भूल जाता है । वीरता के प्रसग मे वीर रस की अनुभूति, तथा स्तुति के प्रसग मे अलौकिक भक्ति का अनुभव होता है, माँ दुर्गा साक्षात् सामने प्रकट सी हो जाती है । यदि एकाग्रता से अटल हो कर स्तुति की जाये तो माँ जीवन मुक्ति का वरदान दे सकती है , जैसे -

भुवनत्रयमेतदम्बिके सृजसि त्व परिपासि तृहसि ।

विधिविष्णुशशाकशेखरास्तवपुम्भावविलास विग्रहाः ।।

शु0 व0 - 6/50 ।।

निपतेत् सकृदेव यत्र ते करुणामेदुरमम्ब वीक्षितम् ।

स गिलङ् द्यम विपत्तिसन्ततिं तनुते श्रेष्ठपदाधिरोहणम् ।।

शु0 व0 - 6/56 ।।

इस महाकाव्य के अनुशीलन से परमात्मानन्द की रसानुभूति ही नहीं बल्कि इतना भक्तिमय है कि वास्तविक परमानन्द की प्राप्ति हो सकती है । अत 'सद्य' परनिवृतये" की भी सिद्धि हो जाती है । सर्ग चतुर्दश तो भक्ति से भरा ही है ।

कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे
-------------- काव्य आपत्तिकाल मे पत्नी के समान उपदेश दे कर अच्छे-बुरे का ज्ञान कराने वाला होता है ।

शुम्भवध मे इस की भी सिद्धि होती है । कितना भी प्रतापी राजा क्यों न

हो यदि अनुचित आचरण ओर दूसरे के अधिकार का अतिक्रमण करता है तो शुम्भासुर की तरह उसका भी पतन अवश्यम्भावी है । यदि शुम्भासुर देवताओं का अधिकार न छीनता तो उसकी मृत्यु न होती । अत इस महाकाव्य मे अधर्म पर धर्म की विजय को बताया गया है । **अतः प्रस्तुत महाकाव्य में काव्य - प्रयोजन की कारिका की पुष्टि हो जाती है ।**

----x----x----

(शुम्भवध मे महाकाव्यत्व के प्रमाण)

महाकाव्य
----- भामह ने भामहालंकार (1/18/23) मे दण्डी ने काव्यादर्श (1/13/22) मे, अग्निपुराण (अ0 337) मे और आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण (6/315-25) मे महाकाव्य के लक्षणों का विस्तार से वर्णन किया है, जिसमे साहित्यदर्पण मे प्राप्त लक्षण सर्वांगीण एव व्यापक है, जो इस प्रकार है -

सर्ग बन्धो महाकाव्य तत्रेको नायक सुर ।

. सर्ग नाम तु0[1]

। यह सर्गो मे विभक्त होता है । (2) नायक देवता, कुलीन क्षत्रिय या एक वशज कुलीन अनेक राजा होते है । (3) श्रृगार, वीर और शान्त मे से कोई एक प्रधान रस होता है और अन्य रस उसके अग (सहायक) होते है । (4) सभी नाटकीय सन्धियाँ होती है (5) कथानक या तो ऐतिहासिक होता है या किसी सज्जन व्यक्ति से सम्बद्ध (6) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का वर्णन और उनमे किसी एक के फल की प्राप्ति का वर्णन होता है उनमें किसी एक के फल की प्राप्ति का वर्णन होता है (7) प्रारम्भ मे देवादि को नमस्कार आशीर्वाद या वस्तु - निर्देश होता है । दुर्जन निन्दा और सज्जन - प्रशसा भी रहती है (8) प्रत्येक सर्ग मे एक छन्द और सर्गान्त मे छन्द परिवर्तन होता है । (9) कहीं - कहीं विभिन्न छन्दो वाले सर्ग भी होते है (10) सामान्यत मध्यम श्रेणी के आठ से अधिक सर्ग होते है (11) सर्गान्त मे भावी कथा का सकेत होता है (12) सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धाकार, दिन, प्रात मध्यान्ह, मृगया, शैल, ऋतु, उदय (उत्थान) आदि का वर्णन होता है । (13) ग्रन्थ का नाम कवि, कथानक, नायक, या प्रतिनाये के नाम पर रखाना चाहिये (14) सर्ग का नाम वर्णित कथा के आधार पर रखाना चाहिए । (15) कहीं पर अनेक छन्द वाले सर्ग भी होते है ।

आर्ष महाकाव्यो का नाम आख्यान पर निर्भर होता है । जैसे-रामायण, महाभारत आदि ।

नायक के नाम पर - रामायण, रघुवश, कुमार सभव, नेषधीयचरितम् ।

कथानक के नाम पर किरातार्जुनीयम्, शिशुपाल वधम्, । "शुम्भवधम्" भी इसी श्रेणी का महाकाव्य है ।

कवि के नाम पर भट्टिकाव्य ।

इनमे सर्गो का नाम वर्णित कथा के आधार पर होता है । जैसे -

"इति रघुवशे महाकाव्ये रघुवशाभिषेको नाम तृतीय सर्ग ।"

इनकी शैली अधिकाशत तीन प्रकार की होती है -

1 **प्रसादात्मक शैली** - रामायण, महाभारत, कालिदास, अश्वघोष आदि मे प्राप्त शैली ।

2 **अलकारात्मक शैली** - यह भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि के महाकाव्यो मे प्राप्त है ।

3 **श्लेषात्मक शैली** - यह द्वयर्थक और त्रयर्थक काव्यो मे मुख्य रूप से प्राप्त है ।

इनमे - द्विसन्धान काव्य, राघवपाण्डवीय, राघवनेषधीय आदि रचनाए है ।

महाकाव्य में महाकाव्यत्व

महाकाव्य की प्रवाहनदी सुललित पदावली वाली कृतियो मे कवि कुलगुरु महाकवि श्री कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष, कल्हण कवि, बाल्मीकि, अश्वघोष आदि के द्वारा महाकाव्य रचे गये ।

इन सभी कवियों के महाकाव्यो का गहन अवलोकन करने एव अनुशीलन कर के अत्यन्त प्रभावित उदार हृदय वाले सहृदय, शिव के परमोपासक, पार्वती के द्वारा पुत्रीकृत, पार्वती के कृपा कटाक्ष का लाभ प्राप्त करने वाले, आजीवन ब्रह्मचर्य जीवन का पालन करने वाले, अन्यान्य गुणो से गुणान्वित महाकवि श्री बसन्त त्रयम्बक

शेवडे कृत - **शुम्भवध महाकाव्य** - का गहानुशीलन से यह विदित होता है कि यह महाकाव्य वीर रस प्रधान होता हुआ भी प्रसाद गुण और अनेकानेक रसो से ओत-प्रोत है । प्रस्तुत महाकाव्य मे महाकाव्यगत सभी लक्षण विद्यमान है । साहित्य दर्पण के आधार पर कुछ लक्षण इस प्रकार प्रस्तुत किये जा सकते है -

1 "**सर्गबन्धो** महाकाव्य अर्थात् महाकाव्य सर्ग बन्ध होना चाहिए । शुम्भवध महाकाव्य भी चतुर्दश सर्ग पर्यन्त है । अत यह लक्षण घटित होता है । जिसमे दैत्य शिरोमणि शुम्भासुर और शुक्राचार्य की वार्तालाप से सर्ग प्रारम्भ होता है, और अनेकानेक वर्णनो और विजयो के बाद अन्त मे त्रयोदश सर्ग में शुम्भादि का वध देवी दुर्गा के द्वारा हो जाता है और चतुर्दश सर्ग मे देवताओ द्वारा देवी की स्तुति और देवी के वरदान के साथ ही महाकाव्य का उपसहार हो जाता है । अत सर्गबन्ध महाकाव्य है ।

2 **तत्रैको नायक सुर** अर्थात् नायक कोई देवी पुरुष हो, कुलीन वशज हो या क्षत्रिय वंशज या धीरोदात्त गुणयुक्त, अथवा अनेकों नायक हो सकते है । परन्तु शुम्भवध का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि प्रारम्भ मे तो शुम्भासुर नायक दिखाई पड़ता है, जिसकी विजय पाँचवे सर्ग पर्यन्त चलती है परन्तु त्रयोदश सर्ग मे देवी के द्वारा उसका वध होने से वह प्रतिनायक हो जाता है क्योंकि नायक अवध्य होना चाहिए । अत देवी शुम्भासुर का वध कर के महाकाव्य की प्रधान नायिका बन जाती है, वही देवताओं का प्रयोजन सिद्ध करती है । अत यह महाकाव्य भी नायिका प्रधान या कथानक प्रधान मान लिया जाता है और नायिका भी नायक के समस्त गुणों से गुणान्वित है । अत तत्रैको नायकों सुर भी "नायिका" मे पर्यवसित हो जाता है । यह लक्षण भी घटित होता है ।

3 श्रृगारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते- अर्थात् महाकाव्य मे श्रृगार, वीर, या शान्त मे एक अगी (प्रधान) रस होता है । शेष रस अग हो जाते है । शुम्भ वध महाकाव्य वीर रस प्रधान महाकाव्य है, जिसमे अग रूप मे हास्य, अद्भुत, भयानक, वीभत्स, आदि रस प्राप्त होते है । अत यह तर्क भी सिद्ध हो जाता है कि अँगानि सर्वेरसा , भी घटित है ।

4 सर्वनाटक सन्धय - महाकाव्य मे सभी नाट्य सन्धियाँ होनी चाहिए । इसलिए शुम्भवध महाकाव्य भी, मुख सन्धि प्रतिमुख सन्धि, गर्भ सन्धि, अवमर्श सन्धि ओर निर्वहण सन्धि आदि पाँचों प्रकार की नाट्य सन्धियो से युक्त है, जो यथा - स्थान यत्र - तत्र बिखरी पडी है ।

5 इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद् वा सज्जनाश्रयम् - अर्थात् महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक होता है या किसी व्यक्ति से सम्बन्धित । शुम्भ वध महाकाव्य का आधार पोराणिक है - शुम्भ और निशुम्भ नामक दो देत्य पाताल लोक से आये जिसने त्रैलोक जीत कर स्वर्ग पर अधिकार कर लिया जिसका वध दुर्गा ने किया था, जो पार्वती के नाम से भी जानी जाती है ।

पुराशुम्भनिशुम्भो द्वावसुरो भूमिमण्डले ।

पातालतश्च सम्प्राप्तो भ्रातरो शुभ दर्शनो ।।

- देवी भा0 5/21/10 ।।

इनका वर्णन मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत दुर्गा सप्तशती मे भी प्राप्त है । अत पोराणिक आधार होने से महाकाव्य का यह तर्क भी सिद्ध होता है ।

6. चत्वारस्तस्य वर्गा स्युस्तेष्वेक च फलम्भवेत् - अर्थात् महाकाव्य मे चतुर्वर्ग - धर्म - अर्थ-काम और मोक्ष का वर्णन और किसी एक की फल प्राप्ति का वर्णन होना चाहिये । शुम्भ वध महाकाव्य धार्मिक महाकाव्य है । अत यह धर्म प्रधान महाकाव्य है । जिसके कतिपय विवरण इस प्रकार है -

महाकाव्य मे धर्म - काव्य में धर्म का तात्पर्य है कि एक भी शब्द यदि अर्थानुसार उचित रूप से प्रयुक्त हो और भली भांति समझ लिया जाय, तो वह इह लोक और परलोक मे समस्त कामनाओं को पूर्ण कर लेता है ।[1] प्रस्तुत महाकाव्य को पढने वाले और काव्य के रचना करने वाले - दोनो को धर्म की प्राप्ति होती है । अत महाकाव्य मे "धर्म" बिन्दु घटित होता है ।

"माहेश्वर काव्यपथ्यप्रवृत्त पुत्रीकृत स्नेहवशात् भवान्या ।
निर्माति धर्मप्रदभावृतानां काव्य नव शुम्भवधं वसन्त ।।

महाकाव्य मे अर्थ-काव्य के अर्थरूप द्वितीय पुरुषार्थ की प्रतिधावकादि कवियो के द्वारा दृष्टिगोचर है - "धावकादीनाभिवधनम् (का0प्र0 1/2) । अत काव्य रचने से धन की प्राप्ति होती है । शुम्भ वध के आधार पर अन्य लोगो को धन प्राप्त हो सकता है । अत इस महाकाव्य के रचने से यह तर्क भी पूर्ण हो जाता है।

काम - अर्थात् कामना या आवश्यकता की पूर्ति - अर्थ नामक लक्षण की पूर्ति होने के बाद काम की भी पूर्ति हो जाती है । कामना का एक उदाहरण - यहाँ यश की इच्छा होने से काम है ।

मोक्ष - मोक्ष अन्तिम पुरुषार्थ होता है - धर्म, अर्थ, काम की पूर्ति के बाद शान्ति आ जाती है । शुम्भ की रचना कर के महाकवि आप्त काम हो गये उनकी मन शान्ति हो जाती और अन्त मे मोक्ष को भी प्राप्त कर जाते है । काव्य मे मोक्ष का अर्थ है कि - "काव्यानुशीलन से परमानन्द आह्लादकत्व की प्राप्ति 'सद्य परनिवृत्ति' जो मोक्ष से भी बढ़ कर है और वह है रसो का आनन्द । शुम्भवध के पढने से पाठक रसमय हो जाता है । उसे परमानन्द प्राप्त होता है । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष है ।

---

1 एक शब्द सुप्रयुक्त सम्यग्ज्ञात स्वर्गे लोके कामधुक् भवति ।।वेदवाक्य।।

यहाँ पर "धर्म" नामक पुरुषार्थो के फल की प्राप्ति का उद्देश्य स्पष्ट है । "धर्म" नामक फल की प्राप्ति को ध्यान में रख कर इस महाकाव्य की रचना की गई है । अत यह तर्क भी सिद्ध हो जाता है ।

7. आदो नमस्क्रियाऽऽशीर्वावस्तुनिर्देश एव च- अर्थात् प्रारम्भ मे "इष्ट" को नमस्कार आदि की प्रक्रिया के द्वारा मंगल किया जाना चाहिए अथवा आशीर्वाद युक्त कथनो से या वस्तु-विनिर्देश किया जाना चाहिए ।

शुम्भवध में "आदो नमस्क्रिया" को आधार मान कर मगलाचरण किया गया है -

पीयूषवर्षप्रवणंप्रसादे ज्वालाजटालं क्वचिदुग्रातायाम् ।

भव्याय नव्याम्बुजकान्ति भूयात् पिनाकपाणेर्नयनत्रयं न ।।शु0व0।/।।

यहाँ शिव जी का मगलाचरण किया गया है -

8. क्वचिन्निन्दाखलादीना सताचगुणकीर्तनम् - अर्थात् कहीं दुर्जननिन्दा तो कहीं सज्जनो का गुणगान होता है । शुम्भवध में अन्य महाकवियो की तरह पृथक् रूप से कोई निन्दा या प्रशंसा नहीं की गई है । प्रथम सर्ग मे दुर्जन निन्दा झलकती हे जब देवता दैत्यों को स्नान करने भेजते है, तो अमृत की कलशी खाली कर देते है, तो शुक्राचार्य शुम्भ निशुम्भ से कहते हैं कि देवताओं ने दैत्यों से कहा-

स्नात्वा भवन्तो द्रुतमाव्रजन्तु पातुं सुधामित्यसुरान् विमोह्य ।

सुधाऽपि तैरेव मिथो निपीता प्रवञ्चना कुत्र न सिद्धमेति ।।शु0व0 ।/22

यह देवताओ की निन्दा की गई है ।

सज्जनता का एक उदाहरण उपदेश के प्रसग मे -

धराभुजः नीतिपरायणस्य जयैषिणो विक्रममण्डितस्य ।

अनगरंगे निपुणस्य यून प्रयाति कान्तेव वश जयश्री ।।

शु0 व0 - ।/38 ।।

एक उदाहरण ऐसा है जो सज्जन प्रशंसा और दुर्जन निन्दाओं दोनों झलकती है -

हलाहलं तेषु दया समुद्र· पपौ कराल भगवान्महेश ।
शिष्टानि रत्नानि सुरा अगृह्णन् यथायथं दैत्यजनान्प्रतार्य। शु0व0 1/21 ।।

और दुर्जननिन्दा और स्तुति प्रशंसा भी झलकती है ।

9 एकवृत्तमये· पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकै अर्थात् एक सर्ग मे एक छन्द का प्रयोग होता है और सर्गान्त मे छन्द परिवर्तित हो जाता है ।

शुम्भवध महाकाव्य मे प्रथम से षष्ठ सर्ग पर्यन्त एक सर्ग वाले छन्दो की रचना है और सर्गान्त मे छन्द परिवर्तित है । सप्तम सर्ग मे स्वागता, बसन्ततिलका और प्रहर्षिणी - ये तीन छन्द है । अष्टम और दशम तक पुन एक छन्द मे एक सर्ग है और सर्गान्त में छन्द परिवर्तित है । एकादश से चतुर्दश पर्यन्त पुन बहुत छन्दो वाले सर्गो की रचना है । अत महाकाव्य का "छन्द" का लक्षण भी घटित हो जाता है ।

10 नानावृत्तम क्वाऽपि सर्ग कश्चन दृश्यते- किन्हीं सर्गो मे अनेकों छन्द होते हैं । तो इस तर्क को उपर्युक्त लक्षण मे स्पष्ट किया गया है कि सप्तम, द्वादश, त्रयोदश और चतुर्दश सर्ग में छन्दो की बहुलता है । अत यह लक्षण भी घटित होता है ।

11 नातिस्वल्पा· नातिदीर्घा· सर्गाष्टमाधिका· अर्थात् सर्ग न तो छोटे न तो बडे बल्कि अष्ट सर्ग से कम नहीं होना चाहिए । "शुम्भवध" मे सर्ग न छोटे है न अधिक बड़े हैं । कुल चतुदर्श सर्ग है । प्रथम मे 62, दूसरे

मे 56, तीसरे मे 60, चतुर्थ में 82, पञ्चम मे 68, छठे मे 65, सातवे मे 58, आठवे मे 50, नवे में 41, दशम मे 42, एकादश मे 50, द्वादश मे 61 और चतुर्दश मे 53 श्लोक है । कुल 816 श्लोक है । अत यह लक्षण भी घटित हो जाता है ।

12 सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथाया· सूचन भवेत् - अर्थात् सर्गान्त मे भावी सर्ग की कथा की सूचना होनी चाहिए । शुम्भवध महाकाव्य के प्रथम सर्ग मे शुम्भासुर और शुक्राचार्य का संवाद होता है और अन्त मे दिग्विजय की बात आती है तो वह प्रस्थान के लिए तिलककार्य सम्पन्न करा लेता है उसके बाद प्रस्थान की तैयारी करता है जो यात्रा द्वितीय सर्ग मे प्रारम्भ होती है ।

द्वितीय सर्ग मे सेना की तैयारी होती है तो सेना प्रयाण की अन्त मे सूचना दी जाती है कि उसकी तैयारी को सुन कर समस्त राज की डर जाता है । तीसरे सर्ग मे सेना प्रस्थान करती है तो पडाव पड जाता है । तो चतुर्थ सर्ग मे युद्ध होती है । इसीलिए अन्य सर्गो मे भी है ।

अत यह लक्षण भी घटित हो जाता है ।

13 सन्ध्यासूर्यन्दुरजनीप्रदोध्वान्तवासरा अर्थात् सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, प्रदेष, अन्धकार तथा दिन का भी वर्णन होता है ।

शुम्भ वध के तृतीय सर्ग मे सन्ध्या (साय) का वर्णन है । जब सूर्य अस्ताचल को जाने लगा तो सन्ध्या की ओर इंगित करता है जैसे -

इत्थ तस्मिन् दैत्यसेना सन्निवेशे सायकाले विश्रामाय प्रवृत्ते ।

कृटादस्तक्ष्माभृतो मन्दमन्द भासानाथ पश्चिमाब्धौ ललम्बे ।।शु0व03/48

इस प्रकार तृतीय सर्ग मे ही 49वें श्लोक मे सूर्यवर्णन 50वे मे गोधूलि, 57वे मे अन्धकार 58वे मे चन्द्र, 68वे व 69वे मे रात्रि, 53वे मे अन्धकार का वर्णन

आदि होने से यह लक्षण भी घटित हो जाता है । चतुर्थ सर्ग मे प्रभात वर्णन है ।

14 शैलर्तु वनसागरा – अर्थात् पर्वत, ऋतु, वन, सागर, इत्यादि का वर्णन होता है । शुम्भवध के द्वितीय सर्ग मे मुख्यत शरद्ऋतु का वर्णन है । अष्टम सर्ग मे मुख्यत वसन्त ऋतु का वर्णन है । द्वितीय सर्ग के श्लोक 12 से 38 तक शरद् द्दतु का अच्छा उदाहरण प्राप्त होता है । अष्टम सर्ग के श्लोक 4 से 42 तक बसन्त का वर्णन है । अन्य ऋतुओं को गोण कर दिया गया है। हिमालय वर्णन छठे सर्ग के प्रथम श्लोक से 30वे श्लोक तक हिमालय का वर्णन है । इसी मे वन वर्णन भी है । इसी सर्ग में श्लोक 31 से 42 तक गगा नदी का वर्णन है । सागर वर्णन न के बराबर है । फिर भी कुछ लक्षण घटित होने से महाकाव्य का यह लक्षण भी घटित हो जाता है ।

15 मुनिस्वर्गपुराध्वरा अर्थात् मुनि स्वर्ग अध्वर आदि का वर्णन होता है । प्रस्तुत महाकाव्य मे स्वर्ग का वर्णन है, नागलोक आदि लोकों का वर्णन है । अत यह लक्षण भी घटित होता है । इस प्रकार अनेकों प्रकार का वर्णन होने से महाकाव्य का लक्षण है ।

16 कवेर्वृत्तस्य वा नाम्नानायकस्येतस्य वा अर्थात् महाकाव्य का नाम करण, कवि, कथानक, नायक, प्रतिनायक, अथवा वर्ण्यवस्तु या अन्य के नाम पर होना चाहिए । "शुम्भवध" का नामकरण कथानक के आधार पर रखा गया है । "शुम्भ" इस महाकाव्य का प्रतिनायक है । जिसकी कथा पोराणिक है । देवी भागवत् और मार्कण्डेय पुराण मे इस कथा का विस्तृत उल्लेख है ।

शुम्भवध का "नामकरण" कथानक के आधार पर है । माघ ने भी "शिशुपाल वध" का नामकरण वर्णित कथा के आधार पर किया है।

अत "शुम्भवध" का नामकरण पौराणिक आधार पर है ।

17 नामस्य सर्गोपादेय कथया सर्ग नाम तु - अर्थात् प्रत्येक सर्ग नाम उसमे वर्णित वस्तु के आधार पर होता है ।

शुम्भवध महाकाव्य मे भी यह लक्षण पूर्णतया घटित है । जैसे-

1 शुम्भासुर-शुक्राचार्य-सवादनामा प्रथम· सर्ग ।

2 शुम्भासुरस्य त्रिभुवन विजयार्थं चतुरगबलसवलननामा द्वितीय सर्ग ।

3 शुम्भासुरस्य जैत्रयात्राप्रारम्भनामा तृतीय सर्ग ।

4 शुम्भासुरस्य पृथ्वीदिग्विजयनामा चतुर्थ सर्ग ।

5 शुम्भासुरस्य स्वर्गपाताल-विजयनामा पञ्चम सर्ग ।

6 इन्द्रप्रभृतीना देवाना हिमवन्तमुपेत्य दुर्गाप्रार्थनानामा षष्ठ सर्ग

7 शुम्भासुर सभाया नन्दिकेश्वरदूतवर्णननामा सप्तम सर्ग ।

8 शुम्भासुरद्वारा धूम्रलोचनप्रेषणनामा अष्टम सर्ग ।

9 धूम्रलोचन वधनामा नवम सर्ग ।

10 चण्डमुण्डवधनामा दशम सर्ग ।

11 रक्तबीजवधनामा एकादश सर्ग ।

12 निशुम्भवधनामा द्वादश· सर्ग ।

13 शुम्भासुरवधनामा त्रयोदश सर्ग ।

14 इन्द्रादि देवताद्वरा देवीस्तुतिनामा चतुर्दश सर्ग ।

इससे विदित होता है कि शेवड़े जी ने सर्ग का नाम भी नियमानुसार ही रखा है । क्योंकि प्रथम मे शुम्भासुर और शुक्राचार्य का सवाद है । दूसरे सर्ग मे सेना की तैयारी, तीसरे सर्ग मे यात्रा प्रारम्भ होती है और चतुर्थ सर्ग मे शुम्भ पृथ्वी के अनेकों राजाओ को जीत लेता है । अत यह लक्षण भी घटित होता है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि शुम्भवध महाकाव्य मे वे सभी गुण विद्यमान है, जो एक महाकाव्य मे होने चाहिए । कहीं किसी बिन्दु पर कठिनता नहीं आती, जो भी प्रसग है प्रसगत आ पडे है । अनावश्यक प्रसगो का समावेश नहीं किया गया है । दैत्यवश मे उत्पन्न होते हुए भी शुम्भ को शेवडे जी ने, एक पृथ्वी पालक स्वाभिमानी, प्रकृतिरञ्जक, वेद धर्म को मानने वाला माना है ।

प्रस्तुत महाकाव्य मे सभी सन्धियाँ अपने अगों सहित है । नदी वर्णन, ऋतु वर्णन, वन वर्णन, ग्रामीण चित्रण, कृषि क्षेत्र का वर्णन, युद्ध वर्णन, पर्वत वर्णन आदि अनेकानेक वर्णनों से युक्त है । शुम्भासुर मे एक प्रतिनायक के सभी गुण विद्यमान है ।

अत शुम्भवध में महाकाव्यत्व के गुण एव लक्षण विद्यमान होने से इसके महाकाव्यत्व की सिद्धि हो जाती है ।

****

:: तृतीय अध्याय ::

(महाकाव्य मे सन्धि - सन्ध्यड् ग)
विवेचन

*****

. तृतीय अध्याय .

(शुम्भवध महाकाव्य मे सन्धि-सन्ध्यङ्ग विवेचन)

काव्याचार्यों के अनुसार काव्य मे कथानक मे सन्ध्यङ्गो का यथोचित वर्णन करना कवि के लिए अपेक्षित है । सन्धि की व्युत्पत्ति इस प्रकार मानी जा सकती है - **सम्यक् रूपेण धीयते व्यवस्थीपतेवा इति सन्धि ।**

किसी भी रूपक की कथावस्तु की सुनिश्चित सुव्यवस्थित योजना को सन्धि कहते है । अर्थात् - "सन्धीमते इति सन्धि ।

सन्धि - निरुपण

दशरूपक कार के अनुसार परिभाषा इस प्रकार है - किसी भी रूपक की कथावस्तु की सुव्यवस्थित योजना का नाम सन्धि है- "सन्धानमिति कि ।"

नाट्यशास्त्र के अनुसार - "अन्तरैकार्थ सम्बन्ध· सन्धिरेकान्वये सति । अर्थात् एक प्रयोजन का दूसरे प्रयोजन से अन्वित हो जाना सन्धि है ।[1]

अभिनव गुप्त का कथन है - "सन्ध्यन्ते इति सन्धि न तु सन्धानमेष सन्धि[2]

निरुक्त मे सन्धि की व्युत्पत्ति इस प्रकार है -

महावाक्यार्थ रूपकपस्य रूपकार्थस्य पञ्चाशा अवस्था भेदेन कल्पयन्ते तेन अर्थावञ्चना सन्धीयमाना परस्परमङ्गस्य एव सन्धय इति समाख्या निरुक्ता ।

इन सन्धियों का सामान्य लक्षण निरुपित किया जा रहा है -

नाट्यशास्त्र मे सन्धियॉं

भरत मुनि ने कहा है -

इतिवृत्तु तुनाट्यस्थं शरीरं परिकीर्तितम् ।

पञ्चाभिस्सन्धि: तस्य मुखाद्या परिकीर्तिता ।।[3]

---

1 ना0शा0सा0 लक्षण
2 अभिनव भारती
3 ना0शा0

अर्थात् इतिवृत्ति को नाट्य का शरीर कहा गया है (और) मुखादि उनकी पॉच सन्धियाँ कही गयीं है ।

दशरूपककार ने कहा है -

अर्थप्रकृतय· पञ्च पञ्चावस्था समन्विता ।

यथासख्येन जायन्ते मुखाद्या पञ्चसन्धय ।।[1]

अर्थात् पाँच अर्थ प्रकृतियो ओर पाँच अवस्थाओं के परस्पर मिलने से सन्धियाँ बन जाती है ।

अर्थ प्रकृतियाँ	अवस्थापञ्चक	सन्धि
। बीज	। आरम्भ	। मुख
2 बिन्दु	2 प्रयत्न	2 प्रतिमुख
3 पताका	3 प्रात्याशा	3 गर्भ
4 प्रकरी	4 नियताप्ति	4 सावमर्श
5 कार्य	5 फलागम	5 निर्वहण

महाकाव्य में सन्धियाँ · शुम्भवध महाकाव्य मे कवि ने यथा स्थान पाँच सन्धियों एवं उनके अगों का यथासम्भव प्रयोग किया है, जिनका निरुपण इस प्रकार है -

मुख सन्धि - मुख बीज समुत्पत्तिर्नानार्थरससम्भवा ।[2]

अगानिद्वादशैतस्य बीजारम्भ समन्वयात् ।।दशरूपक।।

। दशरूपक

2 दशरूपक

अर्थात् बीजनामक अर्थ प्रकृति और आरम्भ नामक अवस्थापञ्चक के भेद से मुख सन्धि का निर्माण होता है ।

बीज

स्वल्पोद्दिष्टस्तु तद्हेतु बीज विस्तार्यनेकधा । (दशरूपक)

रूपकारम्भ के अल्पसूक्ष्म मे सकेतित किन्तु आगे चलकर अनेक प्रकार से पल्लवित होने वाला इति वृत्त मे बीज होता है ।

शुम्भवध का मुख्य विषय है - धर्म की विजय और अधर्म की पराजय का वर्णन करना । ग्रन्थारम्भ मे कवि ने वीर रस प्रधानस्तुति की रचना की है -

पीयूषवर्षप्रवर्णप्रसादे ज्वालाजटाल क्वचिदुग्रतायाम् ।

भव्यायनव्याम्बुज कान्ति भूयात् पिनाकपाणेर्नयनत्रय न ।।शु0व0 1/1

इससे प्रतीत होता है कि यह काव्य युद्ध विषयक है । और नामकरण से और स्पष्ट है -

निर्माति शर्मप्रदमादृताना काव्य नव शुम्भवध वसन्त ।।शु0व0 1/3 ।।

प्रथम सर्ग मे देवताओ को दोषी बता कर शुम्भ और निशुम्भ के सामने देवों की इतनी निन्दा करते है कि वे दोनो दैत्य बोल उठते है कि आप तीनो लोको मे सर्वश्रेष्ठ राजनीति मे निपुण हैं, अत अब हम कश्यप जी को ध्यान कर जगत जीतने के लिये प्रयाण करते है । यहीं से बीज प्रारम्भ होता है । यदि शुक्राचार्य न उकसाते तो युद्ध न होता ।

कूटस्थित कश्यमन्तरगे ध्यात्वा जगज्जेतु व्रजाम ।।शु व ।/58 ।।

आरम्भ
----- ओत्सुक्यमात्रमारम्भ फललाभाय भूयसे - अर्थात् कार्य सिद्धि या फल लाभ के लिए उत्सुकता मात्र ही आरम्भ है ।

प्रथम सर्ग मे देवता और दैत्य के विरोध का संक्षिप्त वर्णन सुनते ही शुम्भ - निशुम्भ अपना अधिकार प्राप्त करने हेतु युद्ध का विचार करते है, तब शुक्राचार्य के द्वारा अभिषेक सस्कार किया जाना - आरम्भ नामक अवस्थापञ्चक को प्रदर्शित करता है । शुक्राचार्य आशीर्वाद भी देते है -

सिञ्चन् महर्षि स तदुत्तमाङ्गं वेदोदितंस्वस्त्ययन चकार ।। शु व ।/60

युद्धस्वयवरमहे विजयश्रिय तौ सिद्धो वरीतुमिव दैत्यवरौ व्यभाताम् ।।

शु0 व0 ।/62

मुख सन्धि के अग

उपक्षेप परिकर परिन्यासो विलोभनम्

युक्तिःप्राप्ति समाधान विधान परिभावना ।।[1]

मुख सन्धि के तेरह भेद है - उपक्षेप, परिकर, परिन्यास, विलोभन, युक्ति, प्राप्ति, समाधान, विधान और परिभावना ।

शुम्भ वध मे प्राप्त मुख सन्धि के कतिपय अग इस प्रकार है -

। उपक्षेप
----- बीन्यास उपक्षेप - बीज का पडना उपक्षेप है । शुम्भ और निशुम्भ शुक्राचार्य की बातों से इतने प्रभावित होते हैं कि युद्धार्थ प्रस्थान करते हैं । अत उपक्षेप है ।

। दशरूपक

2 परिकर :

तद्बाहुल्य परिक्रिया - उपक्षेप की वृद्धि परिक्रिया (परिकर) है । शुम्भ निशुम्भ का युद्ध के लिए निरन्तर आगे बढना परिकर है ।

लब्ध्वा गुरोरनुमतिं सवर प्रसादो लोकत्रय भुजबलेन विजेतुकामो ।

देत्याधिपो रचयितु ध्वजिनीं प्रसक्तो ।। -शु0व0 2/1 ।।

3 परिन्यास

तन्निष्पति परिन्यास - बीज की निष्पत्तिया परिकर की सिद्धि ही परिन्यास हैं । परिक्रिया की सिद्धि के लिए युद्ध अवश्यम्भावी है । विजयार्थ आगे बढ़ते जाना परिक्रिया का स्वरूप दिखाई पडता है । अत परिन्यास है ।

मृतोऽसि सम्मूढ़ ममप्रहार० .।।शु0व0 4/23 ।।

4 विलोभन -

गुणाख्यान चिलोभनम् - नायकादि के गुणो का आख्यान विलोभन है । इसमे नायक न होने से नायिका प्रधान है अत नायिका के गुणो के व्याख्यान मे विलोभन दिखाई पडता है ।

महिमातिशय त्वाम्बिके प्रभवाम्मो गदितु कथ वयम् ।

गणिते निपुणोऽपि किं जनो गणमदेम्बुकणान् पयोनिधे ।।शु0व0-6/45

त्रिभुवनत्रयमेतदम्बिके सृजसि त्व परिपासि तृहरि ।

विधिविष्णुशशाँकशेखरास्तव पुम्भाव विलास विग्रहा ।।शु0व0-6/50

5 युक्ति - सम्प्रधारणानां युक्ति

जहाँ युक्तियो द्वारा प्रस्तावित कार्य का औचित्य सिद्ध किया जाय युक्ति है। देवी शुम्भ वध मे शुम्भवध का विधान करती है तो अनेक युक्ति से दूत कार्य आदि उपाय से युद्ध को टालना चाहती है । तो बृहस्पति दूत भेजने का उपाय सुझाते हैं । अत युक्ति है ।

तज्जगज्जननि शुम्भसमीप प्रेषय त्वमपि कञ्चन दूतम् ।। शु व 7/14

6 समाधान
----- बीजागम समाधानम् - युक्ति के द्वारा बीज की पुन उपस्थिति ही समाधान है । जब नन्दिकेश्वर दूत बन कर जाता है तो देवी के सन्देश को शुम्भ से कहता है ।

पालयन्तु ममवचन सर्वे मा व्रजन्तु महिषासुर वर्त्म0 शु व 7/33 ।।

तब शुम्भ भी सुग्रीव को भेजता है । यहीं से पुन युद्ध रूपी बीज का आगमन होता है । अत समाधान है ।

7 विधान -
----- विधानं सुख-दु खकृत् - कथावस्तु के सुखजनक या दु खजनक प्रसंग को विधान कहते है । शुम्भवध के नवम् सर्ग से युद्ध प्रारम्भ होता है जो देवों के लिए सुखदायी और देत्यो के लिए दु खादायी सिद्ध होता है । अत विधान है ।

8 परिभावना -
------ परिभावोऽद्भुतावेश - आश्चर्य जनक घटना से विस्मयान्वित होना परिभावना है । शुम्भासुर और देवी दुर्गा के साथ तीनों लोकों को कँपा देने वाला युद्ध होता है । जिससे देव, मुनि, किन्नर, गन्धर्व सभीकोआश्चर्य मे डालना, एक देवी से सभी देवियों की उत्पत्ति पुन समाहित होना, परिभावना है ।

9 उद्भेद
----- उद्भिदोगूढ़भेदनम् - गुप्त बातो का प्रकट होना उद्भेद है । रक्तबीज वध के समय "रक्त" गिरने से रक्तबीजों की उत्पत्ति होने लगती है । क्योंकि उसे यही वरदान था । अत दुर्गा ने

काली को मुख बडा करने को कहा । तब महाकाली के द्वारा समस्त रक्तपान करने के बाद वह मरा । रक्तबीज के वध सम्बन्धी "गूढ" बात का कथन होने से उद्भेद है ।

10 करण -

करणं प्रकृतारम्भम् - रूपक की मुख्य कथावस्तु का आरम्भ करण है । कथावस्तु का मुख्य विषय शुम्भ का वध है । अत एकादश सर्ग मे दैत्यों से निर्णायक युद्ध प्रारम्भ हो जाता है, जो त्रयोदश सर्गपर्यन्त चलता है । अत करण है ।

इस प्रकार सिद्ध होता है कि शुम्भवध मे प्रथम सर्ग से एकादश सर्ग पर्यन्त मुख सन्धि अपने दश (अङ्ग) अगो सहित है । प्राप्ति और भेद नामक मुख सन्धि का भेद महाकाव्य मे नहीं प्राप्त होता है ।

प्रतिमुख सन्धि

लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत् ।
बिन्दुप्रयत्नानुगमादङ्गान्यस्यत्रयोदश ।।दशरूपक।।

अर्थात् जहाँ बीज का कुछ लक्ष्य और अलक्ष्य रूप मे प्रकाशन होता है उसे प्रतिमुख सन्धि कहते हैं । यह बिन्दु और प्रयत्न के सयोग से तेरह प्रकार की होती है ।

बिन्दु

अवान्तरार्थविच्छेद बिन्दुरच्छेद कारणम् - अवान्तर कथा की समाप्ति के समय प्रधान कथा के साथ विच्छेद न होने देने वाले तत्व को बिन्दु कहते है ।

तृतीय सर्ग में शुम्भासुर त्रिलोक विजय के हेतु प्रस्थान करता है तो रास्ते में पड़ाव डाल देता है । रात्रि हो जाती है और ऐसी थकान मिटाने

वाली हवा बहती है कि शुम्भासुर जागेगा नहीं । अत युद्ध कार्य रूकता हुआ सा दिखाई देता है । अत चतुर्थ सर्ग मे वेतालिको आदि के गान के द्वारा शुम्भ आदि का जागना । वेतालिकों का "गान" ही बिन्दु बन गया ।

वेतालिकाना मधुरे वचोभिर्विमिश्रितेनिष्क्वणिते खगानाम् ।

प्रबोधितो दानबसार्वभौमः प्राभातिक स्व विधिमन्वतिष्ठत् ।।शु व 4/4 ।।

प्रयत्न

प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽतित्वरान्विता - फल की प्राप्ति न होने पर उसकी प्राप्ति के लिए बडी तेजी से कार्यारम्भ करना ही प्रयत्न है । जब शुम्भासुर एक हजार वर्ष तक स्वर्ग का शासन करता है तब भी राज्य - प्राप्ति का उपाय न समझ कर देवता गुरु बृहस्पति के पास जाते है, तो बृहस्पति दुर्गा प्रासादन ही एक मात्र उपाय बताते है । तब देवता देवी की स्तुति करना प्रारम्भ कर देते है । अत यहॉं प्रयत्न है ।

मधुकैटभदैत्यमर्दिनी कमलाक्षीं कमलासनस्तुताम् ।

महिषासुरनाशकारिणी "प्रणमामो भवतीं नागात्मजे ।।शु व 6/67

अत यहॉं प्रयत्न नामक अवस्था पञ्चक है । अत प्रतिमुख सन्धि है ।

प्रतिमुख सन्धि के अंग ·

विलास· परिसर्पश्च विधूतं शर्मनर्मणी ।

नर्मधुति· प्रगमन निरोध पर्युपासनम् ।।

वज्रपुष्पमुपन्यासो वर्णसंहार इत्यपि ।।दशरूपक।।

अर्थात् विलास, परिसर्व, विधूत, शर्म, नर्म, नर्मद्युति, प्रगमन, निरोध, पर्युयासन, वज्र, पुष्प, उपन्यास तथा वर्ण सहार आदि प्रतिमुख सन्धि के तेरह भेद होते है । महाकाव्य में इसके कतिपय भेद ही मिलते है ।

1 परिसर्प
----- दृष्टानष्टानुसर्पणम् - जहाँ बीज दिखाई दे और पुन नष्ट हो जाय तब उसका अन्वेषण ही परिसर्प है । जब शुम्भासुर त्रैलोक जीत कर शासन करता है तब शुम्भ वध के लिए युद्ध रूपी बीज नष्ट होता हुआ दिखाई पडता है तब देवता शुम्भ वध के लिए उपाय ढूढते है और देवी को खोजते हुए हिमालय पर्वत पर देवी की आराधना करने लगते है । पार्वती दरबार मे जा कर विचार - विमर्श करते हैं ।

तज्जगज्जननि शुम्भसमीपं प्रेषय त्वमपिकञ्चनदूतम् ।।शु व 7/14 ।।

अत यहाँ परिसर्प है ।

2 प्रगमन
----- उत्तरावाक्य प्रगमनम् - उत्तर - प्रति उत्तर वाक्य को प्रगमन कहते है । नवम् सर्ग एव द्वादश सर्ग मे धूम्र लोचन और निशुम्भ का क्रम से देवी से उत्तर - प्रत्युत्तर वर्णित है अत प्रगमन नामक प्रतिमुख सन्धि का अग है ।

धूम्रलोचन - मा भजस्व मम हस्त कल्पित केशाकर्षणपराभव शिवे ।।

शु0व0 - 9/13

देवी- मा बलान्नयसि चेदन्तिक किं करोमि तव धूम्र लोचन ।। -9/15 ।।

देवी- मन्येनिशुम्भ विजहो भुजवीर्यलक्ष्मीस्त्वा०।।शु व -12/10 ।।

देवी- तगद्च्छ तुच्छ परिपृच्छ गुरुं स्वकीय ।।शु0 व0 -12/12 ।।

3 पर्युपासन
---- पर्युपास्तिरनुनय - कुछ व्यक्तियों को खुश करने के लिए अनुनय - विनय करना पर्युपासन है । महाकाव्य के छठे सर्ग मे देवताओ द्वारा शुम्भ से अपने रक्षार्थ प्रार्थना करने के अन्तर्गत अनुनय - विनय को प्रदर्शित किया गया है । अत पर्युपासन का उदाहरण है ।

4 पुष्प
---- पुष्प वाक्य विशेषवत् - बीजोद्घाटनार्थप्रयुक्तविशेषता से युक्त वाक्य को पुष्प कहते है । जब नन्दिकेश्वर शुम्भासुर की सभा मे जाता है तो शुम्भासुर से देवी का सन्देश कहता है कि तुम सभी स्वर्ग छोडकर पाताल चले जाओ तो शुम्भासुर युद्ध की ही बात करता है -

इन्द्रोऽपि धैर्यमवलभ्य तनोतु शौर्यं हस्ते करोतु च पुन सुरराजलक्ष्मीम्।
शत्रून् विजित्य वसुधाधिपतिर्बलीयान् राज्य भुनक्ति न तु याचति नैव दत्ते।।

शु0व0 - 7/5।

अत यहाँ पुष्प है ।

5 उपन्यास
----- उपन्यासस्तु सोपायम् - उपाययुक्त या बीजोद्भेदक वाक्य उपन्यास होता है । सप्तम सर्ग मे "शुम्भ-वधनार्थ" देवी की सभा मे देवताओ का विचार - विमर्श ही उपन्यास है ।

6 वज्र
--- वज्र प्रत्यक्षनिष्ठुरम्कथनम्-प्रत्यक्ष (सामने) कर्कश कथन का आपस मे प्रयोग वज्र होता है । द्वादश सर्ग मे देवी और निशुम्भ का कर्कश वचन वज्र का उदाहरण है । अस्तु वज्र का प्रयोग है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त अग ही पाये जाते है । प्रतिमुख सन्धि के विलास, विधूत, शर्म, नर्म, नर्मद्युति , निरोध, वर्ण सहार आदि अग दृष्टिगोचर नहीं होते हैं । अत शुम्भवध मे प्रतिमुख सन्धि की पुष्टि होती है ।

गर्भ सन्धि

गर्भस्तु दृष्टनष्टबीजस्य बीजस्यान्वेषण मुहु ।
द्वादशाँग पताकास्यान्नवा स्यात्प्राप्ति सम्भव ।।

अर्थात् जहाँ दिखलायी पडने के बाद अदृश्य हुए बीज का बार - बार अन्वेषण किया जाता है वहाँ गर्भ सन्धि होती है । इसके बारह अंग होते है । इसमे पताका होना निश्चित नहीं है, जबकि प्राप्त्याशा (कार्यावस्था) अवश्य रहती है । प्राप्त्याशा की नित्य प्राप्ति को बोध समझना चाहिए ।

पताका ·
----- सानुबन्ध पताकाख्यम् - रूपक मे अनुबन्ध के साथ (प्रधान कथा के साथ दूर तक चलने वाले) प्रासागिक इति वृत्त को पताका कहते है । जैसे - रामायण मे सुग्रीव कथा पताका है । जो प्रधान का सहायक है । शुम्भ वध की कथा मे कालिका की उत्पत्ति और कालिका युद्ध के लिए निकल पडती है और "शुम्भवध" के बाद ही लौटती है । अत यहाँ पताका स्थानक दर्शाया जा सकता है ।

प्राप्त्याशा
------ उपायापाय शकाभ्या प्राप्त्याशा प्राप्ति सम्भव

जहाँ फल की प्राप्ति मे शका दिखाई दे वहाँ प्राप्त्याशा नामक अवस्था पञ्चक होती है ।

जब शुम्भासुर से युद्ध प्रारम्भ हो जाता है, तो इतना भयकर युद्ध होता है कि विजय श्री किसकी होगी - यह सन्देह के घेरे मे आ जाता है ।

देवी न लक्ष्यच्युतसायकाभून्नास्याऽपराद्धा विशिखाशख्यात् ।।

जयश्रियस्तुल्य इवाऽऽबभासे तयोर्द्वयो स्पर्तिपक्षपात्र ।।- ।3/32 ।।

अत प्राप्त्याशा नामक अवस्था पञ्चक है ।

3 गर्भ सन्धि के अंग

अभूताहरण मार्गो रूपोदाहरण क्रम ।

सग्रहरचनानुमान चत्रोटकाधिबले तथा ।।

उद्वेग सम्भ्रममाक्षेपा लक्षण च प्रतीयते ।।दशरूपक।।

अर्थात् अभूताहरण, मार्ग, रूप, उदाहरण, क्रम, सग्रह, अनुमान, अधिबल, तोटक, उद्वेग, सम्भ्रम, आक्षेप इत्यादि 12 अंग है । महाकाव्य मे कतिपय अग ही प्राप्त होते है, जो इस प्रकार है -

अभूताहरण- अभूताहरणं छद्म - छल-कपटपूर्ण अर्थ को अभूताहरण कहते है । शुम्भ और निशुम्भ को जीतने के लिये देवी माया का प्रयोग करती है। देवी के शरीर से अनेकों शक्तियाँ प्रकट हो गईं और निशुम्भ भी माया का प्रयोग करता है । अत छद्म सन्ध्यँग है ।

मार्ग --- मार्गतत्वार्थ कीर्तिनम् - जैसी वस्तु हो वैसी ही बताया जाना मार्ग है पहले शुम्भ के सेवकों से युद्ध होता है । बाद मे शुम्भ का वध किया जाता है । अत मार्ग नामक सन्ध्यॉंग है ।

क्रम --- क्रम; सच्चिन्त्यमानाप्ति - सोची समझी वस्तु की प्राप्ति क्रम है । चतुर्थ सर्ग से ही शुम्भ की विजय प्रारम्भ होती है तो क्रम से महाराष्ट्र नरेश से सन्धि कर लेता है -

समाप्य्युद्धं प्राविधाय सन्धिं शुम्भो महाराष्ट्र धराधिपेन ।।शु व 4/72

पुन शुम्भ इन्द्रादि को जीत लेता है । अन्त मे शुम्भवध हो जाता है । अत "क्रम" नामक गर्भसन्धि के अग की प्राप्ति होती है ।

सग्रह -

सामदानोक्ति सग्रह - साम (मधुर एव प्रिय वचन) तथा दान से युक्त वचन सग्रह है । देवी दुर्गा और शुम्भासुर मे कोई सग्रह नहीं होता परन्तु चतुर्थ सर्ग मे शुम्भासुर चतुरता दिखता है । जिसमे हारे हुए को सम्मान देता है और बुद्धिमानी से प्रमुखगणो से सन्धि करता है । यहाँ "सग्रह" की प्राप्ति होती है ।

विधायसन्धि, प्रमुखान् गणाना सम्भावयामास यथार्हमेष ।।

यहाँ "संग्रह" नामक सन्ध्यंग की प्राप्ति है ।

तोटक

संरब्ध; तोटक वच - क्रोध एवं हर्षादि जन्य वचन सरब्ध (आवेग युक्त) वचन तोटक होता है । चतुर्थ सर्ग मे जब पञ्जाब नरेश की सेना और शुम्भ सेना युद्ध करने लगते है तो युद्ध बडा भयानक हो जाता है । वहाँ पर एक दूसरे से क्रोध युक्त वचन का प्रयोग करता है -

सम्बोधयन्त परुषैर्वचोभिर्हठादयुध्यन्त भटाग्रगण्या,।।शु व 4/22 ।।

मृतोऽसि सम्मूढ मम प्रहार सोढुं न शक्नोषि वृथाप्रलापिन् ।

कस्त्वं ममाऽग्रे मशको दुरात्मन्निति ब्रुवाणा उभये प्रजह्रु ।।शु व 4/23

देवी और निशुम्भ मे भी कर्कश वचन का प्रयोग होता है । अत· तोटक प्राप्त है ।

उद्वेग-

उद्वेगोऽरिकृत् भीति · शत्रुजन्य भय उद्वेग होता है । चतुर्थ सर्ग मे जब शुम्भ शत्रुओं पर चढाई करता है तो कश्मीरादि के राजा डरकर आत्मसमर्पण करते है । अत यहाँ उद्वेग है ।

कश्मीरक क्षोणिपतिर्भयेन प्रवातदीप प्रतिमामयासीत् ।।शु व 4/33 ।।

आक्षेप

गर्भबीजसमुद्भेदादाक्षेप परिकीर्तित - गर्भस्थबीज का प्रकाशन आक्षेप कहलाता है । अत शुम्भ का वध ही गर्भस्थ बीज है, जो त्रयोदश सर्ग मे पूर्ण होता है । अत· आक्षेप भी प्राप्त होता है ।

जैसे- शूलेन दैत्येश्वरमद्रिकन्या यथा सुपक्वपनस विभेद ।।शु व ।3/5 ।।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि "शुम्भवध" मे गर्भसन्धि के 7 ही अग प्राप्त होते है । शेष रूप, उदाहरण, अनुमान, अधिबल, सम्भ्रम आदि सन्ध्यॉग नहीं प्राप्त होते है ।

अवमर्श सन्धि

क्रोधेनामृषेद्वलव्यसाद्वा विलोभनात् ।

गर्भनिर्भिन्न बीजार्थ सोऽवमर्श इति ।।देशरूपक।।

जहाँ क्रोध, व्यसन या प्रलोभन से फल प्राप्ति के विषय मे पर्यालोचन किया जाय (अवमर्श किया जाय) एव गर्भसन्धि के द्वारा प्रस्फुटित बीज का सम्बन्ध प्रदर्शित किया जाय, अवमर्श सन्धि कहते है ।

अवमर्श का अर्थ है विचार - विमर्श । ऐसा करने से यह कार्य होगा" इस प्रकार फल प्राप्ति के निश्चय का अवधारण तथा गर्भसन्धि द्वारा उद्भिन्न बीज का सम्बन्ध पाया जाता है वहां "विमर्श या पर्यालोचन" अवमर्श होता है । इसका निर्माण प्रकरी और नियताप्ति के मेल से होता है । प्रकरी हो या नियताप्ति अवश्यम्भावी है ।

प्रकरी च 'प्रदेशभॉक्' - अर्थात् जो कथा प्रधान कथा के बीच मे प्रारम्भ हो कर बीच मे समाप्त हो जाय, मुख्य कथा मे सहायक हो । जेसे - रामायण शबरी और जटायु की कथा ।

इस प्रकार शुम्भवध महाकाव्य मे इस प्रकार की कोई भी कथा प्राप्त नहीं है । अत प्रकरी नामक अर्थप्रकृति की प्राप्ति नहीं होती है ।

नियताप्ति

अपायाभाव प्राप्ति नियताप्ति - अर्थात् सुनिश्चित विघ्नो के अभाव मे पूर्ण रूपेण निश्चयावस्था नियताप्ति है । जेसे - इन्द्रादि को गुरु बृहस्पति परामर्श देते हैं कि देवी प्रासादन के अतिरिक्त कोई भी उपाय नहीं है, जिससे शुम्भासुर का वध हो सके । यहीं पर पूर्णरूपेण निश्चय की प्राप्ति हो रही है । अत 'नियताप्ति" है -

वाचस्पति सुखरानुपास्थितानाधष्ट सान्त्ववचनैरिति स्फुटम् ।

लोकत्रयार्तिशमनक्षमा वय दुर्गामनन्यशरणा श्रयामहे ।।शु व 5/67 ।।

अवमर्श सन्धि के भेद

तत्रापवादसम्फेटो विद्रवद्रवशक्तय ।

द्युति प्रसंगश्छलन व्यवसायो विरोधनम् ।।

प्ररोचना विचलनमादानं च त्रयोदश ।।दशरूपक।।

अर्थात् अपवाद, सम्फेट, विद्रव, द्रव, शक्ति, द्युति, प्रसग, छलन, व्यवसाय, विरोध, पुरोचना, बिचलन, आदान ये तेरह भेद अवमर्श सन्धि के होते है ।

महाकाव्यानुशीलन से ज्ञात होता है कि 'द्रव', प्ररोचना के अतिरिक्त अवमर्श सन्धि अपने द्वादशांगो सहित महाकाव्य मे प्राप्त होती है ।

। अपवाद

दोषप्रख्यातृ अपवाद स्यात् - किसी पात्र के दोष का विचार ही अपवाद कहलाता है । सातवे सर्ग मे शुम्भासुर देवी पर दोष - आरोपण करता हुआ सुग्रीव से दुर्गा को सन्देश भेजता है । जैसे -

गर्वोद्धताऽसि हननान्महिषासुरस्य मायाभ्रमेण पशुभावमुपाश्रितस्य।

नाह महेशि माहिष कपानभिज्ञ शुम्भोऽस्मि नीतिनिपुणो रणपाण्डितश्च। ।।

शु0 व0 - 7/43

जाड्य धियस्तव हिमाचलकन्काया युक्त हि वेत्सि न मनाकपि राजनीतिम्।

निर्संशय मघवते वनमाश्रिताय स्वाराज्यमादिशसि भैक्षमिव प्रदातुम्

।। शु व 7/52 ।।

यहाँ पर चण्डिका को घमण्डिनी, और मदशालिनी कहा गया है । और भी यह राजनीतिभी मनाक् भी नहीं जानती । अपवाद का उदाहरण प्राप्त है ।

2 सम्फेटो रोषभाषणम् -

रोषपूर्ण कथनोपकथन ही सम्फेट है । चतुर्थ सर्ग मे महाराष्ट्र नरेश और शुम्भासुर की सेनाएँ एक दूसरे पर प्रहार करती हुई आपस मे आरोप प्रत्यारोप करती है । दूसरी ओर से नवम सर्ग से त्रयोदश पर्यन्त कभी धूम्रलोचन कभी निशुम्भादि और देवी से आरोप प्रत्यारोप है । अत यहाँ सम्फेट है । जैसे -

सम्बोधयन्त परुषैर्वचोभिर्हठादयुध्यन्त भटाग्रगण्य ।।शु व 4/22 ।।

मा भजस्व मम हस्त कल्पित केशाकर्षणपराभव शिवे ।।शु भ 9/13

प्रश्न। चण्ड मुण्ड से कहता है—

यूय सर्वे तर्हि तां च त सिह शस्त्राघातैर्निदय मर्दयध्वम् ।।शु व 10/9

अत यहाँ भी सम्फेट परिभाक्षित है ।

3 विद्रव
---- विद्रवो वध बन्धनादि जहाँ वध और बन्धन वर्णन हो, विद्रव होता है । महाकाव्य मे धूम्रलोचन, रक्तबीज और शुम्भासुर सहित अनेको दैत्य के वध का विधान होने से विद्रव है ।

4 शक्ति ·
---- विरोधशमन शक्ति · विरोध का शमन होना शक्ति है । जैसे चतुर्थ सर्ग से पञ्चम तक तो शुम्भासुर के विरोधियों का शमन है । नवम् से त्रयोदश तक शुम्भासुर सहित समस्त दैत्य प्रमुखों का वध अर्थात् देव - विरोधियो का शमन होने से महाकाव्य मे शक्ति प्राप्त है ।

5 प्रसग .
---- गुरुकीर्तन प्रसग· अर्थात् गुरुजनों (पूर्वजो) का कथन करना प्रसग होता है । जैसे - शुम्भ द्वारा "महिषासुर का बदला" लेने की बात कह कर "महिषासुर" का नामकीर्तन करता है । अत· प्रसग है ।

नाश चकर्त बलिनो महिषासुरस्य या केतवेन भुवनत्रय जित्वरस्य ।

ता त्वा निषूद्य परिपन्थिनि दानवाना वेर चिरन्तमह प्रति यातयामि ।।

शु० व० 12/15

अत· यहाँ प्रसंग भी प्राप्त है । प्रथम सर्ग मे "कश्यप" जी का ध्यान कर के शुम्भासुर का दिग्विजय को निकालने का प्रसग है ।

6 छलन
---- छलनं चवज्ञमाननम् - देवी दुर्गा और दैत्य मुख्यो का अपमानोक्ति वचन प्रयोग ही छलन है । अत छल भी प्राप्त है ।

7 द्युति ·
---- तर्जनोद्वेजने द्युति - तर्जन (डराना, धमकाना) तथा उद्वेजन (भय उत्पन्न कर के उद्वेलित कर देने) को द्युति कहते है । महाकाव्य मे धूम्रलोचन वध के बाद ही देत्यो की सेना डर जाती है । जो देत्य बार - बार मरने से बच जाते है वे डरकर शुम्भ के पास भाग जाते हैं । अत द्युति है ।

8 व्यवसाय ·
----- व्यवसाय स्वशक्त्युत्पत्ति - अपनी शक्ति को बताना या उद्घाटित करना व्यवसाय है । जब शुम्भासुर सुग्रीव को दूत नियुक्त कर देवी के पास भेजाता है तो अपनी प्रशंसा या अपनी शक्ति का उद्घाटन करता है अत व्यवसाय प्राप्त है । जैसे -

नीतिं चिराय वयमौशनसीं प्रपन्ना· प्राप्ता भुजवलेन भुजयोर्भुवनाधिपत्यम्।

शु0 व0 7/40

उत्क्रान्तिदाना दिनमणेस्तनयस्य शक्ति हस्ते ममाऽस्ति सालिलाधिपतेश्च -

पाश 7/5/50

इत्यादि।यहाँ व्यवसाय घटित है ।

9 विरोधनम्
------ सरब्धाना विरोधनम् - आवेशपूर्ण अपनी शक्ति का पात्रो द्वारा कथन विरोधन है । शुम्भ अपनी आवेशपूर्ण बातों का प्रयोग करता है । अत विरोधन है । जैसे -

समातृका त्वा समृगाधिपाना चनिहत्ययुद्धे सह भद्रकाल्या ।

कवोष्णरक्ताञ्जलिभिस्तवाऽह मृत निशुम्भ परितर्पयामि ।।

- शु0 व0 13/24

10 विचलन

विकत्थन विचलनम् - आत्मप्रशसाया डींग मारना विचलन है । शुम्भासुर सन्देश भेजता है कि "मेरे पास, ऐरावत, कुबेर का खजाना "उत्क्रान्तिदा" नाम की शक्ति आदि (मेरे ही) है । मेरे समान कोई नहीं है" आदि कथन विचलन के उदाहरण है ।

11 आदान -

आदान कार्यसग्रह - विस्तृत कार्य का संक्षिप्त किया जाना आदान है । प्रस्तुत महाकाव्य मे महाकवि ने शुम्भ निशुम्भ का वध बडे सक्षिप्त ढग से करा दिया गया है । अत कार्य के विस्तार को समेट लिया गया है । अत आदान सन्ध्यङ्ग का उदाहरण है ।

इस प्रकार हम देखते है, द्रव और प्ररोचना दो भेदों को छोडकर अन्य सभी भेदो सहित अवमर्श सन्धि प्राप्त होती है ।

5- **निर्वहण सन्धि**

बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथा यथम् ।

एकार्थमुपजीयन्ते यत्र निर्वहणहितत् ।।

कार्यफलगमसमायुक्ता चतुर्दश भेद समन्विता ।।दशरूपक।।

अर्थात् बीज से समन्वित मुखादि (प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्शादि) सन्धियों के बिखरे हुए (आरम्भादि) अर्थ जब एक "प्रधान" प्रयोजन की सिद्धि के समेत लिये जाते हैं तब उसे निर्वहण सन्धि कहते हैं । कार्य नामक अर्थ प्रकृति और "फलागम" नामक अवस्था पञ्चक के मेल से निर्वहण सन्धि होती है ।

कार्य
----   फलप्राप्त्योपाय कार्य न तु फलम् - अर्थात् फल प्राप्ति का उपाय ही कार्य है न कि फल । अत फल मे अधिकारोत्यन्तिका व्यापार ही कार्य है । यह "कार्य" नामक व्यापार से ले कर फल प्राप्ति तक चलता रहता है । कार्य शब्द का अर्थ फल के अर्थ मे भी कर दिया जाता है ।

शुम्भ वध मे प्रथम सर्ग से त्रयोदश सर्ग पर्यन्त कार्य चलता रहता है । अत "कार्य" नामक अर्थ प्रकृति की पुष्टि हो जाती है ।

फलागम
-----   समग्रफलसम्पत्ति फलयोगो यथोदित अर्थात् पूर्ण रूप से फल की प्राप्ति ही फल योग है । त्रयोदश सर्ग मे शुम्भासुर का वध होना और देवताओ को स्वर्ग लोक की प्राप्ति तथा वेदोक्ति रीति से प्रजा का आचरण करना ही फलागम है । अत फलागम प्राप्त है ।

निर्वहण सन्धि के अग

सन्धिर्विवोधो ग्रथननिर्णय परिभाषणम् ।
प्रसादानन्दसमया कृति भाषोपगूहना ।।
पूर्व भावोपसहारो प्रशक्तिश्च चतुर्दश ।।

शुम्भ वध मे प्राप्त निर्वहण सन्धि के कतिपय अग इस प्रकार है -

1- सन्धि :-
-----   सन्धिबीजोपगमनम् - बीज का पुनरान्वेषण सन्धि है । यहाँ रक्तबीज आदि के वध के बाद शुम्भ और निशुम्भ का आगमन सुनिश्चित हो जाता है । यहाँ शुम्भ वध का निश्चय ही सन्धि है ।

2- विबोध -
----- विबोध कार्यमार्गणम् - पूर्वसम्पन्न कार्यो का फलान्वेषण विबोध है । शुम्भवध मे देवता पराजित हो कर देवी के पास जाते है जिससे उनके पुन स्वर्ग प्राप्ति रूप कार्य मे सरलता आती है । जब देवी की विजय दिखलाई पडने लगी तो देवों का कार्य पूर्ण होने का आभास होने लगा । अत विबोध है ।

3- ग्रथन
---- ग्रथन तदुपक्षेपो - कार्य के उपक्षेप (उपसहार) को ग्रथन कहते है । नवम सर्ग मे धूम्रलोचन से युद्ध प्रारम्भ होने से ही शुम्भवध रूपी कार्य की समाप्ति की ओर अग्रसर होता है । अत ग्रथन भी है ।

4 निर्णय
---- ऽनुभूतास्यात्तु निर्णय - अनुभव सिद्ध या प्रमाण बात का कथन करना निर्णय है । जब नन्दिकेश्वर सन्देश ले कर शुम्भ के पास जाता है तो शुम्भासुर भी अपना दूत भेज कर युद्ध लडने की चुनोती देता है । तब युद्ध का निर्णय स्पष्ट हो जाता है । यही पर 'निर्णय' नामक सन्ध्यङ्ग है ।

5- परिभाषण
------ परिभाषामिथोजल्प आपस मे बात-चीत या विचार - विमर्श को परिभाषण कहते है । दूत कार्य समाप्त हो जाने के बाद देवी का देवताओं से बातचीत तथा शुम्भासुर का निशुम्भ आदि से बातचीत या विचार - विमर्श परिभाषण है ।

6- प्रसाद
---- प्रसाद' पर्युपासनम् - नायक या नायिका या किसी प्रधान पात्र की आराधना या प्रसन्न करने की युक्ति ही प्रसाद है । जब देवता हिमालय पर्वत पर पहुंचते है तो देवी दुर्गा की आराधना करते है ।

मधुकैटभदैत्यमर्दिनी कमलाक्षीं कमलासनस्तुताम् ।
महिषासुरनाशकारिणीं प्रणमामों भवतीं नगात्मजे ।।

- शु0 व0 6/44

अत प्रसाद नामक निर्वहण सन्धि का भेद मिलता है ।

7 भाषण
----- मानाद्याप्तिश्च भाषणम् - सम्मानादि की प्राप्ति भाषण है । चतुर्दश सर्ग कल्याण विषय उपदेश से भरा पडा है । अन्त के दस श्लोकों मे देवी द्वारा देवताओ को वरदान और राज्य करने का आदेश दिया जाता है । यहाँ "भाषण" भी प्राप्त है ।

8 आनन्द
----- आनन्दो वाञ्छितवाप्ति - अभिलषित वस्तु की प्राप्ति ही आनन्द है । त्रयोदश सर्ग में शुम्भवध के बाद देवताओ का स्वर्ग प्राप्त हो जाना ही आनन्द है ।

9 समय
--- समयो दु'ख निर्गम - दु ख का दूर होना ही समय है । शुम्भ की मृत्यु के बाद देवताओं, गन्धर्व, नाग, मनुष्य आदि सभी का दु ख दूर हो जाना ही समय है । जैसे -

गतवति दनुजेश्वरे विनाश त्रिभुवन विप्लवकारिणिप्रचण्डे ।
सुरपति भवनात् प्रसूनवृष्टि शिरसि पपात नगेन्द्रकन्यकाया: ।।

- शु0 व0 13/56

10 कृति
---- कृतिर्लब्धार्थशामनम् - प्रयोजन की प्राप्ति के द्वारा उत्पन्न शान्ति को (लब्ध अर्थ के लिए स्थिरीकरण) कृति है । शुम्भ वध के बाद त्रैलोक में शान्ति और खुशहाली आ जाती है -

प्रलयवारिधरा प्रशम ययु सुगपथो रुरुचे स्फुटतारक ।

नदनदीसलिलानि च भेजिरे विगतपङ्कया स्फटिकच्छविम् ।।

- शु0 व0 13/58

ब्राह्मणा पठनपाठनादृत पार्थिवा· प्रकृतिरञ्जने रता ।
ऊरुजा वृषला: प्रजज्ञिरे स्व-स्व कर्माणि पुन परायणा ।।

शु0 व0 13/61

अत "कृति" नामक सन्धि अग प्राप्त है ।

।। काव्यसहार
------ वराप्ति. काव्यसंहार - श्रेष्ठ वस्तु का वरदान की प्राप्ति काव्य संहार है । चतुर्दश सर्ग मे देवी द्वारा देवताओ को वरदान देने के साथ ही काव्यसहार का उपसहार हो जाता है । अत काव्यसहार नामक सन्धि का भेद है । जैसे -

युगे युगे दावनसम्भव भय यदा यदा वस्त्रिदशा भविष्यति ।

तदाऽवतीर्याऽहमसशयं भुव रणे हनिष्यामि मदोद्धतानमून् ।।

शु0 व0 14/50

इत्येव श्रवणमनोहरैर्वचोभिर्दत्वा सा वरमभयं च निर्जरेभ्य ।

साश्चर्यक्षणमिब पश्यताममीषामन्तर्धा नगपतिकन्यका जगाम ।।

शु0 व0 14/51

इससे विदित होता है कि "काव्यसहार" नामक निर्वहण सन्धि है ।

12 प्रशस्ति ·
----- प्रशस्ति शुभसशनम् - कल्याण की कामना प्रशस्ति है ।

चतुर्दश सर्ग में देवताओं की स्तुति के बाद देवी सभी देवताओ को अपने - अपने अधिकार पर अपना अपना शासन करें -

जलाधिकारं वरुणो वितन्वन् यदांसि सर्वाणि वरीभरीतु ।।

शु0 व0 14/43

निरन्तराय पुनरध्वरेषु गृह्णन्तु देवा स्वहविर्विभागम् ।।

शु0 व0 14/44

गृहे-गृहे वेदविदां द्विजाना प्रवर्तता सस्वरवेदपाठ ।

नृपा प्रजापालनकर्मदक्षा· कुर्वन्तुवर्णाश्रम धर्मरक्षाम् ।।

शु0 व0 14/48

वर्षन्तु मेघा समये यथेष्टं कृषीवला सन्तु समृद्धिभाज ।

आबालवृद्ध निरत· स्वधर्मे निरामयो नन्दतु जीवलोक ।।

शु0 व0 14/49

अन्त का मंगलाचरण भी कल्याणपरक है ।

जयति भगवतीनगेन्द्रकन्या जयति चिर करुणानिधिर्महेश ।

जयति कविजन शिवेकनिष्ठो जयति चिर गिरिजायश प्रबध ।।

अत "प्रशस्ति" नामक निर्वहण सन्धि का अग भी प्राप्त है।

इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य में पूर्व भाव तथा उपगूहन दो भेदो को छोड कर अन्य द्वादश अंगों सहित निर्वहण सन्धि है । उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि शुम्भ वध में श्री वसन्त त्रयम्बक शेवडे जी ने सभी सन्धियो (मुख, प्रतिमुख, गर्भ, अवमर्श तथा निर्वहण सन्धि) का अग सहित विवेचन किया है ।

इन्होंने अधिक बढा चढा कर दिखावा नहीं किया है और न ही सन्धि या सन्ध्यङ् ग को खींच कर रखने का प्रयास किया है, बल्कि जो क्रम जहाँ प्रसगत बेठता गया उसको वहीं प्रस्तुत किया है । इसी कारण नाट्शास्त्र मे वर्णित क्रम भी आगे - पीछे हुए हैं । यह इनकी भाषाशेली की सरलता, सरसता, सामान्यता की ओर संकेत ही है । इन्होने कथानक को बोझिल होने से बचाया है । अत महाकाव्य में सन्धि-संन्ध्यङ्ग विवेचन यही पर समाप्त होता है ।

****

चतुर्थ अध्याय

(महाकाव्य मे पात्र परिचय)

*****

(चतुर्थ - अध्याय)

(महाकाव्य में पात्र - परिचय का विवेचन)

शुम्भवध महाकाव्य में मुख्यत· वर्णन - प्रधान या कथानक प्रधान महाकाव्य है । प्रस्तुत महाकाव्य "शुम्भवध" को लक्ष्य कर के रचा गया है । यह महाकाव्य नायक प्रधान न हो कर नायिका प्रधान है । कथानक की नायिका देवी दुर्गा जी है, जो पूरे महाकाव्य मे जगदम्बिका के नाम से वर्णित की गई हैं "शुम्भासुर" को नायक नहीं प्रतिनायक, क्योकि नायिका के द्वारा शुम्भ का वध हो जाता है । अत शुम्भासुर प्रतिनायक है । निशुम्भ को प्रतिनायक माना जा सकता है, क्योकि शुम्भासुर की परछाई के समान उसका अनुवर्तन करता है । परन्तु शुम्भासुर ही प्रधान होने से शुम्भासुर को ही प्रतिनायक मानना पडेगा ।

क्रमानुसार प्रमुख पात्रों का विवेचन इस प्रकार है -

महाकाव्य के प्रधान पात्र

जगदम्बिका·

प्रधान पात्र देवी जगदम्बिका को बनाया गया है ।

शुम्भ वध में देवी दुर्गा एक अलोकिक तेज सम्पन्ना, दिव्यशक्ति, स्वरूपा नायिका हैं । ये शिव की पार्वती ही हैं । इन्हे दुर्गा ही कहा जाता है, इनके चरित्र की विशेषताएँ इस प्रकार है -

। **लोकत्रयार्तिशमनक्षमा :** जगदम्बिका तीनो लोकों के ताप का शमन करने वाली है । पुराणानुसार पहले भी महिषासुर आदि का वध कर चुकी हैं । उनका कृपा कटाक्ष भी अमोघ है । देवी की इस विशेषता को बृहस्पति भी अच्छी तरह जानते है । यही

मधुकेटभ देत्य को मारने वाली है । अत वृहस्पति कहते है -

लोकत्रयार्तिशमनक्षा वयं दुर्गामनन्यशरण श्रयामहे ।।शु व 5/67 ।।

2 भुवनत्रयसृजनकर्ती देवी पार्वती को ही त्रिलोक की सृजनकर्ती बताया गया है । वहीं देवी ब्रह्मा, विष्णु और महेश के रूप मे पुरुष भाव को प्राप्त होती हैं । बिना पार्वती के शिव कोई भी चेष्टा नहीं कर सकते है । वह कपर्दी होते हुए भी पार्वती से विवाह करने के बाद महेश्वर हो गये -

स बभूव कपर्द्यपि स्वय तव पाणिग्रहणान्महेश्वर ।।शु व 6/47 ।।

देवी परब्रह्मस्वरूपमयी हैं, शैव शिवा, वैष्णव विष्णु, गाणपत गणपति आदि नामों से देवी को ही पुकारते है ।

शिवभागवता· शिव विदुर्मधुदेत्यद्विषमम्ब वैष्णवा ।
अथ गाणपता गणाधिप भवतीमेव विमुग्धबुद्धय ।। शु व 6/60 ।।

3 राजनीतिज्ञान से परिपूर्णा· देवी दुर्गा अलोकिक शक्ति सम्पन्ना होती हुई भी देवताओं के साथ मित्रता पूर्वक व्यवहार करती हैं । देवताओ का सभा मे स्वागत करती हैं । देवी स्वयं जानती हैं कि क्या करना है । परन्तु देवताओं से उपाय पूँछती हैं । वृहस्पति के मुख से दूत कार्य के लिये कहलवाती है । निशुम्भ से युद्ध मे कहती हैं कि पहले जा कर गुरु से राजनीति सीखो तब युद्ध करो ।

तद्गच्छ तुच्छ परिपृच्छ गुरु स्वकीयं भूयस्ततश्चिरमधीष्व चराजनीतिम् ।।

शु0 च0 12/12

4 **अलौकिक आभामयी·**
----------- देवी दुर्गा दिव्याभामयी है । धूम्रलोचन जब देवी को देखता है तो दिव्य सुन्दर स्वरूप को देख कर देशी - जन्तु की तरह घबड़ा जाता है ।

तामवेक्ष्य जगदीश्वरीमसो दुष्प्रधर्षवपुषं महोजसम् ।

विस्मरन् क्षणमिवात्मविकत्थन ग्राम्यजन्तुरिव सम्भ्रमंदधौ ।।शु व 9/9 ।।

5 **सहन शक्तिसम्पन्ना**
----------- देवी बडी ही सहनशक्ति सम्पन्न है, सहिष्णु है । जब धूम्रनेत्र कटुवचन कहता है तो देवी मुस्करा कर जवाब देती है और आराम से एक हुँकार मे ही भस्म कर देती है ।

6 **विकट क्रोधधारिणी·**
----------- जब चण्ड मुण्ड देवी को पकडना चाहते हे तो ब्रह्माण्ड की सार्वभौमाधिकारधारिणी दुर्गा विकट रूप से क्रोधित हो गई नेत्र लाल हो गये, ओंठ कॉप उठे और ऐसी निश्वास निकलती हे कि शरीर काला पड जाता है ।

निश्वासानां सन्ततिश्चाविरासीद् वक्त्राम्भोज कज्जलाभ बभूव ।।

शु0 व0 10/16

7 **कालिकोद्भाविनी**
----------- जगदम्बिका कालिका को उत्पन्न करने वाली है चण्ड मुण्ड पर क्रोधित होने से उनकी भ्रूकुटीं से शीघ्र ही काली निकल पडती है -

भ्रूभङ्गेणभ्राजमानाल्ललाटात्तस्याः काली सत्वर निर्जगाम ।।शु व 9/17 ।।

8 **त्रैलोक्यनायिका**

पार्वती तो त्रिभुवन नायिका है और शुम्भवध की भी नायिका है । वे हुँकार मात्र से धूम्रलोचन का वध करती है । चण्ड-मुण्ड के वध के बाद कालिका को चामुण्डा की उपाधि प्रदान करती है। रक्तबीज वध के समय उकने शरीर से सभी शक्तियाँ प्रकट होती है । उनके सामने दैत्य टिक नहीं पाते । उनके बिना आदेश के पत्ते भी नहीं हिलते, अन्य प्राणियों की तो बात ही क्या है ? अत त्रैलोक की नायिका है ।

9 **महाशक्तिशालिनी**

रक्तबीज वध के बाद जब शुम्भ और निशुम्भ आते है, तो इतनी विकराल शङ्ख ध्वनि दुर्गा करती है कि लोकत्रय बधिर सा हो जाता है । उनकी शक्ति के सामने कोई भी नहीं टिक पाता । दुर्गा ने निशुम्भ को बाणो से बींध दिया । शुम्भ से भी भीषण सग्राम हुआ जिसे देखने सिद्ध-साध्य सभी आ गये ।

अभूतपूर्वं जगदम्बिकायास्तन्मुष्टियुद्धं दनुजाधिपेन ।
दिदृक्षवो व्योमघटे समीयुर्गन्धर्वविद्याधर - सिद्ध - साध्या ।।शु व ।3/47 ।।

शुम्भासुर को तो ऐसे शूल बींध कर मार डाला जैसे पका कटहल-

शूलेन दैत्येश्वरमद्रिकन्या यथा सुपक्वं पनस विभेद ।।शु व ।3/53 ।।

10. **महामायास्वरूपा आदिशक्ति**

देवी महामाया स्वरूपा आदिशक्ति है वहीं तीनों लोको पर शासन करती हैं । देवता - देवी को सर्वस्व समर्पित कर के देवी के हर स्वरूप, हर प्रकार के दर्शन और हर मार्ग से स्तुति करते है -

।। **मोक्ष प्रदायिनी एवं देवाधिकार प्रदात्री.** देवी दुर्गा मोक्षदायिनी है । देवता कहते है कि लोग वन्दना कर के तपस्या कर के माँ की कृपा से मोक्ष प्राप्त करते हैं ।

ध्यात्वा पदाम्बुजयुगं तवशैलकन्ये, मोक्ष भजन्ति न भुव पुनराव्रजन्ति ।।

शु0 व0 ।4/12 ।।

देवताओं की मधुर वाणी से प्रसन्न हो कर देवी सभी देवो को अपने अधिकार में कार्य करने का आदेश देती है । सभी उनके अनुसार ही शासन करते है .

निरन्तरायं पुनरध्वरेषु गृह्वन्तु देवा स्वहविर्विभागम् ।।शु व ।4/43 ।।

गायन्तु हाहाप्रमुखा सुमेरो कुञ्जेषुमञ्जुध्वनय सलीलम् ।।शु व ।4/46 ।।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि देवी की ही सार्वभौम सत्ता है, वे नीतिज्ञान, अलोकिक तेज, महाकाव्य की नायिका आदि गुणो से सम्पन्न होती हुई अधर्म का विनाश कर के धर्म की सस्थापना करने वाली है ।

कालिका : शुम्भवध महाकाव्य में कालिका स्वरूप बडा ही भयानक है यह देवी की ही एक स्वरूप हैं । कवि ने विस्तार से इनका वर्णन किया है । धूम्रलोचन के वध के बाद चण्ड - मुण्ड के आने पर देवी की भृकुटी से वेसे निकली जैसे कमल से भृङ्गमाला या दीप शिखा से मषि निकलती है । इनके चरित्र की कुछ प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार है ।

। **भयानक स्वरूपा** : जिस समय कालिका प्रकट होती है, उस समय खड्ग, पाश धारण किये हुए विकराल मुख वाली बादल के समान श्यामवर्णा,

तुरन्त कटे हुए मुण्डो की माला धारण किये हुए विकराल सूखे मॉसयुक्त जिह्वा वाली आरक्त नेत्र वाली, साक्षात् मृत्यु दूती लगती है ।

2 **युद्ध में निपुण**
-------- युद्ध मे बडा ही भयानक कोशल प्रकट करती है । कितनों को कालिका खड्ग से काट डालती है, कितनों को पाश से कस कर मार डालती हैं, कितनो को पीस डालती है, कितनों को चबा डालती है ।

खट्वाड् गेन प्राप्यकाँश्चिदन्त क्रोधा, काँश्चिच्चूर्णयिष पिपेष ।।शु व ।0/2। ।।

3 **चामुण्डा की उपाधि प्राप्तकर्ती**
--------------- सिह पर सवार चण्डिका को आते हुए देख कर चण्ड दोडता है, तब देवी चरणो से दबा कर चण्ड का वध करती है और जब मुण्ड दोडा तो देवी उसका भी वध कर देती है । जब कालिका चण्ड मुण्ड का सिर लाती है, तो देवी उनका नाम चामुण्डा ऐसा कर देती है ।

यस्मात्प्राप्ता गृह्णतीं चण्ड मुण्डौ चामुण्डेति ख्यातिमेष्यस्तस्त्वम् ।।

शु0 व0 ।0/44

4 **रक्तबीजं का रक्तपायिनी** ·
-------------- जब रक्तबीज का रक्त जमीन पर गिरने से बहुत से रक्तबीज पैदा हो जाते हैं तो पार्वती कालिका से कहती है - हे चामुण्डे तुम विकराल मुख फैलाओ और जितना रक्त गिरे तुम पी जाओ जिससे जमीन पर रक्त न पड़ने से रक्तबीज मर जायेंगे । तब विकराल मुख फैला कर रक्तबीज का समस्त रक्तपान कर जाती है -

तमाज्ञा शिरसि निधाय चण्डिकाया विस्तार मुखमनयच्च भद्रकाली ।

मण्डूकान् गिलितुमुपागतान् समीपे व्यालीव प्रकटरदा मृगाँश्च सिही ।।

शु0 व0 ।।/39

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि कालिका या काली शुम्भ वध मे एक भयानक व्यक्तित्व वाली देवी के रूप मे चित्रित की गयी है । जो रक्तबीज के वध से ले कर शुम्भासुर के वध पर्यन्त देवी जगदम्बिका का साथ देती हैं ।

3 शुम्भासुर · मुख्य (प्रतिनायक)

शुम्भ और निशुम्भ दो भाई महिषासुर के वश मे उत्पन्न हुए जो किसी शुक्राचार्य (पुरोहित) से दैत्यो और देवताओ का विरोध का कारण पूछा तो उनके समस्त कथन बता देने पर वह तीनो को जीत कर स्वर्ग पर विजय कर लिया तब देवी ने उसे मार कर देवताओ को स्वर्ग का अधिकार दिलाया । शुम्भवध महाकाव्य मे उसकी भूमिका इस प्रकार है -

मुख्य-प्रतिनायक

शुम्भासुर ही महाकाव्य का मुख्य प्रतिनायक पात्र है । जो दैत्यों का सम्राट और असुर सेना का प्रधान सञ्चालक है । अन्त मे देवी इसका वध करती हैं । शुम्भ मे वे सभी गुण विद्यमान है, जो एक प्रतिनायक मे विद्यमान रहना चाहिये । वह तीनों लोको को जीतने के लिए पहले सैन्य सगठन करता है और अपनी सेना मे ऊँट, घोड़, हाथी, पैदल आदि को सशक्त करता है । उसकी सेना में हूण, तुरुष्क, शकयवन, गरुण्ड आदि प्रवेश प्राप्त करते है -

द्वीपादन्तरादुपगता यवना गरुण्डा, हूणा· शकाश्च दरदा· शबरा किराता ।
सौरवीरकास्तिलखाला अपि पारसीका:, प्रापु पदातिषु तयोस्त्वरितं प्रवेशम् ।।

शु0 व0 - 2/8 ।।

2 सैन्य परीक्षणकर्ता सर्वप्रथम वह स्वय सेना का निरीक्षण करता है, बाद मे तत्पश्चात् सेना मे लोगो को नियुक्त करता है । इसके सैनिक उसके सामने बलिष्ठ, घोड़े, बैल, गाय आदि पशु, खेद परशु, गदा, परिघा आदि शस्त्रास्त्र लाते है ।

खेटा गदा परशव परिघाश्च वाणा आनायिता दिति सुते शतश ।।

-शतघ्न्य ।। शु व 2/।। ।।

3 वेदोक्त धर्म का पालन शेवडे जी ने शुम्भासुर को धीरोद्धत नायक होते हुए भी उदात्तचरित्र वाला प्रदर्शित किया है । महिषासुर आदि वेदोक्त धर्म का पालन नहीं करते थे । परन्तु शुम्भ वध महाकाव्य का शुम्भासुर वेदोक्त रीति का मानने वाला है । वह बिना गुरु से आदेश प्राप्त किये कोई भी कार्य नहीं करता है । वह वेदोक्त रीति से अभिषेकादि सस्कार मन्त्रोच्चार पूर्वक सम्पन्न करता है । प्रथम सर्ग मे अभिषेक के बाद गुरु आशीर्वाद देते है -

सिञ्चन्महर्षि स तयुत्तमाङ्ग वेदोदितं स्वस्त्ययन चकार ।। शु व 1/60 ।।

यवाङ्कुरान् मूर्ध्नि तयोर्निधाय श्रुत्युक्तमाशीर्वचनं जगाद ।। शु0व0 1/67 ।।

त्रैलोक विजय के बाद लौटता है तो पुन गुरु से आशीष प्राप्त करता है, जब स्वर्ग की ओर प्रस्थान करता है, तो पुन आशीर्वाद प्राप्त करता है । इससे शुम्भासुर की अटूट गुरु भक्ति प्रदर्शित होती है ।

4 उदात्त एव उदार चरित्र सम्पन्न प्रस्तुत महाकाव्य मे शुम्भ का चरित्र बड़ा ही उदात्त और उदार है, वह रामायण के प्रतिनायक रावण की तरह अहंकार नहीं करता है । उतना पापकर्मरत भी नहीं है । शुम्भ

अपने प्रजा के साथ अच्छा व्यवहार करता है । इसी लिये जब वह युद्ध के लिए चलता है तो गाँव मे सभी स्त्री पुरुष देखने लगते है । भूलोक विजय के प्रस्थान के समय महलों की अटारियों पर स्त्रियाँ बडी अभिलाषा से देखती है । वह भी मुग्धस्निग्धस्त्रियों की वाणी को सुनता हुआ और अपने दृष्टिक्षेप से पौरवृद्धों को सम्मान देता हुआ रथ मे बेठा हुआ आकाश मे चन्द्रमा जेसा लग रहा था -

शृण्वंस्तासां पौरसीमन्तिनीना मुग्धास्निग्धा सानुरागा स वाचम् ।

दृष्टिक्षेपैमनियन् पौरवृद्धान् राजेवाऽभ्रे स्यन्दनस्थोरराज ।।

शु0 व0 3/4 ।।

5 प्रजा को प्रभावितकर्ता

शुम्भ मे प्रजा को प्रभावित करने वाले राजोचित गुण थे । फिर भी जब स्वर्ग जीत लेता है, तो उसकी अन्य देत्य मण्डली प्रजा को अवश्य पीडित करती है । प्रजा मे उससे कोई भयभीत नहीं है । वह प्रजा को पीडित नहीं करना चाहता ।

6 महत्वाकाड्.क्षी

शुम्भासुर एक महत्वाकाँक्षी सम्राट के रूप मे चित्रित है । शुक्राचार्य से विरोध का कारण जानने के बाद देवलोक जीत कर उन्हें प्रताड़ित नहीं करता बल्कि बड़ी शान्तिपूर्ण ढग से तीनों लोकों मे शासन करता है । परन्तु बाद मे लक्ष्मी के मद मे गुरु की नीति को भुल कर आमोद प्रमोद मे लग जाता है । देत्यगण सहित वह भी त्रैलोक को व्यथित करता है ।

विस्मृत्य लब्धमुपदेशमुत्तमम देत्येश्वर स भृगुवंश केतनात् ।

आलम्व्य धर्मवगीतभासुर लोकत्रय व्यथयितु प्रचक्रमे ।।

शु0 व0 - 5/59 ।।

7 चतुर
---- शुम्भासुर बहुत ही चतुर देत्य सम्राट हे । जहाँ जिस नीति की आवश्यकता पडती है, उसी का प्रयोग कर बेठता हे । जहाँ समझता हे । राजा को जीतता है, तो कहीं लूट पाट करता है तो कहीं सन्धि कर बेठता है । वाराणसी नगरी को तो दूर से ही मात्र प्रणाम कर के आगे बढ जाता है । पञ्जाब नरेश को जीत कर कश्मीर की ओर बढता हे तो काश्मीर का राजा आत्म समर्पण कर देता है । उसे अपने साथ मिला लेता है । शूरसेन [illegible] मथुरा का नरेश जब भाग जाता है तो उसे बुला कर सम्मानित कर के कन्नोज की ओर प्रस्थान कर देता है -

पलायित भूपतिं भयेन लीन च गोविर्धन गह्वरेषु ।
आहूय सम्मान्य च देत्यनाथ सकान्यकुब्जाभिमुखः प्रतस्थे ।।

शु0 व0 - 4/45 ।।

महाराष्ट्र नरेश से जब उसे लगता है कि उसकी मृत्यु हो जायेगी, तो वह उनसे सन्धि कर लेता है -

समाप्य युद्ध प्रविधाय सन्धि शुम्भो महाराष्ट्र धराधिपेन ।
चिरेण कण्डूप्रशमात् स्वबाह्वोर्हृष्टोऽपरान्त प्रययो विजेतुम् ।।

शु0 व0 - 4/72 ।।

8 चक्रवर्ती सम्राट .
--------- शुम्भासुर तीनों लोकों को जीत कर चक्रवर्ती सम्राट बन जाता है और एक छत्र से वसुन्धरा पर शासन करता है ।

स नि सपत्नस्फुरदातपत्रो विश्वम्भरा देत्यपति शशास ।।

शु0 च0 - 4/81 ।।

और पृथ्वी का सम्राट होने के बाद नाग, सुर, गन्धर्व आदि के लोकों को जीतने के लिए प्रस्थान कर देता है ।

9 गुरुनीति का विस्मरणकर्ता इन्द्रलोक की विजय के बाद अपने लोक को छोड़ कर देवलोक की राजगद्दी पर बैठता है तो गुरु की बताई हुई भार्गवी नीति को भूल कर वहीं से तीनों लोकों पर शासन करने लगता है । ऐसा कौन सा व्यक्ति है, जिसकी बुद्धि लक्ष्मी पा कर व्यर्थ नहीं होती और शुम्भ भी तीनों लोकों को व्यथित करने लगा -

लक्ष्मी प्रभुत्वमविवेकिता वयो नव्य न कस्य करोति मानसम् ।
अवलम्व्य धर्मभवगीतमासुर लोकत्रण व्यथयितु प्रचक्रमें ।। 5/59 ।।

10 आसुरी प्रवृत्ति वृद्धि गुरोपदेश भूलने के बाद शुम्भासुर मे आसुरी प्रवृत्ति आ जाती है । वह अपनी उदारता उदात्त चरित्र, यथोचित सम्मान करना आदि भूल जाता है । सुर, नर, नाग के राजाओ से अधिक कर ग्रहण करने लगता है । कृषकों से भी अधिक कर लेनें लगता है ।

जग्राह शुल्कमधिकं कृषीवलाद् रत्नानि रत्नवणि जां जहार स ।।
शु0 व0 -5/60 ।।

पुराणादि में शुम्भ प्रारम्भ से ही आसुरी प्रवृत्ति का है, परन्तु महाकाव्य का शुम्भ लक्ष्मी मद से ऐसा करता है । यह कवि कल्पना गम्य है ।

11 महापराक्रमी शुम्भासुर पराक्रमी शूरवीर है। वह पृथ्वी के राजाओं को सरलता से जीत लेता है । उसके आगे कश्मीर आदि के राजा नतमस्तक

हो जाते हैं । चतुर्थ सर्ग मे पञ्जाब नरेश का प्रताप उसके प्रताप मे वेसे विलीन हो जाता है, जैसे दिन की समाप्ति पर किरणे सूर्य मे विलीन हो जाती है-

ययो प्रतापो विलयं क्रमेण सहस्ररश्मेरिव वासरान्ते ।। शु व 4/30 ।।

त्रयोदश सर्ग मे देवी से युद्ध में भी पीछे नहीं हटता विश्व को कपा देने वाला युद्ध होता है । देवी के बाणों को भी काट डालता है ।

पर शतान् दैत्यपति: स्वबाणै शरान् भवान्या प्रखरान् लुलाव ।। शु व ।3/3। ।।

।2 दिव्यशस्त्रास्त्रों से सम्पन्न : वह दिव्य शस्त्रास्त्रो से सम्पन्न है । वह चन्द्रहास, गदा, खेट आदि अस्त्रो का युद्ध मे प्रयोग करता है । देवताओं को कंपित करता हुआ देवी के ऊपर इनका प्रयोग करता है ।

।3 मल्लविद्या मे निपुण: दैत्यराज मल्लविद्या मे भी निपुण है। सभी शस्त्रास्त्र निष्फल होने पर वह दुर्गा से मुष्टियुद्ध प्रारम्भ कर देता है। जब देवी प्रहार करती है, तो उन्हे आकाश में लेकर उड जाता है -

नभस्तले शम्भुसुतीं गृहीत्वा जवेन वातूल इवोत्पपात ।।शु व ।3/50 ।।

।4 समयानुकूल कार्यकर्ता: असुराधिप समयानुकूल कार्य करता है द्वितीय सर्ग मे शरद ऋतु के आने पर शरद् ऋतु को परम अनुकूल देखा कर भावी विजय के शुभ लक्षण समझ कर अश्मन्तक आदि पूजन के लिये विजय दशमी के दिन अपने सचिवो सहित घोड़े पर सवार हो कर वन को प्रस्थान करता है -

इत्थं विलोक्य शरद समयानुकूल्य सम्भाव्य भाविविजये शुभलक्षणानि ।

शुम्भो निशुम्भ इतरे· समवेत्यवाजि नीराजना विद धतुर्नववासराणि ।।

शु0 व0 - 2/40 ।।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शुम्भासुर, एक मुख्य प्रतिनायक सेना का कुशल सचालक उदात्त एव उदार चरित्र युक्त चक्रवर्ती सम्राट होता हुआ, अनेकानेक गुणो से युक्त होता हुआ भी विलासिता से दूर ही चित्रित किया गया है । पूरे महाकाव्य मे विलासिता नहीं दृष्टिगोचर होती है । हमेशा अपने सैनिको को उत्साहित करता रहता है । शत्रु प्रशसा सहन नहीं कर पाता ।

वास्तविक रूप से शेवडे जी ने शुम्भासुर मे उन चारित्रिक गुणो का समावेश कराया है, जो देत्यो को हुआ करते थे । वह प्रतिनायक होता हुआ भी नायक के गुणों से भरपूर है । जैसा सम्राट इसे दर्शाया गया है वह तो नायक के हुआ करते हैं । धीरोद्धता तो स्पष्ट रूप से कहीं दिखाई ही नहीं देती है । यदि वह सञ्जीवनी विद्या के निधि की नीति को न भूलता तो शायद उसकी मृत्यु न होती । महाकाव्य में कहीं भी शुम्भ मर्यादा का उल्लघन नहीं करता । अत शुम्भ जैसे देत्य सम्राट मे देवत्व गुणो का समावेश कवि की एक अनूठी छाप है । ऐसी छाप न तो कुमार सभव के तारकसुर मे है और न ही शिशुपाल वध महाकाव्य में ।

4. निशुम्भ ·

शुम्भ वध महाकाव्य मे शुम्भासुर प्रतिनायक है जिसका अनुज निशुम्भ है । दोनों का आगमन एक साथ होता है । दोनो भाई साथ - साथ

सिंहासनरुढ़ होते हैं । निशुम्भ अपने अग्रज का पग - पग पर साथ देता है । शुम्भासुर भी हमेशा उसे साथ लिये रहता है । दोनों भाईयों में दूरी नहीं दिखाई देती । दोनों एक दूसरे के साया हैं । दोनों भाई अपने गुरु से ही एक ही साथ देवताओं से विरोध पूछते हैं एक ही साथ उनकी प्रशंसा भी करते हैं । महाकाव्य में निशुम्भ के चरित्र की कुछ विशेषताएं इस प्रकार हैं -

1. सेनापतिः जैत्र यात्रा के प्रसंग से शुम्भ अपने भाई निशुम्भ को सेनापति नियुक्त करता है ।

शुम्भासुरः प्रथितबाहुबलप्रभावं सेनापतिं स्वमनुजं विदधे निशुम्भम् ।।

शु0 व0 - 2/55.. ।।

2. क्रोधी : निशुम्भ क्रोधी स्वभाव का है । जब देवी युद्ध में कहती हैं कि तुम त्रिलोक विजयी हो, धिक्कार है, कि मुझ जेसी अबला को सेना सहित जीतने आये हो । युद्ध त्याग कर भाग जाओ, गुरु से राजनीति सीखो । इतना सुनते ही आग बबूला हो कर कहता है - अरे पर्वत की पुत्री । जाल्म कठोर हृदया अभी तुम्हें और तुम्हारे सिंह को मार कर महिषासुर का तर्पण करता हूं । जितनी भी देवताओं की शक्तियाँ खुशी खुशी आयी हैं अभी मैं तुम्हें मारता हूं तो वे सभी चारो ओर भाग जायेगी -

यः शक्तयो नगसुते तव देवतानां सञ्जज्ञिरे समुदिताः समरे सहायाः ।

निसंशयं त्वमि मया प्रसभं हतायां सर्वाश्च ता दिशि - दिशि प्रपलायिताः ।।

शु0 व0 - 12/14.. ।।

3 साहसी एव पराक्रमी

द्वादश सर्ग मे जब एक बार मूर्च्छित हो जाता है तो शुम्भ देवी से युद्ध करता है । जब शुम्भ मूर्छाग्रस्त होता है तब निशुम्भ चेतना को प्राप्त कर के घनघोर युद्ध करता है । ऐसे बाण चलाता है जैसे बाणो की वर्षा हो रही हो -

धाराधरौ जलभरानिव लाघवेन मुञ्चञ्छरानविरतं पिदधे मृडानीम् ।।

शु0 व0 - 12/41 ।।

4 अलौकिक शक्ति सम्पन्न :

शुम्भ की तरह निशुम्भ भी अलौकिक शक्ति सम्पन्न है । अन्त मे जब दुर्गा उसे शूल से बींधती है, तो उसके आहत शरीर से एक दिव्य पुरुष निकलता है, जो क्रोध मे रुक - रुक ऐसा कहने लगा -

तस्याऽऽहतस्य हृदयात्पुरुष सरोष तिष्ठेति भाषणपरो बहिराजगाम ।।

शु0 व0 - 15/50 ।।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि निशुम्भ भी साहसी एव पराक्रमी है । अलौकिक शक्ति सम्पन्न है । निशुम्भ इतना शक्ति सम्पन्न है कि जब तक निशुम्भ जीवित रहता है तब तक शुम्भ को कोई चिन्ता नहीं रहती अत निशुम्भ भी एक शूरवीर योद्धा है ।

5. **धूम्रनेत्र या धूम्रलोचन :**

शुम्भवध महाकाव्य में धूम्र लोचन शुम्भासुर की सेना का एक महादैत्य है । जिसका परिचय अष्टम सर्ग में प्राप्त होता है । देवी से युद्ध के प्रसंग में शुम्भ की राज सभा में विचार - विमर्श के समय वह स्वयं

आ कर कहता है कि महाराज । क्षमा करे । युद्ध मे स्त्री को जीतना कौन सी कठिन बात है ? यही धूम्रनेत्र नवम सर्ग में देवी के हुँकार मात्र से भस्म हो जाता है फिर भी उसके चरित्र की कुछ विशेषताए प्रस्तुत है -

1 आत्मश्लाघी · वह शुम्भ से अपनी प्रशसा स्वय करता है वह हाथ जोड़ कर दैत्यराज से कहता है । आप क्षमा करे मै उस धृष्टा के सन्दर्भ मे कहना चाहता हू कि स्त्रियों को युद्ध में जीतना कौन सा कठिन कार्य है ? आपका दास हू । आप कहे तो उस दुष्टा का बाल पकड कर अभी ले आऊँ ।

स्त्रिय विजेतु युधि काञ्चिदेतया किमारभट्या सति माहशे जने ।।शु व 8/44 ।।

प्रगृह्य केशेष्ववलिप्तमानसा समानये तामहमत्र सत्वरम् ।।शु व 8/45 ।।

आगे कहता है कि हे स्वामी मै तुच्छ होता हुआ भी आपकी कृपा से उसको ला सकता हूँ ।

2 दुर्गा के रूप पर आश्चर्यान्वित · हिमालय पर पहुँच कर दुर्गा के रूप को देख कर ऐसा आश्चर्यान्वित होता है कि क्षण भर के लिए आत्मविकत्थन भूल जाता है - जैसे ग्राम्य जन्तु भ्रमित हो जाता है -

विस्मरन् क्षणमिवात्मविकत्थन ग्राम्यजन्तुरिव सम्भ्रमं दधौ ।।शु व 9/9 ।।

पुन अपने स्वामी प्रशसा करता है कि संसार मे वह त्रैलोक विजेता है । वह सर्व शक्ति सम्पन्न हैं । देवी को स्वामी के पास चल कर रहने को कहता है ।

3 सहसा क्रोधकर्ता ·

धूम्रलोचन से जब देवी कहती है कि तुम सेना ले कर आये तो जीत कर मुझे ले चलो तो क्रोध मे आ कर माहेश्वरी को पकडने दौडता है । तभी हुँकार मात्र से देवी उसे भस्म कर देती है-

हुङ् कृतेन नगराजनन्दिनी भस्मसादकृत् धूम्रलोचन ।। 9/20 ।।

अत धूम्र लोचन भी, पराक्रमी, स्वामिभक्त, स्वामी के प्रति विनम्र, आत्मश्लाघी आदि गुणो से परिपूर्ण है ।

6. चण्ड और मुण्ड

इस महाकाव्य मे शुम्भ की दैत्य सेना मे चण्ड और मुण्ड दो वीर दैत्य निर्दिष्ट है । जो धूम्रलोचन के भस्म होने के बाद देवी से युद्धार्थ जाते है । युद्ध मे उन दोनों का वध होता है । उनके चरित्र की कुछ विशेषताए इस प्रकार है -

रणभेद्री से दिग्गजो को कँपाने वाले - जब शुम्भ की आज्ञा से युद्ध के लिए पान के बीडे को उठा कर ढोल आदि बजाते है, तो दिग्गज काँप उठते है -

प्रस्थानार्थं चक्रतुश्चण्डमुण्डो ढक्काराव कम्पद दिग्गजानाम् ।।

शु0 व0 10/10 . ।।

देवी के द्वारा मृत्यु बड़ी वीरता से युद्ध करने के बाद बडी जल्दी ही पहले चण्ड का वध होता है उसके बाद मुण्ड के दोड़ने पर देवी उसका भी वध कर देती हैं । मुण्ड ऐसे जमीन पर गिरता है, जैसे आँधी मे साल का

मेदी मुण्डं पातयामासभूमौ वात्या वेगात्छाल वृक्ष यथेव ।।

शु0 व0 - 10/39 ।।

अत ये दोनो देवी के सामने टिक नहीं पाते ।

7. **रक्तबीज** ·

देवी भगवत मे रक्तबीज चण्ड मुण्ड की मृत्यु के बाद सेना सहित भेजा जाता है । परन्तु शुम्भ वध महाकाव्य मे उसी समय शुम्भ भी सेना सहित चल देता है । युद्ध क्षेत्र में जब मातृकाओं और देत्य सेना का युद्ध होता है, तो देत्यों के विनाश को देखा कर एक देत्य आ पहुचता है, जिसके जितने रक्त जमीन पर गिरते है, उतने ही उसी रूप आकार के देत्य तेयार हो जाते है - यही रक्त बीज का पिरचय है । इसके चरित्र की कुछ विशेषताए इस प्रकार है -

मतवाला हाथी

रक्तबीज को मतवाला हाथी के रूप मे चिहिन्त किया गया है । जिसे वरदान है कि जितने रक्त जमीन पर गिरेगे उतने रक्तबीज तेयार होंगे इस बात को देवी जानती हैं । यह जब देत्य सेना के विनाश को देखाता है तो मतवाले हाथी के समान युद्ध भूमि मे आ पहुचता है -

आलोक्य क्षुभित इव द्विप· प्रमत सरम्भादुपसरतिस्म रक्तबीज ।।शु व 21/26 ।

देवी के द्वारा मृत्यु

जब बहुत देत्य तेयार हो जाते है तो देवी कालिका को मुखा फैला कर समस्त रक्त पान करने को कहती है । कालिका के ऐसा करने पर देवी रक्तबीज का अन्त कर देती है, तो तीनो लोकों को भ्रमित करता हुआ तूफान के द्वारा उत्पाटित वृक्ष के समान जमीन पर गिर पडा ।

उन्मूलितो द्रुम इव प्रबलानिलेन भूमौ पपात स जवाद् भ्रमयंस्त्रिलोकीम् ।।

शु० व० - 11/46

8. **नन्दिकेश्वर** - नन्दिकेश्वर का प्रसंग ही महाकाव्य मे कल्पना परक है । किसी भी पुराण मे इस प्रसग मे नन्दिकेश्वर नाम का पात्र विवेचित नहीं है । यह महाकाव्य के सन्धि विग्रहार्थ दूत कार्य मात्र लक्षण को प्रदर्शित करने के लिए किया गया है । इसके चरित्र की विशेषताए इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती है -

1 परिचय - भगवान् शिव की सभा मे देवी दुर्गा और देवगण शुम्भ से युद्ध की मन्त्रणा करते हैं, तो दूत की आवश्यकता पड़ने पर शिव जी दूत कार्य के लिये नन्दिकेश्वर को सूचित करते है, यह प्रसग सातवे सर्ग मे है, यहाँ पर नन्दिकेश्वर का परिचय प्राप्त होता है ।

कोऽव्रजेदसुरराजसभाया प्राप्य दूत्यमिति तत्र विचारे ।

पात्वा वचसि साधु दधान नन्दिकेश्वरमसूचयदीश ।।

शु० व० - 7/16 ।।

2 दूतकर्म मे निपुण - देवी उसे दूत श्रेष्ठ, मनीषी, सूचनावाहकों मे श्रेष्ठ बताती है । देवी उसके गुण को जानती भी है । अत कहती है- और शुम्भ सभा में भेजती है ।

दूतकर्मणि निपुणोऽसि मनीषिन् वाग्विदाँ सदसिमान्यतमोऽसि ।

ब्रूहि शुम्भसमीपमुपगम्य ततस्त्व नीतिशास्त्रविदुषामनुरूपम् ।।

शु० व० - 7/18 ।।

3 निर्भीक एव साहसी - शुम्भ की सभा मे निर्भीकता एव साहस का परिचय देता है । शुम्भ तर्कों के द्वारा फटकारता है । वह दुर्गा जी के द्वारा भेजे गये सन्देश को बडी सफलता से शुम्भ की सभा मे प्रस्तुत करता है । वह निर्भीकता से शुम्भ से कहता है कि त्रिलोकी आदेश देती है कि असत्य का रास्ता त्याग कर अपने देश को चले जाय । स्वर्ग पर इन्द्रादि शासन करें । मेरी मानो तो मेरे द्वारा मारे गये महिषासुर का मार्ग मत पकडो, अन्यथा वह गति होगी -

पालयन्तु वचनं मम सर्वे मा व्रजन्तु महिषासुरवर्त्म ।
दुर्गमोऽपि भवता न स पन्था येन मद्विनिहतोमहिषोऽगात् ।।

शु0 व0 7/33 ।।

अत· नन्दिकेश्वर निर्भीक , साहसी, बुद्धिमान, वाक्पटु दूत है।

9. सुग्रीव ·

सुग्रीव शुम्भासुर का दूत है । नन्दिकेश्वर के जाने के बाद शुम्भ उसे समझा कर देवी के पास सन्देश भेजता है । जिसके चरित्र की विशेषताएँ निम्नलिखित है -

शिव की सभा से प्रभावित जब सुग्रीव शिव की सभा मे पहुचता है तो पार्वती और शिव को देख कर ऐसा आश्चर्यचकित होता है जेसे धनिकों के घर मे गाँव का व्यक्ति चकित होता है -

आसाद्य तत्र सदनं मदनस्य हन्तुः कैलासशैलशिखरस्थितमुन्नतश्रि ।
ग्राम्य· क्वचिद्धनिकसौध इव प्रविष्टो दूत· स विस्मयमवाप विलोकमान ।।

शु0 व0 7/55 ।।

2 सिखाया तोता

सुग्रीव मात्र एक सिखाया तोता ही प्रतीत होता है, क्योंकि जो कुछ सन्देश है, शुम्भ स्वय कह कर भेजता है वह स्वय कुछ नहीं कह पाता है । इसीलिए कवि उसे मात्र शिक्षित धीर कीर कहता है -

धीर स कीर इव शिक्षितमानुपूर्व्या शुम्भोदित सकल याचिकमाचचक्षे ।।

शु0 व0 7/57 ।।

3 शिव से प्रभावित ·

शिव के चरणों मे और उनके चेहरे पर दृष्टि पडते ही वह पूर्णतया शिवभक्त हो जाता है और शुम्भ के सन्देश को पार्वती से शीघ्रता से कह कर शिव को प्रणाम कर के, उनसे आदेश प्राप्त कर आनन्दित हो कर चला जाता है ।

आपृच्छ्य प्रमथपति कृतप्रणाम· सामोद शिवभवनाद्विनिर्जगाम ।।

।। 7/58 ।।

इस प्रकार सुग्रीव विद्वानों की धुरी हो कर भी शिव के प्रभाव से शिव भक्त हो जाता है ।

अत सुग्रीव का उतना अच्छा प्रभाव नहीं है ।

10. **बृहस्पति ·**

बृहस्पति देवताओं के गुरु है । महाकाव्य मे उनके चरित्र की विशेषताएँ इस प्रकार है -

1 व्यक्तित्व
------ वृहस्पति देवताओं को देवी प्रासादन मात्र ही शुम्भ के वध का उपाय बताते हैं । इनकी महिमा के सम्बन्ध मे कवि गान करता है - जिसके जिह्वा पर द्रुहिण दुहिता (सरस्वती) नर्तकी के समान नृत्य करती है - चौदह विद्याएँ उनके गले मे स्वेच्छा से निवास करती हैं -

यस्य नृत्यति चिरं रसनाग्रे नर्तकीव दुहिता द्रुहिणस्य ।

यस्य कण्ठकुहरे निवसन्ति स्वेच्छयेव हि चतुर्दश विद्या ।।

शु0 व0 - 7/55 ।।

2 गम्भीर एव वाक्पटु
----------- बृहस्पति गम्भीर और विनम्र है । देवी के उपाय पूछने पर अति गम्भीरता और नम्रता से जगत् के माता -पिता के सामने अपना महत्व नगण्य कर देते है, इसमे इनकी वाक्पटुता भी प्रदर्शित है । जैसे वृहस्पति देवी से कहते है -

अग्रतो जनकयोर्भुवनानां नास्ति देवि मम वागवकाश ।।शु व 7/7 ।।

कामयेतदपि किञ्चन वक्तुं वावदूक इव धृष्ट इवाऽपि ।

दूषणं मुखरता न हितार्थी निस्त्रपत्वमिव भोजनकाले ।।शु.व. 7/8 ।।

बृहस्पति ही शुम्भ - निशुम्भ को मारने के लिए देवी का प्रेरित करते हुए कहते है कि वे तुम्हारे द्वारा ही मारे जाने योग्य है -

तो हनिष्यसि जगज्जननि त्वं भ्रातरौ त्रिभुवनं छलयन्तो ।।शु व 7/10 ।।

3 दार्शनिक एव नीतिज्ञ
------------ गुरु वृहस्पति मे दार्शनिकता के भी गुण हैं । वे देवी से कहते हैं कि हे माता । देत्यों को सन्मार्ग से दूर करने का नास्तिक वाद ही है । वे बहुत ही बुद्धिमान है । वे बताते है कि शस्त्र

से हराया गया शत्रु तो विरोध करता ही है परन्तु बुद्धि से जीता गया शत्रु कभी विरोध नहीं करता -

आयुधैरतितरा रिपुवर्गो निर्जितोऽपि पुनरेति विरोधम् ।
प्रज्ञया तु न स चेलितुमर्हो मन्त्रबद्ध इव कालभुजङ्ग ।।शु व 7/12 ।।

4 राजनीतिज्ञ
------ राजनीति की बात देवी बृहस्पति के ही मुख से कहलवाती है । बृहस्पति देवी के पूछने पर सन्धि विग्रह की बात करते है । इसी कारण देवी का सर्व प्रथम शुम्भासुर के पास दूत भेजना पडता है। वे कहते है कि जब कोई नीति से न माने तब युद्ध करना चाहिए । वे कहते है -

नीतिशास्त्रनिपुणा इह सन्धिं विग्रहाद् हिततरं कथयन्ति ।
तज्जगज्जननि शुम्भ समीपं प्रषय त्वमपि कञ्चन दूतम् ।।शु व 7/14 ।।

इस प्रकार आचार्य बृहस्पति गम्भीर, विनम्र, वाक् चतुर, बुद्धिमान तथा कुशल राजनीतिज्ञ है ।

।। शुक्राचार्य

शुक्राचार्य की शुम्भवध मे महत्वपूर्ण भूमिका है । यदि शुक्राचार्य जैसे देत्य गुरु न होते तो शायद देत्य कुल और ही अलग स्थिति मे होता। इनके चरित्र की कुछ विशेषताए इस प्रकार है -

। परिचय
----- ये भृगु पुत्र, देत्यवंश पुरोहित तथा देत्यों के सहायक और मार्ग दर्शक है । शुम्भ वध में इनकी और शुम्भ निशुम्भ की वार्ता या सवाद से ही सर्ग महाकाव्य प्रारम्भ होता है ।

2 व्यक्तित्व - शुक्राचार्य एक विद्वान, राजनीतिज्ञ और एक कुशल पथ प्रदर्शक है । इन्हीं से शुम्भ निशुम्भ देवासुर विरोध का कारण ससम्मान पूँछते है । वे दोनों इन्हें त्रैलोक मे श्रेष्ठ नीतिज्ञ कहते है -

त्वामग्रगण्ये भवांस्त्रिलोक्या पुराविदा नीतिविशारदश्च ।। शु व 1/16 ।।

ये मुनिवत् आचरण वाले, हाथ मे अक्ष माला धारण किये हुए मुस्कराते हुए मुख वाले, सञ्जीवनी विद्या के निधि हैं ।

3 राजनीति तथा कूटनीति के उपदेशक - ये दोनो दैत्यो को राजनीति और कूटनीति की बात बताते है । एक सफल राजा के क्या गुण है, वह कैसे सफल सम्राट हो सकता है । वे कहते है प्राय व्यक्ति लक्ष्मी पा कर कुमार्ग पर भटक जाता है । किसी भी राजा को शासन करने के लिए उत्साह शक्ति, प्रभु शक्ति और मन्त्र शक्ति तीन शक्तियो का उपदेश देते है -

उत्साहशक्तिः प्रभुशक्तिरेवं मन्त्रस्य शक्तिस्त्रितयं तदेतत् ।।

शु0 व0 - 1/36 ।।

इसी प्रसग मे अन्य श्लोक भी द्रष्टव्य है -

अविक्रमं पार्थिवनीतिहीनं पद पर पैतृकमाश्रयन्तम् ।

स्तम्बेरम हीनबल वशेव क्षमाभृत त विजहाति लक्ष्मी ।।शु व 1/40 ।।

नश्येत् स राजा स्वयमेव नून नोत्पद्यते यस्य जनानुराग ।।शु व 1/46 ।।

मद सुराया इव सम्पदोऽपि बलात् समग्रं हरते विचारम् ।

विचारशून्यस्य कुतोविवेको विवेकहीनो भजते विपत्तिम् ।।शु व 1/50 ।।

विभूतिकामस्य धराधिपस्य न युज्यते बाहुबलाबलेष ।।शु व 1/51 ।।

इससे स्पष्ट होता है कि शुक्राचार्य जी स्पष्ट होता है कि शुक्राचार्य जी स्पष्ट वक्ता, न्याय के पक्षधर और कुशल नीति के उपदेशक रहे है ।

4 देवताओं के निन्दक तथा दैत्यों के प्रेरक

शुक्राचार्य देवों का जमकर विरोध करते है उनकी निन्दा करते है कि वे हमेशा अन्याय करते रहे है । समुद्र मन्थन मे भी दैत्यों के साथ अन्याय हुआ । अन्याय होता ही रहा है ।

शुक्राचार्य ने ऐसी बातों और उत्साहित करने वाले कथनो से शुम्भ और निशुम्भ को इतनी गूढता से समझाया है कि दैत्य बडी प्रशसा करते है। प्रथम सर्ग शुक्राचार्य के ही चरित्र को अधिक स्पष्ट करता है । प्रसन्नता से दैत्य प्रशसा करते है -

वीरोचितं साहसमाचरन्तो नीति परामौशनसीं प्रपन्ना ।

प्राणांस्तृणीकृत्य रणाङ्गणेषु जयन्तु लोक त्रितय भवन्त ।।

शु0 व0 - 1/54 ।।

5 सञ्जीवनी विद्या के निधि

सञ्जीवनी विद्या इनकी कुल विद्या है । जिसके सामने गुरु बृहस्पति की ओर देवताओ की विद्या असफल हो जाती है । उसी विद्या के आश्रित शुम्भासुर त्रैलोक जीत लेता है । यही चिन्ता सुरगुरु बृहस्पति को भी है । ये यही तर्क देवी से सातवे सर्ग मे कहते है कि - सञ्जीवनी विद्या के आश्रित शुम्भ हर किसी द्वारा दुर्जेय हैं -

संश्रितौ भृगुपतेर्नयनीतिं दुर्जयौ समितिशुम्भनिशुम्भौ ।

जागरूकनयनां मगराज्ञीं शावकाविव वने विहरन्तो ।।श व 7/9. ।।

यहाँ जागरूक दो नेत्र वाली सिहनी विद्याओ और दो शावक शुम्भ और निशुम्भ को कहा गया है ।

उपर्युक्त विवेचित पात्रों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी पात्र है, जो कल्पना के पात्र है और कहीं - कहीं प्रसग मे उनका नाम मात्र आ गया है, वे इस प्रकार प्रस्तुत है - इन्द्र, महिषासुर, शकर, नागवासुकि, तक्षक, कर्कोटक आदि । देवों मे यम, पवन, वैवस्वत, चण्डकिरणात्मज, प्रभञ्जन, आदित्य, विश्वावसु, रुद्र, अश्विनी कुमार, मातरिश्वा, नैऋत्र, गन्धर्व, कुबेर, विद्याधर आदि का नाम मात्र आता है ।

काल्पनिक पात्रों मे, पञ्जाब नरेश, महाराष्ट्र नरेश, कश्मीर नरेश, मथुरा नरेश, वंग नरेश आदि का नाम मात्र आता है ।

इस प्रकार शुम्भवध महाकाव्य का पात्र परिचय का यहीं पर विराम दिया जाता है ।

****
****
****
**
*

पञ्चम अध्याय

(महाकाव्य मे अलंकार)
एवं
छन्द योजना

*****

:. पंचम अध्याय ::

शुम्भवध महाकाव्य में अलंकार एव छन्द योजना

अलंकार - अलंकियते इति इलंकार = अलम् + कृत + धञ, अलं करोति इति अलंकार वा। अत: जो अलंकृत किया जाय अलकार है। काव्य के शोभाधायक तत्वों को (धर्मों) अलंकार कहते हैं।

काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारा. प्रचक्षन्ते।

काव्य प्रकाशकार आचार्य मम्मत ने अलंकार की निम्न परिभाषा दी है -

उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेणजातुचित्।

हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादय. ।। का0प्र0 8/67

अर्थात् जो अंग या धर्म अर्थात् अंगभूत शब्द और अर्थ के द्वारा (उसमें उत्कर्ष उत्पन्न करने पर) विद्यमान होने वाले (सन्तं = यदि वह हो तो) उस (अंगी) रस का हार इत्यादि के समान कभी (नियम से कहीं) उपकार करते हैं। वे अनुप्रास था उपमा आदि अलंकार कहलाते हैं ।

आचार्य विश्वनाथ ने साहित्य दर्पण में कहा है

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्मा शोभातिशायिन ।

रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत्।। (सा0द0 10/1)

अनुप्रासादि को शब्दालंकार तथा उपमादि को अर्थालंकार कहा जाता है।

महाकाव्य में अलंकार

शुम्भवध महाकाव्य में दोनों प्रकार के अलंकारों का समावेश महाकवि ने अनुप्रास अलंकार का प्रयोग अधिकांश किया है। जो इस प्रकार है, जिनका निरूपण निम्न प्रकार से है -

(1) अनुप्रास -

वर्णसाम्यमनुप्रासः - (आचार्य मम्मट)

वर्णसाम्यमनुप्रास वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।। सा०दर्पण

स्वर की विषमता होने पर भी वर्णों में समानता होने पर अनुप्रास अलंकार होत है। इस महाकाव्य में चतुर्थ सर्ग में शुम्भ कन्नोज के राजा को जीत लेता है जिसका अनुप्रास मिश्रित उपमा में मनोहर वर्णन है -

श्येनो विहंगं नकुलो भुजंगं व्याधः कुरंगं रथिकस्तुरंगम्।

आक्रम्य शुम्भो वशगं चकार स कान्यकुब्जाधिपतिं यथैव।। शुम्भवध 4/46

यहां पर "गं" "गं" की चार बार आवृत्ति हुयी है। अत अनुप्रास अलंकार है। इसी प्रकार बंगाता नरेश शुम्भ की अधीनता स्वीकारता है तो अनुप्रास मनोहर है : -

गंगातटे प्राप्तरण प्रसंगा वंगा निशुम्भाग्रजलब्धभंगाः ।

समुद्धतभावं सहसाविहाय जङ्घाबलं सादरमाश्रयन्त ।।

शुम्भवध 4/54

पौराञ्जनाञ्जानपदान् गिरिस्थान्नयेत् स्ववश्याननुरञ्जनेन ।

नश्येत् स राजा स्वयमेव नूनं नोत्पद्यते यस्य जनानुराग. ।। शुम्भवध 1/44

यहां प्रथम एवं द्वितीय चरण में "न" अन्त मे है अनुप्रास है। अन्य उदाहरण द्वितीय सर्ग में घोड़ों के चयन में भी अनुप्रास है। अन्य उदाहरण द्वितीय सर्ग में घोड़ों के चयन मे भी अनुप्रास है -

सल्लक्षणा. प्रजविनंस्तरूणा विनीता,

धारासुपञ्चसु पदक्रमभादधाना

कृष्णा· सिताश्च शबलाः प्रबला शरीरे

सैन्ये तयो· शुशुभिरेशतशस्तुरड्गा।। शुम्भवध 2/4।।

इसी सर्ग में कमलों पर भौरें गुंजार करते हैं तो अनुप्रास एवं उत्प्रेक्षा दृष्टिगोचर है : -

इन्दीवरेषु कमलेषु कुशेशयेषु,

रक्तोत्पलेषु कुमुदेषु चहल्लकेषु।

आस्वाद्य साधु मकरन्द रसं मिलिन्दा

मन्दामिता इव मदेन कल जुगुञ्जु ।। शुम्भवध 2/26

तृतीय सर्ग में सेना के पड़ाव के समय बाजों और तीतरो के वर्णन में अनुसार है।

आखेटादौ शिक्षितान् सारमेयानादायैके वज्ञ्जु श्रृखलेन ।

श्येनान् के चित्तित्तिरीन् सांयुगीन् कीरान् धीरान् भाषण पञ्जरेषु।

पांचयें सर्ग में नागलोक और स्वर्गलोक के वर्णन में अनुप्रास है : -

से देवता और दैत्यों के उपमेय और गोपगणों के उपमान होने से उपमालकार है।

महाकाव्य के प्रथम सर्ग में शुक्राचार्य द्वारा शुम्भ को दिये उपदेश में उपमाओं की घटा दर्शनीय है।

महासुरस्तारकनामधेयः स्फुरज्जगज्जित्वरबाहुदण्ड ।
प्रभञ्जनेनेव विशालवृक्षो निपातितः क्रौञ्चविदारणेन।। शुम्भ वध 1/35

बर्हि. स्थिताच्छक्रजनाननेकानेकोऽतिशेते सदनान्तरस्थ ।
दधातितापं वडवानलेन यथा सरस्वान्न तथाऽर्कपादे ।। शुम्भवध 1/49

द्वितीय सर्ग में शरद् ऋतु के प्रसंग में उपमा मनोहर है

वृष्ट्या जलानि कलुषाणि नदीनदाना
मासादयन् पुनरगस्त्युदयेन शुद्धिम् ।
क्षोभोदयेन विकृतानि ततो विवेकात्
संस्थापितानि महतामिव मानसानि।। शुम्भवध 2/25

चतुर्थ सर्ग में शुम्भासुर गणों के राज्य में प्रवेश करता है तो उपमा दर्शनीय है -

अतीत्यसीमां स कुलक्रमणेण देशस्य दैत्ये प्रतिपालितस्य।
यथा विवस्वानयन नवीन राज्यं गणानामविशत् समृद्धम्।। शुम्भवध 4/6।

पांचवें सर्ग में नागों और दैत्यो ने शंख बजाया जिसकी उपमा कवि कर रहे हैं . -

हर्म्याणि यत्र धनिनां फणाभृतां भर्माणि रत्ननिवहाँश्च विभ्रति।

शर्माधिकं च सुहृदां हितैषिणां मर्माविधं ददति विद्विषां रूजम्।। शुम्भवध 4/14

मन्दारपुष्पमकरन्दतुन्दिलो यत्र द्युसिन्धु जलबिन्दुशीतल ।

मन्दं हि चन्दनलता विकम्पयन्नावाति नन्दनवने समीरण ।। शुम्भवध 5/54

स्फुटपुष्पसुगन्धबन्धुर दलदम्भोजमरन्दमेदुर ।

सुरसिन्धुतरङ्गशीतल· पवनो वातिवनेषुपावन ।। 6/42

इसी प्रकार अन्य जगहों पर भी अनुप्रास अलंकार है ।

उपमा - महाकवि का सर्वप्रिय अलंकार उपमालकार है, जिसका इस महाकाव्य में अधिकाधिक प्रयोग हुआ और जो इस प्रकार है

काव्य प्रकाश 10/124

(2) उपमा - साधर्म्यमुपमा भेदे (उपमान तथा उपमेय का) भेद होने पर (दोनों के गुण क्रिया के साधर्म्य की समानता का वर्णन उपमालकार है।

शुम्भवध में उपमालंकार

प्रथम सर्ग में देवता और दैत्य द्वारा समुद्र मन्थन के प्रसग में उपमा की छटा देखने को मिलती है।

मन्थानमध्यम्बुधि मन्दराद्रिं संस्थाप्य सर्पाधिपरज्जुबद्धम्।

निबद्धकक्षा असुरा· सुराश्चगोपा इवाटोपवशा ममन्थु.।। शुम्भवध 1/13

यहां पर सुरासुर और गोपगणों में साधर्म्य की समानता होने

शंखान्प्रपूर्यमुखमारुते मुहुर्देवीकराश्च दनुजा अवीवन्दन् ।

भेरीस्वन. पट दुन्दुभिध्वनिर्गन्तुं दिगन्तमिव जाड्यधिको दभूव।। शु0व0 5/18

इसी तरह छठे सर्ग में इन्द्र देवी की स्तुति में वरदान मागते हैं -

विनिमज्जतु धर्म आसुरस्तिमिरोपस्तपनोदये यथा।। शुम्भ वध 6/63

सातवें सर्ग में देवी का सन्देश नन्दिकेश्वर शुम्भ से उपमा मे कहता है -

निर्गतो सुमनसः सुरसलोकाल्लुब्धका इव वने विचरन्ति।

संवसन्ति वनिता अपि तेषां कन्दरासु विपिनेषु गुहासु।। शुम्भ वध 7/23

इसी प्रकार अन्य सर्गों में भी उपमा का प्रयोग किया गया है।

इसका उदाहरण कन्नौज राजा को शुम्भ जीतता है, उस प्रसंग में है -

श्वेनो विहंग नकुलाभुजंग व्याघ्र कुरंग रथिकस्तुरगम।

आक्रम्प शुम्भो व्यग्रं चकार सक्रान्यकुब्जाधिपति ययेव।। 4/46

दशमें सर्ग में चण्ड वध में उपमा है। यहा देवी चण्ड का वध करती है : -

दत्त्वा पादं तस्य वक्षःप्रदेशे धृत्वा गाढं पाणिना मूर्धजेषु।

नालादब्जं वृन्तबन्धादिवाऽग्रं कण्ठाच्छीर्षं खड्गाघाताच्चकर्त।। 10/36

एकादश सर्ग मे रक्तबीज का रक्तपान जब काली करती हैं तो उपमा दर्शनीय है -

ये जाता मुखविवरेऽस्य रक्तपातात्तान् सर्वान्द दितितनयाश्चखाद काली।
भृंगीव स्फुटकुसुमे मरन्दबिन्दून् हंसीवाऽम्बुजविपिने मृणालखण्डम्।।11/42

(3) यमक

अर्थे सत्यर्थ भिन्नानां वर्णानां सा पुन. श्रुतिः। यमकम्। का0प्र0 83/116

अर्थात् - अर्थ होने पर (नियमेन) भिन्नार्थक वर्णों की उसी क्रम से (सा) पुन. श्रवण (पुनरावृत्ति) यमक (अलंकार) है। यथा -

छठें सर्ग में गंगा वर्णन के प्रसंग में यमक अलकार दर्शनीय है -

कलहं कलहंस पंडक्तय सलिले स्थातुमिह प्रकुर्वते।
उपयान्ति पयो न सारसं जलमस्या. परिहृत्य सारसा ।। 6/38

यहां पर "कलहं" पद और "सारस" पर दो बार आया है और दोनों का अर्थ भी अलग - अलग है। अत यहां यमक अलकार है। इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी यमक अलंकार है।

(4) रूपक

तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः। का0प्र0 92/138

अर्थात् उपमान और उपमेय का (जिनका भेद प्रसिद्ध है उनका सादृश्यातिशयवश) जो अभेद (वर्णन) है वह रूपक (अलकार) है।

छठें सर्ग में गंगा वर्णन के प्रसंग में रूपक अलंकार मनोहर है -

अवतीर्य कपर्दकन्दरे सुरसिन्धुस्त्रिपुरान्तकारिण । 6/2।

साप्यनन्तभुवनैकनायिका किञ्चिदुल्लसितवक्त्रपङ्कजा।। 9/19

प्रथम सर्ग में भी रूपक है।

नेत्रोत्पलानां चिरसन्निधानादात्यन्तिकीं कोमलतामुपेत ।

संसारतापं शमयेदशेषं शशांकमौले: करूणाकटाक्ष ।। 1/2।

यहां कंदर्पकन्दरे, "वक्त्रपंकजा" तथा "नेत्रोत्पलाना" और "करूणाकटाक्ष में रूपक अलंकार है। इसी प्रकार अनाज स्थलो पर भी है।

(5) **श्लेष**

वाच्यभेदेन भिन्ना यद् युगपद्भाषणस्पृश ।

श्लिष्यन्ति शब्दा श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा.।। का0प्र0 84/118

अर्थात् अर्थ का भेद होने पर ("प्रत्यर्थं शब्दा: भिद्यन्ते" इस सिद्धान्तानुसार या सकृत्प्रयुक्त शब्द: सकृदेव अर्थंगमयति"। इस सिद्धान्तानुसार भिन्न-भिन्न शब्दों के बोधक समानाकार भिन्न-भिन्न शब्द (समानानुपूर्वीक्त - समानाकार होने से) एक साथ उच्चारण (रूप दोष घटित सामग्री) के कारण (जतुकाष्ठन्याय से) जब (परस्पर) मिल (कर एक हो) जाते हैं तब वह श्लेष (रूप शब्दालंकार) होता है और अक्षरादि (के श्लेष)

के भेद से आठ प्रकार का होता है ।

प्रथम सर्ग में महाकाव्य में नामकरण करते समय श्लेष अलंकार स्पष्ट है–

माहेश्वर काव्यपथप्रवृत्त. पुत्रीकृत स्नेहवशात् मवान्या।
निर्मोति शर्मप्रदमा द्रुतानां काव्यं नवं शुम्भवधं वसन्त· ।। शु0क0 1/3।

यहां "माहेश्वर" और "वसन्त " मे श्लेष अलकार है।

(6) **उत्प्रेक्षालंकार**

सम्भावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत्।। का0प्र0 92/136

अर्थात्

प्रकृत (अर्थात् वर्ण्य उपमेय) की सम (अर्थात् उपमान) के साथ सम्भावना (अर्थात् उत्कटैककोटिक सन्देह) उत्प्रेक्षा (कहलाती) है।

प्रथम सर्ग में समुद्र मन्थन के प्रसंग में उत्प्रेक्षालंकार दृष्टिगोचर होता है · -

निर्मथ्यमानस्य महार्णवसय सफेनपुञ्जा पयसां प्रवाहा ।
समुत्पतन्तः स्फुटपुण्डरीकामाकाशगंगामपरां वितेनु·।। शु0व0 1/15

समुत्थितैर्निर्मथनप्रसङ्गे पयोनिधेरम्बुकणै. समन्तात्।।
आच्छादितं विष्णुप्रदं दिवाऽपि निरन्तरं तारकितं वभूवः ।। शु0व0 1/96

द्वितीय सर्ग में ग्रामीण चित्रण मे उत्प्रेक्षालंकार आकर्षक है : -

तापं विहन्तुमधिकं शरदातपस्य

च्छायामुपध्नसहकारतरो प्रपन्ना ।

व्याधुन्वतीष्विव शिरांसि मुहुः प्रमोदा-

दुच्चैजगुः कलपपंक्तिषुशालिगोप्यः।। शु0ब0 2/23

इसी सर्ग में शरद वर्णन में वायु बहती है तो कवि उत्प्रेक्षा मे उसे व्यक्त करता है -

सम्पादयन् परिमलं मालतीनां

गृहणन् प्रफुल्लविषमच्छदपुष्पगन्धम्।

आमोदमम्बुजकदम्बभवं विवृण्वन्

मन्दानिलो भुविकुरंग रथश्चचार।। शु0ब0 2/26

तृतीय सर्ग में नगर की स्त्रियाँशुम्भ को देखती है तो मानो नेत्रों से कमलों की वर्षा करती है -

निर्गात्यारिमन् पत्तनात् पौरनार्यो मध्येमार्गं सौधवातायनस्था ।

कर्णाभ्यर्णस्पर्शिनेत्रा कटाक्षैश्चक्रुर्धारावृष्टिमिन्दीवराणाम्।।

चतुर्थ सर्ग में प्रात कालीन उषाकाल का वर्णन उत्प्रेक्षा में है -

पूर्वाद्रिकूटात् क्षणदावसाने समागतश्चण्डरुचि करेण।

चराचराणां निहितं शरीरे तमोमयं कम्बलमुद्धार।। 4/3

इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी प्रयुक्त है।

(7) **अर्थान्तरन्यास**

यह गम्य ओपम्याश्रित सादृश्य मूलक अलकार है। कवि का यह अलकार भी सर्वप्रिय है जिसका लक्षण निम्न है -

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यास साधर्म्येणेतरेणवा।। का0प्र0 109/164

अर्थात्

सामान्य अथवा विशेष का उससे भिन्न (अर्थात् सामान्य का विशेष के द्वारा या विशेष का सामान्य) के द्वारा जो समर्थन किया जाता है, वह अर्थान्तरन्यास (अलंकार) साधर्म्य तथा वैधर्म्य से (दो प्रकार का) होता है। जैसे -

प्रथम सर्ग में अमृत-पान के प्रसंग दैत्यों को ठगे जाने के प्रसग अर्थातरन्यास दर्शनीय है।

स्नात्वा भवन्तो द्रुतमाव्रजन्तु पातुं सुधामित्यसुरान् विमोह्य।
सुधाऽपि तैरेव मिथो निपीता प्रवञ्जना कुत्र न सिद्धमेति।। शु0ब0 1/22

स्नातानुलिप्ता असुरा उपेत्य रिक्तां सुधाया. कलशीमपश्यन्।
जागर्ति लोके भणिति. प्रसिद्धा विलम्बिनां केवलमस्थिलाभ।। शु0ब0 1/23

द्वितीय सर्ग में शुम्भ सेना की तैयारी करता है, उसमे भी अर्थान्तरन्यास दृष्टिगत है : -

देत्याधिपौरचमितुं ध्वजिनीं प्रसक्तौ।

नाऽभीप्सितेषु मतिभान् सहते विलम्बम्।। शु0ब0 2/।।

तृतीय सर्ग में सायं वर्णन में अर्थान्तरन्यास दृष्टिगोचर होता है -

लीनंप्रात· क्ष्माधराणां गुहासुध्वान्तं सायं व्यानशे दिङ्मुखानि।

प्राबल्यं वा दुर्बलत्वं जनानां दृष्टं लोके केवलं कालयोगात्।। शु0ब0 3/53

सप्तम् सर्ग ने देवदूत शुम्भ को सन्देष देकर शान्त हो जाता है जो अर्थान्तरन्यास मे व्यक्त है -

।ı।ʼ।शङ्ख्रमभिधाय तदेव देशिक· स विरराम सुराणाम्।

सारमेव वचनं रचयन्तो वाग्मिनो नहि वृथा प्रलपन्ति।। शु0ब0 7/15

इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी अर्थान्तरन्यास है।

(8) **समासोक्ति -**

परोक्तिर्भेदके श्लिष्टे समासोक्ति·।का0प्र0 97/147

अर्थात् (परोक्ति· अर्थात) श्लेष युक्त (भेदक अर्थात्) विशेषणो द्वारा (पर अर्थात्) अप्रकृत (के व्यवहार) का कथन "समासेन संक्षेपेण उक्ति·" (दो अर्थों का संक्षेप से कथन होने के कारण) समासोक्ति (अलंकार) कहलाता है। यथा -

लब्ध्वा तव बाहु स्पर्शमस्याः स कोटपुल्लास·।

जयलक्ष्मी स्तव विग्रहे न खलूज्जवला दुर्बलाननुसा।। का0प्र0 10/435

इसी प्रकार शुम्भ वध महाकाव्य के दूसरे सर्ग मे शरद ऋतु के

वर्णन में समासोक्ति अलंकार मिलता है।

आस्थाय मानसजलेषु सुखं निवासं

वर्षादिनेषु सकलेष्वपि राजहंसा ।

आपृच्छ्यसाश्रुनयना निजबन्धुवर्गं

स्वं-स्वं जलाशय पदं पुनराश्रयन्ता। शु0ब0 2/22

यहां पर राजहंस पक्ष और नायक-नायिका का पक्ष का वर्णन होने से समासोक्ति अलंकार है।

इसी प्रकार द्वितीय सर्ग में शरद् ऋतु के प्रसंग मे समासोक्ति है -

उच्छृखलाश्च रजसा मलिनास्तटिन्यो

मेघागमे तनुतामभवन्नसेव्या ।

ता एव लुप्तकलुषा विगतोद्धतत्वाद्

हंसा नराश्च मुनयश्च समाश्रयन्ता।। शु0ब0 2/30

यहां पर भी हंस, नर और मुनि की ओर का तीन-तीन अर्थ निकलने से समासोक्ति अलंकार है।

"कारण्डवा कलककले क्वणितैर्मराला

गुञ्जारवैर्मधुकरा विरूते. शुकाश्च।

उत्खातवप्रवलया वृषभा नदन्तो

व्यातेनिरे जयरवं शरदागमस्य।।" 2/29

यहां पर शरव् ऋतु पक्ष और शरद् रूपी नायिका दो पक्ष हो सक्ता है।

इसी प्रकार अन्य सथलों पर भी समासोक्ति है।

(9) परिकर

विशेषणैर्यत्साकूतैरुक्ति: परिकरस्तु स.। का0प्र0 ।।8/183

अर्थात् अभिप्राययुक्त (साकूत) विशेषणों के द्वारा जो (किसी बात का) कथन करना है, वह परिकर (अलंकार कहलाता) है। जैसे -

प्रथम सर्ग से ही परिकर अलंकार प्राप्त होता है। यहां शुक्राचार्य के विशेषण का वर्णन होने से परिकर देखने योग्य है . -

दुर्वांकुरैराम्रदलानुविद्धै सुवर्णकुम्भस्खलिते पयोभि.।
सिञ्चन् महर्षि स तदुत्तमाङ्गे वेदोदितं स्वस्त्ययनं चकार।। शु0ब0 ।/60

यहां "दुर्वांकुरै" "आम्रदलानुविद्धै." सुवर्णकुम्भस्खलिते " इत्यादि "पयोभि " के विशेषण हैं जो साकूत कथित है। अत यहां पर परिकर अलंकार वैसे यहां पर अनुप्रास भी है परन्तु विशेषण के होने से एक नया चमत्कार आ जाता है, अन्य भी जैसे - शुक्राचार्य के व्यक्तित्व में परिकर पोषित है · -

इत्यादराव् दैत्यवरानुयुक्त. करान्तरे सन्दधदक्षमालाम्।
भस्मानुलिप्त स्मयमानवक्त्र: सञ्जीवनी मन्त्रनिधिर्जगाद।।शु0ब0 ।/४

पंचम सर्ग मे नागों का वर्णन परिकर अलंकार में है -

देवासुरार्चित पदाम्बुजन्मन सेवापरा भगवत· पिनाकिन ।

ये वासुकि प्रभृतयः भुजंगमास्ते वासमत्र रचयन्ति निर्भया.।। शु0ब0 5/12

सप्तम् सर्ग में शुम्भ क्रोधित होता है तो कैसा उसका चेहरा हो जाता है -

शुम्भस्तत प्रकुपित. स्फुरिताधरोष्ठो बन्धूकबन्धुनयन. परिकुञ्चिताग्रभ्रू ।।

मध्येसभं दितिसुतान्मिलितान्समस्तान्

सम्बोध्य सम्भ्रमपरो गिरिमुज्जगार।। शु0ब0 7/38

छठें सर्ग में बहने वाली वायु का विशेषण है अत परिकर है · -

स्फुटपुष्प सुगन्धबन्धुरा दलदम्भोजमरन्दमेदुर ।

सुरसिन्धुतरंगशीतल· पवनो वाति वनेषु पावन ।। शु0ब0 6/42

इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी है।

(10) **तद्गुण अलंकार**

स्वमुत्सृज्य गुणं योगादत्युज्जवलगुणस्ययत्।

वस्तु तद्गुणतामेति भण्यते स तु तद्गुणः ।। का0प्र0 137/203

अर्थात् जब न्यून गुणवाली (प्रस्तुत वस्तु) अत्यन्त उत्कृष्ट गुण वाली (अप्रस्तुत वस्तु) के सम्बन्ध से अपने स्वरूप (गुण) को

छोड़कर (अप्रस्तुत वस्तु) के रूप को प्राप्त हो जाती है, उसको तद्गुण (नामक अलंकार) कहते हैं।

अर्थात् -

'तद्गुणः स्वगुणत्यागादन्योत्कृष्टगुणग्रहः'

जैसे - प्रथम सर्ग में समुद्र मंथन के प्रसंग में तद्गुण का उदाहरण मिलता है -

समुत्थितैर्निर्मथनप्रसङ्गे पयोनिधेरम्बुकणैः समन्तात्।

आच्छादितं विष्णुं दिवाऽपि निरन्तरं तारकितं बभूव।। शु0ब0 2/26

तृतीय सर्ग में भी भैसों का वर्षा के बादलों से साम्य स्थापित होने से तन्मूल है -

गोणीः पृष्ठे धारयन्तो महोक्षा घण्टानादन्यस्तपादाः प्रचेलुः ।

आर्द्रा दृत्या कासरा भासमाना प्रापुः साम्यं प्रावृषेण्याम्बुदानाम्।। शु0ब0 3/14

(11) विशेषोक्ति अलंकार

विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः का श्री 8/163

अर्थात् सम्पूर्ण कारणों के होने पर फल का कथन न करना विशेषोक्ति (अलंकार) है जैसे -

तृतीय सर्ग में रात्रि वर्णन में वर्षा न होने पर भी नदिया (चांदनी रूप) जल से भरी हैं अतः विशेषोक्ति है -

चन्द्रस्पर्शाच्चन्द्रकान्तैर्द्रवीभि: शीता स्वच्छा निर्झरा सृज्यमाना ।

वर्षाकाले प्राग्व्यतीतेऽपि भूयो नद्या वृद्धिं सद्य एव प्रणिन्यु । शु0ब0 3/63

यहां पर वर्षा काल बीत जाने पर भी नदिया तुरन्त की बढ रही हैं। अतः विशेषोक्ति अलंकार है।

(12) **विभावना - "क्रियाया: प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना"** का0प्र0 108/162

अर्थात् कारण का प्रतिषेध होने पर भी फल का कथन (व्यक्ति वचन, प्रकाशन) किया जाना विभावना (अलकार) है। महाकाव्य के दूसरे सर्ग में शरद् ऋतु के प्रकरण में विभावना अलकार है, जैसे -

शक्रायुधं न ददृशे, न घने बलाका,

नाऽभूषयन् सरसशाद्वलमिन्द्रगोपा: ।

सस्यैर्नवैर्वसुमती, नलिनैस्तडागा:।

शीतांशुना च रजनी रुरुचेतथाऽपि।। शु0ब0 2/28

यहां पर आकाश में न इन्द्रायुध और न ही बगुलिया दिखायी देती है और न इन्द्र गोप ही है। फिर भी रात्रि भी सुशोभित है। यहां पर पूरा तो नहीं फिर भी विभावना का लक्षण घटित होता है।

(13) **काव्यलिंग अलंकार-"काव्यलिंग हेतोर्वाक्यपदार्थता -"** का0प्र0 114/173

अर्थात् हेतु का वाक्यार्थ या पदार्थ (एक पदार्थ अथवा अनेक पदार्थ) रूप में कथन करना काव्यलिंग (अलंकार) होता है।

अर्थान्तरन्यास और काव्यलिंग अलंकार (में समानता) - दोनों में ही अन्य अर्थ प्रस्तुत अर्थ का समर्थक होता है।

(भेद) -

1. काव्यलिंग में दोनों अर्थ परस्पर सापेक्ष होते हैं, एक के बिना दूसरे का अर्थ नहीं समझा जा सकता है। किन्तु अर्थान्तरन्यास में दोनों अर्थ निरपेक्ष होते हैं, प्रत्येक अर्थ अपने मे पूर्ण होते हैं।

(2) काव्यलिंग में कार्य कारण का समर्थन होता है तो अर्थान्तरन्यास में सामान्य विशेष का समर्थन होता है।

प्रथम सर्ग में उपदेश प्रकरण में काव्यलिंग द्रष्टव्य है · -

उदाहरण

जगत्त्रयं बाहुबलेन जित्वा साम्राज्यमव्याहतमाश्रयन्त ।

यत्पूर्विनाशं दनुजायदत्र हेतुर्विलोपोऽजनि मन्त्रशक्ते ।। शु0ब0 1/36

यहां पर आचार्य शुक्र शुम्भ-निशुभ को राजनीति का उपदेश देते हैं। यहां कार्य कारण का कथन होने से हेतु अर्थ में काव्यलिंग अलंकार है।

ढक्कारावो बृंहितं तूर्यनादो हेषा घण्टाझंकृतिर्हिङ्कृतानि।

व्याप्याऽऽकाशं तस्य लब्ध्वा गुणत्वं चक्रुस्तथ्यां गोतमोक्तिंदानीम्।। शु0व0 3/10

यहां पर ढोल और तुरही आदि से आकाश झंकारयुक्त, शब्दायमान हो गया है जो कि गोतमोक्ति कि -"आकाश में शब्द है" को चरितार्थ कर रहा है। उसके गुणत्व को प्रकट कर रहा है, क्योंकि गौतम ने आकाश का गुण "शब्द" माना है। अत: कारण से कार्य का बोध होने से काव्य लिंग अलंकार है।

महाकाव्य के चतुर्थ सर्ग में काव्यलिंग अलंकार है, यहां निदर्शना भी है। अत संकर है : -

अथापरेद्युर्गगनावकाशे गतासु लोपं किल तारकासु।

प्राची दिशा हृष्णन्नृपावरोध कपोलपालिद्युतिमाबभार।। शु0व0 4/1

माभूद् विलम्बो विजय प्रसंगे जगत्रयस्येति हृदा विभाव्य।

यथोचितं नित्यविधिं समाप्य शुम्भ ससैन्य. पुरत. प्रतस्थे।। शु0 4/5

(14) **विरोधाभास**

विरोध: सोऽविरोधेऽपि विरूद्धत्वेन यद्वचः।। का0प्र0 10/166

अर्थात् जहां विरोध न होने पर भी (दो वस्तुओं का) विरूद्धों के समान वर्णन किया जाता है। विरोध या विरोधाभास (अलंकार) है -

वस्तुवृत्तेनाविरोधेऽपि विरूद्धयोरिव यदभिधानं स विरोध:।

विरोधाभास दस प्रकार का होता है -

जातिश्चतुर्भिर्जात्याद्यैर्विरूद्धा स्याद् गुणस्त्रिभि । ।10

क्रिया द्वाभ्यामपि द्रव्यं द्रव्येणैवेति ते दश।। का0प्र0 ।10-11/166

जाति का जाति आदि (गुण, क्रिया, द्रव्य) चारों से विरूद्ध होना, गुण आदि (गुण, क्रिया, द्रव्य) तीन के साथ, क्रिया का (क्रिया तथा कल्प) दो के साथ और द्रव्य के द्रव्य का विरोध ये दस प्रकार का विरोध होता है ।

उदाहरण

शुम्भवध महाकाव्य में तृतीय सर्ग में शुम्भ जेत पात्रा को प्रस्थान करता है तो नगर कीस्त्रियां खिड़कियों से देखती हैं . -

निर्यात्यस्मिन् पत्तनात् पौरनार्यो: मध्येभार्गं सौधबातायनस्था:।

कर्णाभ्यर्णस्पर्शिनेत्रा: कटाक्षेश्चक्रूधारांवृष्टिमिन्दीवराणाम्।। शु0ब0 3/3

यहां पर पौर नारियाँ नेत्रों से कमलों की धारा की वर्षा करती हैं तभी यहां विरोध है कि स्त्रियां कमलों की वर्षा नहीं कर सकती परिहार - कटाक्ष दृष्टि से कमल के समान नेत्र वाली स्त्रिया कटाक्ष कर रही हैं तो कवि को कमल की वर्षा लग रही है। यहां जाति के साथ जाति के विरोध का उदाहरण है।

तृतीय सर्ग में रात्रि वर्णन के प्रसंग में विरोधाभास का अच्छा उदाहरण है : -

आचामन्तश्चन्द्रिकाम्भश्चकोराश्चञ्चच्चञ्चूकोटिमापूरयन्त.।
पारम्पर्यप्राप्तनक्तव्रतस्य स्वादुद्गार पारणामारमन्त।।शु0ब0 3/64

यहां चांदनी के जल से चकोर पारणा करने लगे। यहा चन्द्रिका में जल नहीं होता, विरोध फिर भी चांद और चकोर प्रसिद्ध हैं। अत यहां गुणो का क्रिया के साथ विरोध होने से विरोधाभास अलकार है।

(15) **व्याजोक्ति अलंकार**

व्याजोक्तिश्छद्मनोद्भिन्नवस्तुनिगूहनम्।। का0प्र0 ।18/184

अर्थात् -

जहां स्पष्ट रूप से प्रकट हुए वस्तु स्वरूप का कपट से छिपाने का वर्णन किया जाय वहां व्याजोक्ति (अलकार) होता है।

तृतीय सर्ग में शुम्भ द्वारपडाव डालने पर वहां का वर्णन व्याजोक्ति में है -

उद्ग्रीवा जज्ञिरे कैरविण्य. प्रत्यावृत्तं प्रेक्षितुं कान्तमिन्दुम्।
अन्त शल्यं संगुतं विप्रयोगात्तासां भृगच्छद्मना निर्जगाम।। शु0ब0 3/62

यहां सिर ऊपर किये हुए भ्रमरियां चन्द्रमा को देखने लगीं

सभी उनके इस विशेष कार्य से हृदय की बात (संगत) (गर्दन के कारण) भौरे के बहाने से निकल गयी। यहां पर "भौरे के" बहाने से निकलना ही व्याजोक्ति अलंकार है।

(16) **अप्रस्तुत प्रशंसा - अप्रस्तुत प्रशंसा या सा सैव प्रस्तुताश्रया**
का0प्र0 98/151

अर्थात जो अप्रकृत वस्तु का वर्णन (प्रशंसा) प्रकृत (वर्णनीय) वस्तु की प्रतीति का निमित्त (आश्रय) होता है, वहीं अप्रस्तुतप्रशसा नामक अलंकार है।

अर्थात् अप्रस्तुत (अप्राकरणिक) के कथन द्वारा प्रस्तुत विषय की प्रतीति कराना (आक्षेप) अप्रस्तुत प्रशंसा है।

भेद - यह पांच प्रकार की होती है -

कार्ये निमित्ते सामान्ये विशेषे प्रस्तुते सति।

तदन्यस्य वचस्तुल्ये तुल्यश्येति च पञ्चधा।। क0प्र0 89/152

अर्थात (1) कार्य (2) निमित्त (3) सामान्य (4) विशेष के प्रस्तुत रहने पर उससे भिन्न (कारण, कार्य और सामान्य) का तथा (5) तुल्य वस्तु के रहने पर उसके समान (अप्रस्तुत) का कथन। जैसे -

सुहृद्वधूवाष्प जलप्रमार्जनं करोति वैरप्रतियातनेन य:।।

स एव पूज्य स पुमान् स नीतिमान् सुजीवितं तस्य भाजनं श्रिय ।। का0प्र0 442

यहां पर नरकासुर के बध के बाद शाल्य के प्रति मंत्री की उक्ति है। यहां कृष्ण को मारकर जो नरकासुर की नारियों के शोक को शान्त कर सके वही प्रशंसनीय है। अतः विशेष के प्रस्तुत होने पर सामान्य का कथन है। अतः सामान्य वर्णना रूप अप्रस्तुत प्रशंसा है।

इसी प्रकार शुम्भ वध के प्रथम सर्ग में शुक्राचार्य का उपदेश अप्रस्तुत रूप में वर्णित है : -

अतिक्रमे पार्थिवनीतिहीनं पदं परं पर पैतृकमाश्रयन्तम्।
स्तम्बेरं हीन बलं वशेव क्षमाश्रुतं तं विजहाति लक्ष्मी.।। शु0व0 1/40
तन्वन्नुपायाश्चतुरो यथावन्निवर्तयेद यो व्यवहारजातम्।
स्वाभाविकीं चञ्चलतामपास्य तस्मिंश्चिरं राजतिराजलक्ष्मी·।। शु0व0 1/41

यहां पर भी सामान्य वर्णना रूप अप्रस्तुत प्रशंसा है।

सातवें सर्ग में निनदारूप अप्रस्तुत प्रशंसा है -

त्वादृशां जडधियो मुखत्वादात्मन· परिवृढं लघयन्ति।
याहि सत्वरमितो मम दूत· स्वामिनस्तव समीपमुपेति।। शु0व0 7/36

यहां पर निन्दा रूप अप्रस्तुत प्रशंसा है।

(17) **दृष्यान्त - दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बितम्।।** का0प्र0 102/155

अर्थात् जहां दार्ष्टान्तिक (वाक्यार्थ के) इन सब (साधारण धर्म आदि अर्थात उपमेय तथा उपमान) आदि का बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होता है। दृष्टान्त अलंकार होता है। जैसे -

त्वयि दृष्ट एव तस्या निर्वाति मनो मनोभवज्जवलितम्।
आलोके हि हिमांशोर्विकसति कुसुमं कुमुदवत्या·।। का0प्र0 455

यह समान धर्म का उदाहरण है।

प्रथम सर्ग में शुक्राचार्य का उपदेश दृष्टान्त अलंकार को व्यक्त करता है . -

अद्यान्न भोज्य व परीक्ष्य चिञ्चिन्न कामिनी व रभासादेपेयात्।
विषेण नाशं विषकन्या वा प्रत्यर्थिभूपैर्बाहवोऽविनीताः।। शु0ब0 1/47

यह भी समान धर्म से सम्बन्धित है। अत दृष्टान्तालंकार है। इसी प्रकार दैत्य सेना के द्वारा जैत्र यात्रा प्रसंग में दृष्टान्त है -

पश्चात्तस्य प्रोद्धत वाद्यघोषैर्यद्वा श्रेणिं देत्यचक्रं चचाल।

बेलादेशे यादृशं वायुवेगादम्भोराशेलोलिकल्लोल जालम् ।।

शु0ब0 3/9

इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी दृष्टान्त दृष्टव्य है।

(18) संसृष्टि अलंकार

सेष्टा संसृष्टि रेतेषां भेदेन यदिह स्थिति·।। का0प्र0 139/207

अर्थात जहां पर इन (उपरोक्त अर्थात् शब्दालंकार और अर्थालकार की) परस्पर निरपेक्ष से (भेदेन) एकत्र (इह) स्थिति होती है। वह संसृष्टि अलंकार है। इनमें दो अलंकारों की स्थिति होने पर ससृष्टि होती है।

जेसे -

लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभ.।

असत्पुरूषेवेव दृष्टिर्विफलतां गता।। का0प्र0 568

यहां पर उपमा और उत्प्रेक्षा की संसृष्टि है।

तृतीय सर्ग में स्वभावोक्ति, अनुप्रास, यमक का प्रयोग होने से संसृष्टि है · -

आजानेयाः सप्तयो दृप्तिमन्त. पृष्ठ्या रथ्या भूषणै र्भ्राजमाना.।।

शंसं शंसं साभिलाषं चिराय ग्राम्यैः प्रेक्षाञ्चक्रिरे कौतुकेन।। शु0ब0 3/25

यहां पर परिकर अलंकार और अनुप्रास (शंसंशंश) होने से संसृष्टि है।

यहां, अनुप्रास, उपमा और दृष्टान्त मिश्रण होने से ससृष्टि है -

लीनेषु हन्त विबुधेषु कानने लोपं ययौ जगति यज्ञ-पद्धति ।

यातेषु हंसनिवहेषु मानसं वर्षागमे कमलसंहतिर्यथा।।

यहाँ पर "षु" के बार-बार आने से अनुप्रास और यथा का प्रयोग होने से उपमालंकार की संसृष्टि है।

क्षत्रोचितं पौरूषाम वहन्तं रणे पराजित्यपतिं तदीयम्।

चिरार्जितां दैत्यपतिर्जहारश्रियं बलात्तस्य जयश्रियच

शु0ब0 4/15

यहां पर "यमक" और रूपक और समासोक्ति के मेल से संसृष्टि है।

(19) **संकर अलंकार**

अविश्रान्ति जुषामात्मन्यंगागित्वं तु संकरः।। का0षु0 140/208

अर्थात् - अपने स्वरूप में निरपेक्ष भाव से पर्यवसित न होने वाले उपर्युक्त अलंकारों का अंगागि (उपकारक अथवा अनुग्राहक और अनुग्राह्य) रूप से स्थिति संकर अलंकार है। अर्थात् जहां पर कई अलंकारो का मिश्रण हो जाय वहां संकर अलंकार होता है। दूसरे सर्ग मे शरद् ऋतु में वर्णन में समासोक्ति तुल्योगिता श्लेष का संकर अलंकार है।

जेसे . -

उच्चछृंखलाश्च रजसा मलिनास्त्तटिन्यो

मेघागमे तनुमतामभवन्नसेव्या·।

ता एव लुप्तकलुषाविगतोद्धतत्वाद्

हंसा नराश्चमुनयश्चा समाश्रयन्त।।

शु0ब0 2/30

यहां पर, तुल्योगिता, समासोक्ति और श्लेष अलकार होने से संकर अलंकार है।

तृतीय सर्ग में अनुप्रास और यमक का प्रयोग होने से संकर है।

कृत्वा पक्षस्योपधानं प्रसुप्ता हित्वा क्रीडां सारसा सारसेषु।

लीनामीनाहार कार्यान्निवृत्तास्तीरप्रान्ते शैवलान्ते बलाका ।। शु0ब0 3/56

यहां, अनुप्रास, (सारसाः सारसेषु में) यमक, स्वाभाविक वर्णन होने से स्वभावोक्ति है। अत तीनों का संकर अलंकार है।

(20) **विनोक्ति अलंकार**

विनोक्तिः सा विनांगन्येन यत्रान्यः सन्न नेतर·।। का0प्र0 ।।3/17

अर्थात् जहां एक (अन्य) के बिना दूसरा न तो शोभुन (सत्) और न ही अशोभन (इतर) प्रतीत होता है वहां विनोक्ति अलंकार होता है, जेसे . -

आठवें सर्ग मे बसन्त ऋतु के प्रसंग में विनोक्ति अलंकार का सुन्दर उदाहरण है : -

अभूदशोको नवपल्लवाञ्चितो नितम्बिनीनां चरणाहतिं विना।

विनाऽवसेकं बकुलोऽपि सन्दधे स्फुरत्सुगन्धं मुकुलोभदमनवम्।।

शु0 ब0 8/17

यहां पर शोभनता का उदाहरण है ' -

बिना कलंक न विभाति चन्द्रमा न षट्पदेनाऽपि बिना महोत्पलम्।

खलं बिना न क्षितिरक्षितुः सभा वसन्तकालो न वियोगिनां विना।। शु0ब0 8/29

यह अशोभनता का उदाहरण है।

विना वसन्तं तुहिनांशुना विना वृथा भवेत्पञ्चशरस्य पौरूषम्2

समृद्धकोशेन विना, विना बलं जगज्जिगीषो पृथिवीपतेरिव।। शु0ब0 8/31

यहां पर अशोभनता का उदाहरण है।

21) **विशेष अलंकार**

विना प्रसिद्धमाधारमाधेयस्य व्यवस्थितिः।

एकात्मा युगपद्वृत्तिरेकस्यानेकगोचरा।। का0प्र0 135/202

अन्यत्प्रकुर्वतः कार्यमशक्यस्यान्यवस्तुन ।

तथैव कारणं चेति विशेषस्त्रिविधः स्मृतः।। 136/202

अर्थात् -

1. प्रसिद्धि के आधार के बिना आधेय की स्थिति का वर्णन होने पर।

2. एक पदार्थ की एक ही रूप से अनेक जगह एक साथ उपस्थित होने पर।

3. अन्य कार्य को करते हुए उसी प्रकार से अथवा अनायास किसी अशक्य वस्तु का उत्पादन वर्णित होने पर। इस प्रकार तीन प्रकार का विशेषालंकार होता है।

चौदहवें सर्ग में देवी जगदम्बा के गुणों का विशेष रूप से वर्णन होने से विशेषालंकार द्रष्टव्य है : -

इस प्रकार विशेषोणोक्तिः कथन वा विशेष ।

मातर्जगत्सृजसि पद्मभवस्वरूपा नारायणात्मकतया परिपासि नित्यम्।

सद्यो विनाशयसि रूद्रतनु प्रपन्ना, जानातु कस्त्वं विभुत्वमचिन्त्यरूपम्।।
शु0ब0 14/2

यहां पर माता जगदम्बा के गुणों का वर्णन होने से विशेषालंकार है -

शक्तिस्त्वमेव गिरिजे गिरिशं श्रयन्ता गचछेत् त्वयाविरहित स विचेतनत्वम्।

कि नाम तत्र जगदीश्वरिशिष्यमाणं वेश्वानरं यदि जहाति हि दाहशक्ति ।।
शु0ब0 14/4

शस्त्राणि देवि एकलानि तव स्वरूपं ज्ञातु यथार्थमनुपान्ति न शक्नुवन्ति।

हंसादयो गगनमण्उल मुत्पतन्तो बोद्धुं कि मस्य परिगाहमितिक्षमा. स्वु ।।
शु0ब0 14/24

रविवंशभवो भगीरथ. कठिनं यत्र चिरं तपश्चरन्।

अवतीर्य नहीं दिवौक सामधिश्रृंग वसुधामपीपवत्।। शु0ब0 6/18

यहां हिमालय पर्वत की विशेषता बतलायी जा रही है। अत विशेष अलंकार है। इसी तरह अन्यत्र भी है।

(21) **उदात्तालकार -**

उदात्तवस्तुन· सम्पत्। का0प्र0 115/175-176

अर्थात् - वस्तुसमृद्धि का वर्णन उदात्त (अलंकार) है। जैसे - शुम्भवध के छठें सर्ग में हिमालय वर्णन मे उदात्त है अलंकार है -

इह पर्णकुटीसु तापसा· निवसन्त· कृतवन्यवृत्तष ।
तरूवल्कलकल्पितां शुका नृपतीनां विहसन्ति वैभवम्।। शु0व0 6/15

करिण: परिणाहि विग्रहामधुपच्छन्नकटा स्रवन्मदा।
विचरन्त इह प्रकुर्वते चलदम्बोधर विभ्रमं नगे।। शु0व0 6/22

तपरीश्य जनान् गृहागतानिह कृष्णाजिनभाजि विष्टरे।
रचयन्ति फले पचेलिमैर्मुहुरातिश्य विधिं वनेचरा·।। शु0व0 6/29

यहां पर हिमालय पर्वत के वैभेव का वर्णन होने से उदात्तालकार है -

(22) तुल्योगिता - नियतानां सकृद्धर्म: सा पुनस्तुल्योगिता।। का0प्र0 104/157

अर्थात् नियत (केवल प्रकृत या अप्रकृत अर्थों का एक धर्म के साथ सम्बन्ध होने पर तुल्योगिता (अलंकार) होता है। शुम्भ वध के

छठे सर्ग के में हिमालय वर्णन में तुल्योगिता का उदाहरण है . -

जैसे -

इह वासमतीसमाह्वयो जनिता विश्रुतरूपसौरभा ।।

उपयोगमतन्ति भोजने नृपतीनामपि राजशालय ।। शु0ब0 6/28

(23) **स्मरण अलंकार**

यथाऽनुभवमर्थस्य दृष्टे तत्सदृशे स्मृतिः - स्मरणम्।।

का0प्र0 132/199

अर्थात् स्मरण अलंकार वह हे जहां उस (अंशुभूत) के समान किसी वस्तु के उपलब्ध होने पर पूर्वाऽनुभूत प्रकार से उस वस्तु की स्मृति की वर्णना होती है। जैसे -

चतुर्थ सर्ग में गणों के राजा से युद्ध के प्रसंग मे स्मरण अलंकार है -

झणत्कृतिगर्जित भरत्रजन्या क्षणप्रभा स्पोट भव. कृशानु ।

असंस्मरत् पांशुचयोऽम्बुवाहं धारा जलानां रूधिरस्य वृष्टिः।।

यहां पर युद्ध में अस्त्रों की झनझनाहट और गर्जना से उत्पन्न चमक से अग्नि निकलने से उड़ती हुई धूल लाल लग रही है। तो उस समय यह स्मरण हो आया कि जल बरसाने वाले बादल अग्नि की वर्षा करते हों। अत. यहां स्मरण अलंकार है।

(24) भ्रान्तिमान - भ्रान्तिमानन्यसंवित तत्ततुल्यदर्शने। का0प्र0 ।32/200।

अर्थात जहां उस (प्रस्तुत) के तुल्य (अप्रस्तुत) का दर्शन होने पर अन्य अर्थात अप्रस्तुत की प्रतीति (वर्णन) होती है वहा भ्रान्तिमान अलंकार होता है जेसे -

छठें सर्ग में हिमालय वर्णन में भ्रान्तिमान अलकार है -

ज्वलिता यस्य निर्भर शिखरेठवोषय सहस्तृश ।

जनयन्ति नितम्बवासिनां नियतं दीपमहोत्सव भ्रमम्।। शु0ब0 6/29

यहां दीप महोत्सव का भ्रम हो जाने से भ्रान्तिमान है।

(25) स्वभावोक्ति

स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादे· स्वक्रियारूपवर्णनम्। का0प्र0 ।।।/168

अर्थात् जहां बालक आदि पदार्थों की स्व-आश्रित क्रिया तथा रूप आदि का वर्णन हो, स्वभावोक्ति अलंकार होता है। जेसे -

तृतीय सर्ग में जैत्र यात्रा प्रसंग में स्वभावोक्ति दृष्टिगोचर होती है · -

जग्मुर्मार्गे मन्थरं वारणेन्द्रा मुक्त्वा रश्मिं सादिनो वल्गितेन।

सङक्रीडद्भि:स्यन्दनाङगै:श्तांगा हर्षोत्फुल्लवृत्तय.पत्तयोऽपि।। शु0ब0 3/।।

यहां सेनिकों के प्रसन्नतापूर्वक प्रस्थान का स्वाभाविक चित्रण होने से स्वाभावोक्ति अलंकार है।

यात्राकाले मन्थरं सञ्चरन्त· शैलोतुङ्गा.सिन्धुराबन्धुराङ्गा।

दानाम्भोभि. सन्ततं प्रसवद्भिः भूय· पङ्किलानडयन्त। शु0ब0 3/13

ऊंट का चिह्न सवभावोक्ति में है

वक्रग्रीवो लम्बमानधरोष्ठः प्रोद्यत्पृष्ठो ह्रस्वकर्णो महाङ्गा

पादक्षेपे कुत्सिते ढौकमानो ग्रामीणानां हासयाभासबालान्। शु0ब0 1/24

(26) **निदर्शना अलंकार**

शुम्भ वध में कुछ श्लोक निदर्शना के प्राप्त होते हैं -

निदर्शना अर्थवन् वस्तु सम्बन्ध उपमा परिकल्पक ।।

का0प्र0 97/149

अर्थात् जहां पदार्थों का वाक्यार्थों (वस्तु) का अनुपपद्यमान (अभवन् असम्भवन्, उपयुक्त न होता हुआ) सम्बन्ध उपमा की कल्पना (आक्षेप) कर लेता है। वह निदर्शना अलंकार है -

निदर्शनं दृष्टान्तकरणम्

क्व सूर्य प्रभवो वंश क्व चाल्पविषया मतिः।

सितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनाऽस्मि सागरम्।। रघु0 1/2

यहाँ वाक्यार्थ निदर्शना है - पदार्थ निर्शना जैसे चतुर्थ सर्ग में प्रात सन्ध्या के वर्णन में निदर्शना दिखायी देते हैं : -

अर्थाऽपरेद्युर्गगनाऽवकाशे गतासु लोप किलतारकासु।

प्राची दिशा हूंणनृपावरोध कपोलपालिद्युतिमावभार।। शु0ब04/।

प्राच्यां स्फुरद्दाडिगवल्लिकायां पूर्वांचलस्थाणुमुपाश्रितायाम्।

अनुरूपुष्पं प्रथमं पुरस्तात् फलं नवं भास्कर बिम्ब आसीत्।। शु0ब0 4/2।

शुम्भ वध में मुख्यत उपरोक्त अलंकारो का प्रयोग है।

xxx

छन्द : परिचय

शुम्भवध महाकाव्यों मे कुछ मुख्यतः 17 छन्दों का प्रयोग हुआ है। जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है। जिसमें समस्त छन्द का उदाहरण शुम्भ वध से प्रस्तुत है।

1 **इन्दवज्रा** - स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौग. । वृत्तरत्नाकर 3130

अर्थात् जिस पद्य में प्रत्येक चरण में 11 वर्ण होते है तथा 2 तमण, 1 जगण, 2 गुरू वर्ण होते हैं, उन्हें इन्द्रवज्रा छन्द कहते है। जैसे -

उदहारण - माहेश्वरः काव्यपथप्रवृत्त. पुत्रीकृत स्नेहवशात् भवान्या।

निर्माति शर्मप्रदमादृतानां काव्यं नवं शुम्भवधं वसन्तः ।। शु0व0 ।।3

इस श्लोक में 2 तगण, 1 जगण, 2 गुरू वर्ण होने से इन्द्र वज्रा छन्द है। इसी तरह प्रथम सर्ग में 4, चतुर्थ में 13, त्रयोदशा में 5 श्लो इन्द्रवज्रा के हैं।

2 **उपेन्द्रवज्रा** - जतजास्ततो गौ ।। वृत्त0 3131 ।।

अर्थात जहाँ 1 जगण, 1 तगण, 1 जगण और दो गुरू वर्ण हों, उपेन्द्र वज्रा होता है।

उदाहरण - वनानि फुल्लस्थलपद्यभान्जि जलानि पंकेरुह सकुलानि।

पुराणि विद्वत्कविमण्डितानि सुरद्विषां विस्मयमत्र चक्रु. ।। शु.व. 4139 ।।

यहाँ पर 1 जगण, 1 तगण, 1 जगण और 2 गुरू वर्ण होने से उपेन्द्रवज्रा है। इसी तरह प्रथम सर्ग 15, चतुर्थ में 6, त्रयोदश में 5, चतुर्दश में 2 श्लोक उपेन्द्रवज्रा के हैं।

3 **उपजाति** - अनन्त रोदीरितलक्ष्म भाजौ, पादौ यदीयावुपजातयस्ता ।

इत्थं किलान्यास्वपि मिश्रितासु वदन्ति जातिष्विदमेवनाम ।। वृत्त0 3।32

अर्थात् किसी चरण में इन्द्रवज्रा और किसी चरण में उपेन्द्रवज्रा हो तो उसके मिश्रण को उपजाति कहते है। यह हसी आदि के भेद से 14 प्रकार का होता है। प्रथम सर्ग उपजाति छन्द रचित है सर्गान्त का श्लोक वसन्ततिलका है। ऋद्धि नामक भेद भेद के अतिरिक्त सभी भेदों के छन्द इसमें उद्घृत है। जैसे -

उदाहरण - पीयूषवर्षप्रवणं प्रसादे ज्वाला-जटालं क्वचिदुग्रतायाम् ।

भव्याय भव्याम्बुजकन्तिभूयात् पिनाकवाजेर्नयनत्रयं नः ।। शु0व0 1/1 ।।

यह श्लोक उपजाति के बाला (इ इ इ उ) भेद का उदाहरण है।

अथापरेद्युर्गगनावकाशे गतासु लोपं किलतारकासु ।

प्राचीदिशाहूणनृपावरोध कपोल पालिद्युतिमाबभार ।। शु0व0 4/1 ।।

यह श्लोक उपजाति के प्रेमा (उ उ इ उ) भेद का उदाहरण है। इसी तरह अन्य श्लोक पर भी है।

4 **वसन्त तिलका** - उक्ता वसन्ततिलका तभजाजगौगः ।। वृत्त0 3/78 ।।

अर्थात् जहाँ 1 तगण, 1 भगण, जगण और दो गुरू वर्ण हो वसन्ततिलका होता है।

उदाहरण - दूरीभवज्जलधरावरणेऽन्तरिक्षे, रम्यद्युतिर्हिमकरः सहतारिकाभि. ।

विभ्राजते स्म निहितो विमले मुक्ताफलैः सह यथा तरलोविशाल. ।।

शु0व0 2/16

यहाँ वसन्ततिलका छन्द है। प्रथम सर्ग में 1, दूसरे में 55, चतुर्थ में 1, पंचम 1, सातवे में 20, ग्यारहवे सर्ग में 3, द्वादश में 53 और चतुर्दश में 42 छन्द वसन्ततिलका के हैं।

5 **मन्दाक्रान्ता** - मन्दाक्रान्ताजलधिषडगैम्भौ नतौ तादगुरूचेत्।। वृ0 3/95 ।।

अर्थात् जहाँ प्रत्येक चरण में क्रम से मगण, भगण, नगण, 2 तगण, 2 गुरू वर्ण हों तो मन्दाक्रान्ता होता है। मन्दाक्रान्ता मे मात्र एक श्लोक द्वितीय सर्ग के अन्त में प्रयुक्त है।

उदाहरण - श्रुत्वा सज्जं सदनुजबलं दण्डयात्रां विधातुं

शुम्भं स्वस्थप्रणिधिवदनाद्राजलोकास्त्रिलोक्याम् ।

दृष्ट्वाकुम्भोद्भवमिव मुनिं सन्निकृष्ट समुद्रः

प्राप्नौतकम्पन ग्रहमण इव त्रस्तधीः सैंहिकेयम् ।। शु0व0 2/56 ।।

6 **शालिनी** - शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोऽब्धिलोकैः ।। वृ0 3/35 ।।

अर्थात जहाँ प्रत्येक चरण में । मगण, 2 तगण, 2 गुरू वर्ण हों, उसे शालिनी कहते हैं।

उदाहरण - निर्यात्यस्मिन्पत्तनात् पौरनार्यो मध्येमार्गं सौधवातायनस्था. ।

कर्णाभ्यर्णस्पर्शिनेत्राः कटाक्षैच्श्रकुर्धारावृष्टिमिन्दीवराणाम् ।। शु0व0 3/3 ।।

यहाँ शालिनी छन्द है। तृतीय सर्ग शालिनी मे है अत तृतीय सर्ग में 69 और दशम सर्ग में 44 छन्द हैं।

7. **शिखरिणी** - रसैः रूद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी ।। वृ0 3/91 ।।

अर्थात शिखरिणी छन्द में प्रत्येक चरण में यमण, मगण, नगण, सगण, भगण और दो गुरू वर्ण होते हैं।

उदाहरण - परिक्रम्याऽध्वानं गिरिसरिदरण्यैर्विषमितं

प्रसुप्तानां तेषां निशि पटकुटीरेषु शिविरे ।

वहन् मन्दं सप्तच्छदकुसुमगन्धेन सुभगः,

समीरो धीरोऽभून्नियतमसुरणां श्रमहरः ।। शु0व0 3/60 ।।

यह शिखरिणी छन्द का उदाहरण है। पूरे महाकाव्य मे मात्र एक यही श्लोक है।

8 **ललिता** - धीरैरभाणि ललिता तभौ जरौ ।। वृत्त0 3/59 ।।

अर्थात ललिता छन्द में तगण, भगण, जगण और रगण प्रत्येक छन्द में होता है। जैसे -

उदाहरण - फुल्ला विलासविपिनुषु मल्लिका गुन्जन्तिषट्पदकुलानिमंजुलम् ।

दृष्टाश्च पंकजवनेषु खंजना आनन्दयन् हि दितिनन्दनान्भृशम् ।।

।। शु0व0 5/5 ।।

यहाँ ललिता छन्द है। समस्त पंचम सर्ग ललिता सर्ग में निबद्ध है जिसमें 67 श्लोक हैं।

9. **सुन्दरी** - अयुजोर्यदि सौ जगौ युजोः सभराल्गायदि सुन्दरी तदा ।। वृ0 4/13 ।।

अर्थात जिस विषम छन्द के प्रथम और तृतीय चरण में 2 सगण, 1 जगण और 1 गुरू हों उसे सुन्दरी छन्द कहा जाता है। उदाहरण -

उदाहरण - कुहरेषु नदद्घनस्वना प्रसरन्ती नगराजनन्दिनी ।

इयमुच्चरवेण देहिनामभयं घोषयन्ती दृश्यते ।। शु0व0 6/40 ।।

यह सुन्दरी का उदाहरण है। सम्पूर्ण षष्ठ सर्ग सुन्दरी छन्द में है जिसमें 64 छन्द हैं। चतुर्दश सर्ग में भी 1 श्लोक है अतः कुल 65 श्लोक की महाकाव्य में रचना है।

10. **पुष्पिताग्रा** - अयुजिनयुगरेफतोयकारो, युजि च न जौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ।

।। वृ0 4/10 ।।

जहाँ विषम चरणों में क्रम से दो नगण, एक रगण, और एक यगण हों और सम (2, 4) चरणों में नगण, दो जगण, एक रगण और एक गुरू वर्ण हो वहाँ पुष्पिताग्रा छन्द होता है। जैसे -

उदाहरण- इतिसुरपतिभाषितं निशम्य प्रणत-जनोचितमद्रिराजकन्या ।

दनुजबलमुरीचकार हन्तुं वृकमिव शुम्भपुरः सरंन्नृशंसम् ।। शु0व0 6/65 ।।

यहाँ पुष्पिताग्रा छन्द है। षष्ठ में 1, त्रयोदश में 1, चजुर्दश में 1 श्लोक प्रयुक्त है।

11. **स्वागता** - स्वागतेति रनभाद्गुरुयुग्मम् ।। वृत्त0 3/40 ।।

अर्थात जिस पद्य के प्रत्येक चरण में रगण, नगण, भगण और दो गुरू हों, उसे स्वागता कहते है।

उदाहरण - यस्य नृत्यति चिरं रसनाग्रे नर्तकीव दुहिता द्रुहिणस्य ।

यस्य कण्ठकुहरे निवसन्ति स्वेच्छयेव हि चतुर्दशविद्याः ।। शु0व0 7/5 ।।

यह स्वागता का उदाहरण है। षष्ठ सर्ग से मात्र 37 श्लोक स्वागता छन्द के हैं।

12. **प्रहर्षिणी** - म्नौ ज्रौ गस्त्रिदशयतिः प्रहर्षिणीयम् ।। वृत्त0 3/70 ।।

अर्थात प्रहर्षिणी छन्द में मगण, नगण, जगण, रगण और गुरू हो, तथा 3 और 10 वर्णो पर यति हो, उसे प्रहर्षिणी कहते है। जैसे -

उदाहरण - सन्देशं दनुजमहीपति-प्रदिष्टं सुग्रीवः सरभसमद्रिजामुदित्वा ।

आपृच्छ्य प्रमथपतिं कृतप्रणामः सामोदः शिवभवनाद्विनिर्जगाम।। शु0व0 7/58 ।।

इसमें प्रहर्षिणी के लक्षण हैं। प्रहर्षिणी का प्रयोग 7वें सर्ग में 1, आठवें में 4, दशम में 1, एकादश में समस्त सर्ग में 45, त्रयोदश में 2 तथा चतुर्दश में 1, आदि श्लोकों में हुआ है।

13. **वंशस्थ** - जतौ तु वंशस्थमुदीरितंजरौ ।। वृत्त0 3/47 ।।

अर्थात् वंशस्थ छन्द में जगण, तगण, जगण और रगण क्रम से प्रयुक्त होता है।

उदाहरण- जगुर्वसन्तस्य रसालपादपे यशः प्रबन्धं कलकण्ठबन्दिनः ।

द्रुमाःप्रहृष्टाश्च तदागमोत्सवे दधुः समन्तान्नवपल्लवध्वजान् ।। शु0व0 8/10 ।।

प्रस्तुत श्लोक वंशस्थ का उदाहरण है। समस्त अष्टम सर्ग में 46 श्लोक में प्रहर्षिणी छन्द है। अन्त में 4 श्लोक प्रहर्षिणी में है।

14. **रथोद्धता** - रान्नराविह रथोद्धता लगौ ।। वृत्त0 3/37 ।।

अर्थात् जिस पद्य में प्रत्येक चरण में क्रम से रगण, नगण, रगण और गुरू वर्ण है। रथोद्धता कहा जाता है। नवे सर्ग मे 40, द्वादश मे । श्लोक रथोद्धता में है। जैसे -

उदाहरण- प्रेषितो नृपतिना सुरद्विषां त्वं बलैः परिवृतो महाबलः ।

मां बलान्नयसि चेन्तदन्तिकं किं करोमि तव धूम्रलोचन ।। शु0व0 9/15 ।।

यहाँ रथोद्धता का लक्षण है।

15. **मालिनी** - ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ।। वृत्त0 3/82 ।।

अर्थात् जहाँ 2 नगण, 1 मगण और 2 यगण हों तो मालिनी छन्द होता है। 8 और 7 वर्णो पर यति होती है।

उदाहरण - शलभवदुपयाते भस्मतां धूम्रनेत्रे विलयमुपगतेषु प्रायशः सैनिकेषु।

मृगपतिपरिमुक्तास्त्यक्तशस्त्रास्त्रवस्त्रा दिशि दिशिदितिपुत्राः कान्दिशिकावभूषः

।।शु0व0 9/41।।

समस्त महाकाव्य में यही मात्र एक श्लोक मालिनी छन्द का उदाहरण है।

16 **शार्दूल विक्रीडितम्** - सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम् ।

।। वृत्त0 3/99 ।।

अर्थात् जहाँ प्रत्येक चरण मे क्रम से मगण, रगण, जगण, भगण, दो तगण और एक गुरू वर्ण हो तथा 12 और 7 वर्णो पर यति हो शार्दूलविक्रीडित छन्द कहा जाता है। यह छन्द मात्र 12वे सर्ग में 1, और चतुर्दश सर्ग मे 1 श्लोक अर्थात 2 श्लोक ही रचित है। जैसे -

उदाहरण- एवं प्रदर्श्य हृदयंगममिन्द्र जालं तस्मिश्चिराय शमिते सति रक्तबीजे।
विच्छिन्नबाहुरिव धैर्यनिधिस्तदानी शुम्भासुरः क्षणमविन्दत मूढभावम् ।।

इस श्लोक में शार्दूल विक्रीडित का लक्षण है।

17 **द्रुतविलम्बितम्** - द्रुतविलम्बितमाह नभौभरौ ।। वृत्त0 3/50 ।।

अर्थात् जिस पद्य के प्रत्येक चरण मे क्रम से नगण, दो भगण और रगण हों वहाँ द्रुत विलम्बित छन्द होता है। यह छन्द त्रयोदश सर्ग मे मात्र 3 श्लोकों मे है। जैसे

उदाहरण- प्रलयवारिधराः प्रशमं ययुः सुरपथो रूरूचे स्फुटतारकः ।
नदनदीसलिलानि च भेजिरे विगतपंकतया स्फटिकच्छविम् ।।शु0व0 13/58 ।।

प्रस्तुत उदाहरण द्रुत विलम्बित का है।

अत शुम्भ वध महाकाव्य मे वर्णित छन्द का संक्षिप्त वर्णन प्रदर्शित किया गया।

शुम्भ वध महाकाव्य में छन्द योजना

सर्ग 1 1-61 तक उपजाति 62 वसन्ततिलका

इन्द्रवज्रा का उपेन्द्रवज्रा

सर्ग 2 1-55 तक वसन्ततिलका, 56 मन्दाक्रान्ता

सर्ग 3 1-69 तक शालिनी, 70 शिरवरिणी

सर्ग 4 1 - 81 तक उपजाति 82 - वसन्ततलिका

इन्द्रव्रजा, उपेन्द्रवज्रा

सर्ग 5 1 - 67 तक ललिता, 68 वसन्ततिलका

सर्ग 6 1 - 64 तक सुन्दरी 65 पुण्यिताग्रा

सर्ग 7 1 - 34 तक स्वागता, 39-57 वसन्ततिलका, 59 प्रहर्षिणी

सर्ग 8 1 - 46 तक वंशस्थ 47-50 प्रहर्षिणी

सर्ग 9 1 - 40 तक रथोद्धता, 41 मालिनी

सर्ग 10 1 - 41 तक शालिनी, 45 प्रहर्षिणी

सर्ग 11 1 - 45 तक प्रहर्षिणी, 46 47 - वसन्ततिलका, 48, 50 मे उपजाति

सर्ग 12 1 - 53 तक वसन्ततिलका, 54 - रथोद्धता, 55 में शार्दूलविक्रीडित

सर्ग 13 1 - 545 उपजाति, 55 में सुन्दरी, 56 में पुण्यिताग्रा,

57 से 59 - द्रुतविलम्बित, 60, 61 प्रहर्षिणी

सर्ग 14 1 - 42 तक वसन्ततिलका, 43 - 50 तक उपजाति,

51 में प्रहर्षिणी, 52 में शार्दूलविक्रीडितेम्,,

53 में पुष्पिताग्रा ।।

:· षष्ठ अध्याय ··

(महाकाव्य मे गुण, रीति, वृत्ति)
विवेचन

*****

अध्याय षष्ठ
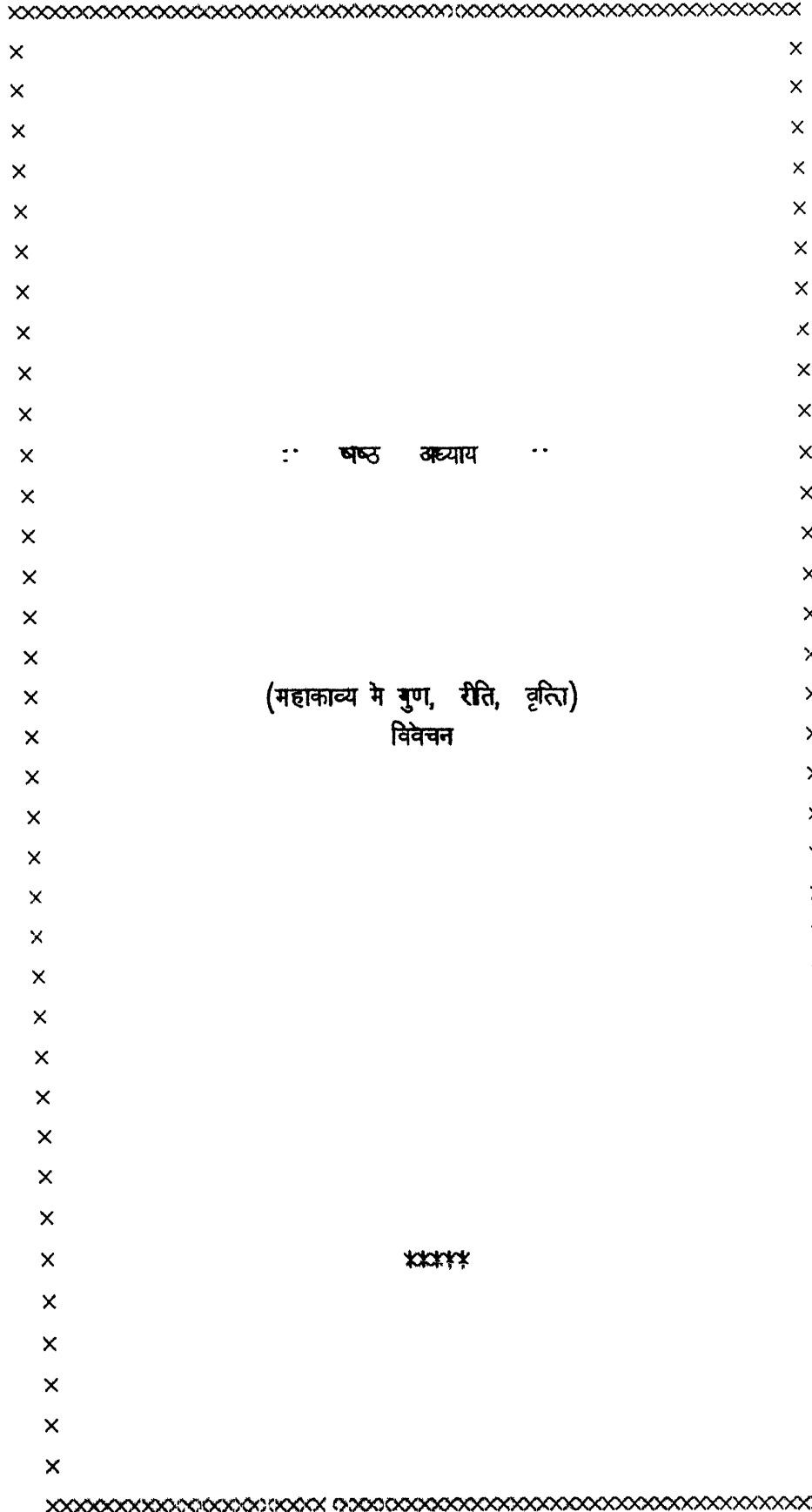
(महाकाव्य में गुण - रीति - वृत्ति विवेचन)

:: महाकाव्य में गुण विवेचन ::

आचार्य वामन गुण को काव्य का धर्म माना है।

काव्य शोभायाः कर्तारो धर्माः गुणाः। काव्यालंकार सूत्र 3/1/1

अर्थात् काव्य के शोभाधायक (उत्पादक) धर्म गुण कहलाते हैं। काव्य में गुणों की स्थिति अपरिहार्य होती है। परन्तु आचार्य ने गुणो को काव्य धर्म न मानकर गुणों को रस का धर्म माना है।

"ये रसस्यांगिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः ।
उत्कर्ष हेतवस्ते स्युरचल स्थितयो गुणाः ।। आचार्य मम्मट[1] ।।

अर्थात् आत्मा के शौर्यादि धर्मो के समान (काव्य के आत्मभूत) प्रधान रस के जो अपरिहार्य और उत्कर्षधायक धर्म हैं गुण (कहलाते) हैं।

अतः गुण रस के ही धर्म होते है। केवल वर्णो पर रहने वाले नहीं है।

गुण के भेद :

आचार्य वामन के तो गुणों की सख्या बीस मानी है - दश शब्द गुण और दस अर्थगुण।

ओजःप्रसादश्लेषसमतामाधुर्यसौकुमार्योदारतार्थव्यक्तिकान्तयो बन्धगुणाः 3/1/4

त एवार्थगुणाः[2] 3/2/1

---

1. का0प्र0 8/66/86
2. काव्यालंकार सूत्र 3/1/4, 3/2/1

अर्थात् दस शब्द गुण और दस अर्थ गुण होते हैं। परन्तु मम्मट को मान्य नहीं है। क्योंकि वे शब्द या अर्थ का धर्म न मानकर गुण को रस का धर्म मानते हैं और वामन के मत का खण्डन कर देते हे -

केचिदन्तर्भवन्त्येषु दोषज्ञत्यागात्परे श्रिता. ।

३.न्ये भजन्ति दोषत्वं कुत्रचिन्न ततो दश ।।

अर्थात् इन (वामनोक्त दस गुणों) मे से ।. कुछ तो इन (माधुर्यादि) में अन्तर्भूत हो जाते हैं 2 कुछ दोषाभाव रूप होते है तथाा 3 कुछ कहीं पर गुण न होकर दोष रूप हो जाते है, अत: वे गुण दस नहीं माने जा सकते।

मम्मट ने वामन के दस अर्थ गुणों का खण्ड किया है।

पदार्थे वाक्यरचनं वाक्यार्थे च पदाभिधा ।

प्रौढ़िर्व्यास समासौ च साभिप्रायत्वमस्य च ।। का0प्र0 ।2/4 ।।

अर्थात् ।. पद के प्रति पाद्यार्थ मे वाक्य की रचना 2 वाक्य के प्रति—पाद्यार्थ में पद का कथन करना 3 विस्तार या 4 संक्षेप करना 5 अर्थ का साभिप्रायत्व प्रौढ़ि होती है।

अत: आचार्य मम्मट तीन ही गुण माना, और वामन के सभी गुणों का तीनों गुणों में अन्तर्भाव कर दिखाया है जो निम्न है :-

माधुर्योज:प्रसादाख्यास्त्रयस्ते न पुनर्दश।[1] मम्मट

अर्थात् माधुर्य, औरज और प्रसाद ये तीन ही गुण होते हैं दस नहीं।

तीन गुण और उनके व्यंजक : वर्ण, समास तथा रचना इन तीनों गुणों के व्यंजक होते हैं -

---

वर्णाः समासो रचना तेषां व्यंजकतामिताः ।[1] मम्मट

1. माधुर्यगुण-"आह्लादकत्वं माधुर्यं श्रृंगारे द्रुतिकारणम् "।[2]

(चित्त के) द्रवी भाव का कारण और श्रृंगार में रहने वाला आह्लादकत्व ही माधुर्य है।

"मूर्ध्नि वर्गान्त्यगाः स्पर्शा अटवर्गा रणौ लघू ।
अवृत्तिमध्यवृत्तिर्वा माधुर्ये घटना तथा ।।[3]

अर्थात् अपने सिर पर स्थित अपने-2 वर्ग के अन्तिम वर्ण से युक्त, रवर्ग को छोड़कर शेष स्पर्ण वर्ण, ह्रस्व रकार तथा णकार और अवृत्ति (समास रहित) या मध्यवृत्ति (स्वल्प समास वाली) माधुर्य में व्यंजक होती है।

जैसे: अनंगरंगप्रतिमं तदंगं भंगीभिरंगी कृतमानताङ्ग्याः ।
कुर्वन्ति यूना सहसा यथैताः स्वान्तानि शान्तापरचिन्तनानि ।।

काव्य प्रकाश 8/349

यहाँ, 'ङ्गे' 'ङ्गे' 'मूर्ध्नि वर्गान्त्यगाः स्पर्शाः' की पुष्टि करता है। टवर्ग भी नहीं है, ह्रस्व रेफ है, 'अनंग' इत्यादि में स्वल्प समास है। अतः यहाँ माधुर्य गुण घटित होता है।

2. ओजगुण - दीप्त्यात्मविस्तृतेर्हेतुरोजोवीररसस्थिति ।[4]

---

1. वही 73/96
2. वही 68/89
3. वही 74/98
4. वही 69/91

अर्थात् (चित्त के द्रवीभाव को कारण भूत आह्लादकत्वजैसे माधुर्य में रहता है उसी प्रकार) वीर रस में रहने वाली आत्मा अर्थात् चित्त के विस्तार की हेतु भूत दीप्ति ओज कहलाती है।

अर्थात 'चित्तस्य विस्ताररूपदीप्तत्वजनकमोजः।'

वीभत्स रौद्ररसयोस्तस्याधिक्य क्रमेण च।।[1]

अर्थात वीभत्स और रौद्र रस में क्रमशः इसका आधिक्य रहता है।

ओज के व्यजक -

योग आद्यतृतीयाभ्यामन्त्ययोरेण तुल्ययोः ।

टादिः शषौ वृत्तिदैर्घ्यं गुम्फ उद्धत ओजसि ।।[2]

अर्थात् (कुप् के आद्य अर्थात्) 1. प्रथम (क, च, त, प) और तृतीय (ग, ज, द, ब) वर्णो के साथ उनके बाद के (ख, छ, थ, फ तथा घ, झ, ध, भ) वर्णो का (अव्यवधान से प्रयोग) तथा 2 रेफ के साथ योग (जैसे वक्त, वज्र, निह्र्यार्द आदि में) और तुल्यवर्णो का योग (वित्त, उच्च, उद्दाम आदि में) 4 टादि (ट, ठ, ड, ढ वर्ण) तथा 5 शष (ये सब वर्ण तथा) 6 दीर्घ समास एवं 7 उद्धत रचना (गुम्फ) ओज (गुण) में व्यंजक होते हैं।

जैसे. मूर्ध्नामुद्वृत्तकृत्ताविरलगलद्रक्तसंसक्तधारा

धौतेशाङ्घ्रिप्रसादोपनतजयजगज्जातमिथ्यामहिम्नाम्

कैलासोल्लासनेच्छाव्यतिकरपिशुनोत्सर्पिदर्पोद्धुराणां

---

1. वही 70/92
2 का0प्र0 8/35।

दोष्णां चैषा किमेतत्फलमिह नगरीरक्षणे यत्प्रयासः।। ।।का0प्र0 ।59 ।।

यहाँ पर रेफ के साथ वर्णो का प्रयोग 'मूर्ध्ना' 'र्घ्' और 'न्' का योग, 'शाङ्.र्ग', वृत्त, कृत्त, गलद्रक्त, संसक्त आदि व्यंजक वर्णो के होने से 'ओज' गुण है।

3 शुष्केन्धनाग्निवत् स्वच्छजलवत्सहसैव यः ।। 60 ।।

व्याप्नोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः[1] ।। का0प्र0 72/90 ।।

अर्थात् सूखे इन्धन में अग्नि के समान, स्वच्छ (धुले हुए वस्त्र में) जल के समान जो चित्त में अचानक व्याप्त हो जाता है वह सर्वत्र (सब रसो मे) रहने वाला प्रसाद (गुण कहलाता) है।

व्यंजकत्व -

श्रुतिमात्रेणशब्दात्तु येनार्थप्रत्ययो भवेत् ।

साधारणः समग्राणां स प्रसादो गुणो मतः ।।

का0प्र0 76/90

अर्थात् जिस (शब्द, समाज या रचना) के द्वारा श्रवण मात्र से शब्दार्थ की प्रतीति हो जाय वह सर्वत्र (वर्णो, समासों, रचनाओं में रहने वाला प्रसाद माना जाता है) जैसेः

उदाहरणःपरिम्लानं पीनस्तनजघनसङ्गादुभयतः, तनोर्मध्यस्यान्तः परिमिलनमप्राप्यहरितम्।

इदं व्यस्तन्यासं श्लथभुजलताक्षेपवलनैः कृशाङ्.ग्याः सन्तापं वदतिविसिनीपत्र—शयनम् ।। का०प्र० 8/35।

यहाँ पर श्रवण मात्र से अर्थ की प्रतीति होने से प्रसाद गुण है।

शुम्भ वध महाकाव्य में गुण

महाकवि शेवेडे जी ने शुम्भवध महाकाव्य मे प्रसाद गुण का प्रयोग अधिकाधिक रूप से किया है। ओज गुण का भी यत्र-तत्र प्रयोग है। भाव अर्थ में माधुर्य गुण का भी प्रयोग हुआ है। महाकवि कालिदास, श्रीहर्ष आदि की तरह ये घोर विलासिता को प्रश्रय अपने महाकाव्यो मे नहीं दिया है। हाँ यदि हिन्दी साहित्य की भाँति 'भक्ति' को भी रस मान लिया जाय (जिसे संस्कृत काव्यों मे भाव माना जाता है) तब न तो इस महाकाव्य के अतिरिक्त इनकी अन्य रचनाओं में भी 'भक्ति श्रृंगार' मानने पडगे। अन्यथा श्रृंगार रस विहीन महाकाव्य होने से प्रसाद गुणों मे परिहार हो जाता है।

1 महाकाव्य में माधुर्य गुण :

इस महाकाव्य मे माधुर्य गुण अत्यल्प है। माधुर्य गुण मुख्यत श्रृगार रस के ही व्यंजक अर्थो में प्रयुक्त होता है। परन्तु इस महाकाव्य मे श्रृगार का अभाव है। ऋतु वर्णन के प्रसंग में कवि के प्रवासियों के वर्णन के अन्तर्गत माधुर्य की झलक दिखाई पड़ती है। अत बसन्त ऋतु वर्णन मे प्रसंग म प्रसाद गुण की छटा दर्शनीय है।

"निरीक्ष्य मार्गे कुसुमैरलङ्कृतामशोकबाटीं मुमुहुः प्रवासिनः ।
कथंचिदेते प्रतिपद्य चेतनां रूदन्त एव प्रतिपलुरग्रतः" ।। 8/36

"पिधायवातायनात्ममन्दिरे करान् सुधांशोरूरूधुर्वियोगिनः ।
प्रसून तल्पं शयनापकल्पितं समुज्ज्वलाङ्गारसममेनिरे ।। शु0व0 8/40 ।।

2 **महाकाव्य में ओज गुण :**

ओज गुण इस महाकाव्य में बहुतायत पाया जाता है। युद्धादि एवं अन्य रोष पूर्ण प्रसंगों के अन्तर्गत ओजगुण की अभिव्यक्ति हुई है। शुम्भासुर के रोष का एक चित्र प्रस्तुत करते हुए प्रथम सर्ग मे कवि कहता है कि शुक्राचार्य के उपदेश के पश्चात उनसे प्रभावित शुम्भ निशुम्भ एक साथ बोल उठते हैं।

निशम्य वाच भृगुवंशकेतोश्रितो हरां तामसुराधियौ तौ ।

प्रत्यग्रतुंगैर्गभीररवेण वाचालयन्तौ भवन रवेण ।। शु0व0 1/55 ।।

चतुर्थ सर्ग का एक उदाहरण प्रस्तुत है जो भयानक रस मे है -

जगर्ज सर्वङ्कषहस्तिनालिस्फोशब्दैर्गगनान्तरालम् ।

असङ्ख्यशङ्खध्वनिसिंहनादव्यामिश्रितोऽभूत् तुमुलो निनाद ।।

शु0व0 4/25

कहीं-कहीं वीभत्स रस के वर्णन के अन्तर्गत ओज गुण व्यक्त है -

रक्तासवं स्वादुरस पिबन्त. कृत्वाऽट्टहास ननृतु. पिशाचा. ।

आस्वादयन्तः पिशितं मृतानां ववाशिरे व्यात्तमुखा शृंगालः ।। शु0व0 4/25

नवम सर्ग में दैत्यों के मारे जाते समय कटपूतनाएं कवोष्ण पाती है जिसमें ओज गुण व्यक्त है -

कौणपारुधिरमांसभोजिनोव्यन्तराश्र कटपूतनास्तथा ।

शोणितासवमवाप्य कर्परेबन्धुभिःसहकवोष्णमापिवन् ।। शु0व0 9/36 ।।

इसी प्रकार अन्य स्थलों मे भी ओज गुण द्रष्टव्य है।

3 **महाकाव्य में प्रसाद गुण :**

शेवडेजी ने शुम्भवध महाकाव्य का प्रारम्भ है। प्रसाद गुण से किया है जिसम 'प्रसादे' पद का प्रयोग भी हुआ है। वीर रस प्रधान होने के कारण इस महाकाव्य में स्थान स्थान पर प्रसाद गुण का प्रयोग हुआ है। युद्ध क प्रसग में, सेनाओं के वर्णन में, नायकों के संवाद में, ऋतु वर्णन म, उपदेशादि प्रसंग में प्रसाद गुण का प्रयोग हुआ है। जैसे प्रथम सर्ग का प्रारम्भ है। प्रसाद के प्रसाद में है -

पीयूषवर्षप्रवणंप्रसादे ज्वालाजटालं क्वाचिदुग्रातायाम ।

भव्याय नव्याम्बुजकान्तिभूयात् पिनाकपाणेर्नयनत्रय नः ।। शु0व0 9/9 ।।

महाकाव्य के नामकरण के प्रसंग में प्रसाद गुण दर्शनीय है।

माहेश्वरः काव्यपथप्रवृत्तः पुत्रीकृतःस्नेहवशात् भवान्याः ।

निर्माति शर्मप्रदमाद्रृतानां काव्यं नवं शुम्भवधं बसन्तः ।। शु0व0 1/3 ।।

द्वितीय सर्ग में गायों के चरने आदि में भी प्रसाद प्रयुक्त हुआ है -

आपीनभारसुभगगवा च कदम्बं मन्दं चचार हरितासुवनस्थलीषु।

गोपालकास्तरूतले मिलिता वितेनुर्वंशीनिनादमुखराणि दिशां मुखानि ।।

शु0व0 2/30

चतुर्थ सर्ग में कांची नगरी का वर्णन प्रसादमय है -

वसुंधरायाः कुलनायिकायाः सुवर्णकांचीव विभासमाना ।

गरीयसी सा नगरी व्यतानीदसम्मितं दैत्ययतेः प्रमोदम् ।। शु0व0 4/60

छठे सर्ग मे भी प्रसाद गुण का प्रयोग हिमालय वर्णन में हुआ है -

रविवंशभवो भगीरथः कठिनं यत्र चिरं तपश्चरन् ।

अवतीय नदीं दिवौकसामधिश्रृङ्गवसुधामपीपवत् ।। शु0व 6/18 ।।

इस कोई ऐसा सर्ग नहीं है जिसमें प्रसाद गुण का प्रयोग हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इस महाकाव्य में सर्ग 4 से 13 तक वीर रस की भरमार है और ओज गुण भरमार है। इससे इनकी शैली की एक विशेषता जो जाती है कि ओज गुण के स्थल में भी कवि ने स्वल्प समास एवं सरस पदावली का प्रयोग किया है। अतः शुम्भवध महाकाव्य में, माधुर्य गुण, ओजगुण और प्रसाद गुण तीनों का प्रयोग हुआ है।

(ख) शुम्भवध में रीति-विवेचन

रीति सम्प्रदाय साहित्य का एक विशेष सम्प्रदाय है। जिसके मुख्य प्रतिष्ठापक वामन है। उन्होंने रीति को काव्य की आत्मा माना है -

रीतिरात्मा काव्यस्य ।। काव्यालङ् कार 1/2/6 ।।

वामन ने रीति का लक्षण विशिष्ट पद रचना माना है -

विशिष्टापदरचना रीतिः ।। का0 2/7 ।।

विशेष का अर्थ "विशेषो गुणात्मा।" (का0 1/2/8) किया है। अर्थात् गुणात्मक पद रचना का नाम रीति है।

वामन ने तीन प्रकार की रीति माना है -

1 वैदभी 2. गौडीया 3. पाञ्चाली

सा त्रिधा वैदभी गौडीया पान्चाली चेति ।। का0 1/2/9 ।।

विदर्भादि प्रदेश के कवियों में विशेष रूप से प्रचलित होने से इन्हें वैदभी आदि कहा जाता है।

वामन से पहले 'रीति' शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। दण्डी ने 'मार्ग' नाम से व्यवहृत किया है। भाग ने किसी नाम से उल्लेख नहीं किया है। इस प्रकार रीति के प्रतिष्ठापक वामन ही सिद्ध होते हैं। इसी रीति को हिन्दी में शैली कहा जाता है। आनन्दवर्धनाचार्य ने इसी को सङ्घटना नाम दिया है। आचार्यानन्दवर्धन ने भी 1. 'असमासा' से वैदभी 2. समासेन मध्यमने च भूषिता' से पाञ्चाली और 3. दीर्घसमासा से गौडीया का निरूपण करते हुए तीन ही प्रकार की सङ्घटना या रीतियाँ मानी हैं। राजशेखर ने 'मागधी रीति' का भी उल्लेख किया है। भोजराज ने उन चार में एक

'अवन्तिका रीति' का नाम जोड़ दिया और इस प्रकार पाँच रीतियाँ हो जाती हैं। यदि इस दृष्टि से विभाग किए जायें तो अनन्त विभाग हो जायेगें। इसलिए मुख्यतः तीन ही रीतियाँ मानी जाती है अर्थात् वैदर्भी, गौडीया और पान्चाली रीतियाँ मानी जाती हैं।

वैदर्भी - समग्रगुणा वैदर्भी ।/2/।।

अर्थात् समस्त गुणों से युक्त वैदर्भी रीति होती है।

समग्रै ओजःप्रसादप्रमुखैर्गुणैरूपेतावैदर्भीनामरीतिः ।।

अत्र श्लोकौ - अस्पृष्टा दोशमात्राभिः समग्रगुणगुम्फिता ।

विपंचीस्वरसौभाग्या वैदर्भी रीतिरिव्यते ।।

अर्थात् ओजः प्रसादादि समस्तु गुणों से युक्त और दोष मात्रा से रहित वीणा के शब्द के समान मनोहारिणी वैदर्भी रीति होती है। इसकी कविगण प्रशंसा भी करते हैं -

सतिवक्तरि सत्यर्थे सति शब्दानुशासने ।

अस्ति तन्न विना येन परिश्रवति वाड्.मधुः ।।

वामन ने वैदर्भी रीति का उदाहरण कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तला से दिया है -

गाहन्तां महिषा निपातसलिलं श्रृड्.गैर्मुहुस्ताडितं,

छायाबद्ध कदम्बकं मृगकुलं रोमन्मथमन्यस्यतु ।

विस्रब्धं क्रियतां वराह ततिभिर्मुस्ताक्षतिः पल्लवे,

विश्रान्तिं लभतामिदं च शिथिलज्याबन्धमस्म द्धनुः ।। अभि0श0 2/8 ।।

यहाँ पर प्रसाद गुण गुम्फित वैदर्भी रीति है।

2 **गौडीया रीति** - ओजः कान्तिमयी गौडीया ।। का0 1/2/12 ।।

अर्थात् ओज और कान्तिगुणों से युक्त रीति गौडीया कहलाती है।

समस्तात् उभ्दटपदां ओजः कान्ति गुणान्वितांम ।

गौडीयामिति गायन्ति रीतिं रीतिविचक्षणाः ।। काव्य लड् कार - वही

इसमे माधुर्य और सौकुमार्य का अभाव रहता है, समास बहुल उग्र पचे का प्रयोग होता है। जैसे -

उदाहरण दोर्दण्डञ्चितचन्द्रशेखरधनुर्दण्डावभड् गोद्यत -

टड् कारध्वनिरार्यबालचरितप्रस्तावनाडिण्डिमः ।

द्राक्पर्यस्तकपालसम्पुटमिलद्ब्राह्मण्डभाण्डोदर -

भ्राम्यत्पिण्डचण्डिमा कथमहोनाद्यापि विश्राम्यति ।।

प्रस्तुत श्लोक ओज गुण का है और पद समास बहुत है, अल्प समास का अभाव है। पदों से उग्रता है। सौकुमार्य बिल्कुल नहीं है। अत. गौडीया रीति का उपयुक्त उदाहरण है।

3 **पान्चाली रीति** - माधुर्य सौकुमारोपन्ना पाञ्चाली ।। का0 1/2/13 ।।

अर्थात् माधुर्य और सौकुमार्य से युक्त रीति पाञ्चाली कहलाती है।

आश्लिष्टश्लथभावां तु पुराणच्छाययान्वितांम् ।

मधुरा सुकुमारांच पान्चाली कवयो विदुः ।। काव्यालड् कार वही ।।

अर्थात आश्लिष्ट श्लथभाव से युक्त पुराणो की शैली की छाया से युक्त मधुर और सुकुमार पदावली से युक्त रीति कवि पाचाली कहते है।

उदाहरण ग्राम्येऽस्मिन्पथिकायपान्थ वसतिनैर्वाधुवनादीयते,

रात्रावत्र विहारमण्डपतले पान्थः प्रसुप्तो युवा ।

तेनोत्थाय खले गर्जति घनेस्मृत्वा प्रियांतत्कृतं

येनाद्यपि करङ्.कदण्डयतानाशङ् की जनांस्तिष्ठति ।।

यहां साहित्यिक पदों के न होने, सुकुमार पदावली का प्रयोग होने से पांचाली रीति का उदाहरण है।

शुम्भवध महाकाव्य में रीति वैदर्भी :

इस महाकाव्य का गहन अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि इस महाकाव्य में शेवडे जी ने नितान्त वैदभी रीति का अनुवर्तन किया है। इन कवि महोदय की एक विशेषता प्रकट होती है कि इन्होंने अपने किसी काव्य या महाकाव्य में वैदर्भी रीति का पालन करने का प्रयास किया है। शुम्भवध तो नितान्त वैदभी रीति का महाकाव्य है वीर रस होते हुए भी प्रसाद गुण में यह महाकाव्य सम्पन्न हुआ है।

इनके काव्यों में ऐसा नहीं है कि माधुर्य गुण नहीं है। बल्कि भावों का प्रयोग होने से शुम्भ वध में भी माधुर्य गुण अल्प मात्रा में है। जबकि शुम्भवध सहित तीनों (विन्ध्यवासिनी और देवेश्वर) महाकाव्यो मे भी श्रृङ्.गार रस का सर्वथा अभाव है। फिर भी माधुर्य गुण का पर्याप्त स्थलों पर प्रयोग हुआ है।

इन्होंने श्रृङ् गार की मर्यादा की सीमा को पार नहीं करना चाहा है जैसे कि कुमार सम्भव और अमरूशतक आदि में प्रयुक्त है। इन्होंने नितान्त

स्वाभाविकता और सरलता का प्रयोग यिका है। अत शुम्भ वध महाकाव्य मे नितान्त वैदभी रीति है। जिसका विवेचन इस प्रकार है -

माधुर्य के प्रसड्.ग में वैदभी :

माधुर्य गुण के प्रसड्.ग मे वैदभी रीति को प्रमाणित करने के लिए तीसरे सर्ग में कुछ विवेचन इस प्रकार है -

नीरे न्द्याः पद्मक वीचिलोलं श्यामीभूतं चंचरीकैः स्वनद्भिः।
मातङ्गतानां मज्जतां गात्रदेशात् स्रस्त लौहं श्रृङ्खलं सम्बभासे ।।

शु0व0 3/35

इसमें अल्प समास, माधुर्य व्यंजक वर्णो से युक्त पदों का प्रयोग होते हुए यहाँ वैदभी रीति दिखाई पड़ती है। चतुर्थ सर्ग मे शुम्भ की विजय को देखकर लड्.ग के लोगों ने जड्.घावलका आश्रय ले लिया जो माधुर्य के व्यंजक वर्णो पदान्त मे ह्.गरड्.ग के पद के प्रयोग का उदाहरण प्रस्तुत है -

गड्गा तटे प्राप्त रणप्रसड्गा वड्गा निशुम्भाग्रजलब्धभड्गा : ।
सड्घातभावं सहसाविहाय जड्घाबलं सादरमाश्रयन्तः ।।

यहाँ वीरता का भाव होने पर भी माधुर्य के व्यजक वर्णो का प्रयोग हुआ, यहाँ भी वैदभी रीति है।

इन्दीवरेषु कमलेषु कुशेशयेषु रक्तोत्पलेषु कुमुदेषु च हल्लकेषु।
आस्वाद्य साधु मकरन्दरसं मिलिन्दा मन्दायता इवमदेनकलं जुगुन्जुः ।।

शु0व0 2/26

प्रस्तुत श्लोक की माधुर्य के वर्णो का व्यजक है। अतः तर्को के आधार पर यहाँ भी वैदभी रीति है। इसी प्रकार अन्य स्थलों पर वैदभी रीति है।

ओज के प्रसड्.ग में वैदभी :

ओज गुण के प्रसड्.ग में वैदभी रीति का भी उदाहरण प्रस्तुत है। जैसे चतुर्थ सर्ग में पंजाब नरेश के साथ युद्ध के प्रसड् ग मे ओज में वैदभी द्रष्टव्य है -

मृतोऽसि सम्मूढ़ मम प्रहारं सोढुं न शक्नोषि वृथा प्रलापिन् ।
कस्त्व ममाऽग्रे मशको दुरात्मान्निति ब्रवाणा उभये प्रजघ्नुः ।।

शु0व0 4/23

यह भी वैदभी का उदाहरण है।

द्वादश सर्ग में दुर्गा निशुम्भ को फटकारती है तो वैदभी रीति ही निकलती है -

हंहो। निशुम्भ पृतनाधिपते तरस्विन् येन त्वया भुजबलात् विजिता त्रिलोकी।
सत्व बभूविथ जितेन्द्र वृथप्रयासो मां दुर्बलां हिचतुरड् गबलो गृहीतुम् ।।

शु0व0 12/10

यह ओज गुण युक्त वैदभी रीति का उदाहरण है।

चतुर्थ सर्ग में वीभत्स रस में भी ओज गुण का प्रसड्.ग होने से वैदभी रीति दर्शनीय है-

रक्तासवं स्वादुरसं पिबन्तःकृत्वाऽट्टहासंननृतुः पिशाचाः ।
आस्वादयन्तःपिशितं मृतानां ववाशिरेव्यात्तमुखाः श्रृगालाः ।। शु0व0 4/28

यह भी वैदभी रीति है। अतः इसी तरह अन्य स्थलों पर भी वैदभी का प्रयोग है।

प्रसाद के प्रसङ्.ग में रीति :

समस्त महाकाव्य में सर्वाधिक प्रसाद गुण का प्रयोग हुआ है अतः प्रसाद गुण से युक्त श्लोकों में वैदर्भी द्रष्टव्य है -

मदः सुरायाइव सम्पदोऽपि बलात्समग्रं हरते विचारम् ।

विचारशून्यस्य कुतो विवेको विवेकहीनो भजते विपत्तिम् ।। शु0व0 1/50

प्रथम सर्ग में उद्धृत यह श्लोक वैदर्भी रीति का उदाहरण है।

द्वितीय सर्ग में भी वैदर्भी दर्शनीय है -

वातायर्युर्नविरतिं वनकेतकानां केकारवोऽपिशिखिनांन कटुत्वमाप।

तारूण्यवालदशयोरिव सम्बभासेप्रावृट्छशरत्समययो. सतु सन्धिकालः ।।

शु0व0 2/15

यहाँ प्रसाद गुण है और अल्प समास के पद हैं अन्य सभी गुण से युक्त वैदर्भी है।

तृतीय सर्ग में वैदर्भी द्रष्टव्य है -

यात्राकाले मन्थरं संचरन्तः शैलोत्तुङ्.गासिन्धुराःबन्धुराङ्.गाः ।

दानाम्भोभिः सन्ततं प्रस्रवाभ्दिर्मार्गान भूयः पङ्.किलानङ्.कयन्तः।

शु0व0 3/13

यहाँ प्रसाद गुण से सम्पन्न वैदर्भी रीति है। वैसे यहाँ भी वर्णन तो माधुर्य के हैं परन्तु प्रसङ्.गतः भाव से प्रसाद गुण निकलता है। अतः वैदर्भी रीति है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शुम्भवध महाकाव्य में सर्वत्र वैदर्भी रीति का प्रयोग किया गया है।

शेवडे जी की रीति वैदर्भी :

शेवडे जी ने मात्र वैदर्भी का आश्रय लिया है, उन्हें वैदर्भी ही अभीष्ट भी है, इसलिए समस्त शुम्भवध महाकाव्य में वैदर्भी में रच डाला।

इतना ही नहीं कवि ने अपने अन्य ग्रन्थों में भी वैदर्भी रीति का एक मात्र आश्रय लिया है, क्योंकि वैदर्भी का गुणमान लगभग अपने सभी ग्रन्थों के 'निवेदनम्' नामक शीर्षक में कहा है। जैसे दुर्गास्तवमन्जूषा में-

ये प्राक्तनः सरस मंजुलवाग्विलासा

वैदर्भी रीति निपुणाः प्रथिताः कवीन्द्राः ।

बद्धान्जलिः शिरसि तान्विनयाद्बद्ध

साहित्यसारसस्तिथानामि ।। आमुख स्तवः । ।।

प्रेष्ठः सुतः परमदुर्ललितो भवान्या महेश्वरः स विरेविते कविर्बसन्त. ।

यः कालिदासपदवीमनुवर्तमानो वैदर्भीरीतिमुद्जीवयदस्तकल्पाम् ।। निवेदनम् 7

वेदर्भी रीतिमनेस्त्तर्यविनिर्मितेयं, स्तोत्रावली ललितमन्जुल सन्निवेशा ।

माला यथाविकसितैः कुसुमैर्निबद्धा, प्रीणातुविश्वजननींगिरिराजकन्याम् ।×

निवेदनम् ।5

'शुम्भवध महाकाव्यम्' में निवेदन के अन्तर्गत वैदर्भी की प्रशंसा करना कवि नहीं भूलता है -

---

× महाकवि शेवडे द्वारा ही रचित, 1985 में वाराणसी के चौखम्भा प्रकाशन से प्रकाशित स्तव मंजूषा में उद्धृत।

वर्वर्ति सर्वत्र कवि प्रपंजे गुणैरनूनैरिह कालिदासः ।

यदाश्रिता मन्जुलसन्निवेशा वैदर्भी प्रथते पृथिव्याम् ।। निवेदनम् 3

1 विन्ध्यवासिनी महाकाव्य में भी कवि वैदर्भी प्रशंसा करता है -

विदर्भरीतिमवलम्ब्य निबद्धमेतत्काव्यत्रयं भगवतीगुणवर्णनाय।

विन्यस्तो रसावेद्यां भवतां कराब्जे हर्षप्रकर्शमधिगच्छति मानसं मे।।

निवेदन 7

विदर्भदेशाभिजनं वसन्तं शम्भो कृपा भाजनमाश्रयन्ती ।

गुणानुवादैर्जगदम्बिकाया वैदर्भरीतिः सफलाविभाति ।। निवेदन 9 ।।

कविकुलगुरूमादौ शिश्रिये कालिदासु

तदनु च कविमल्लं विलक्षणं या प्रपेदे ।

स्मरहरवरणाब्जे चन्चरीकं वसन्तं

श्रयति कविमिदानीं सैव वैदर्भरीतिः ।। निवेदनम् 8 ।।

2 देवदेधश्वर महाकाव्य में कवि ने वैदर्भी की प्रशंसा की है।

ताप्तीं पयोष्णीं वरदां प्रणीतां विगाह्य सम्पादितपुण्यराशि. ।

विदर्भदेशे निवसन् वसन्तो वैदर्भरीति स्ववशे चकार ।। निवेदनम् । ।।

3 अभिनव मेघदूत में वैदर्भी का कवि ने गुणमान किया है -

माहेश्वरं मन्जुलवाग्विलासं पुत्रं तृतीयं जगदम्बिकायाः ।

वैदर्भरीतिः स्वयमेव वव्रे विदर्भदेशाभिजनं वसन्तम् ।। निवेदनम 6 ।।

वैदेशिकोविह्लणकालिदासौसंश्रित्य वैदर्भीगिराचिराय ।

गुणानुरागादवृणोदिदानीमनस्य सामान्य गुण वसन्तम् ।। निवेदनम् 7 ।।

---

1 1983 में चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी द्वारा प्रकाशित

2 1993 में पुणे से प्रकाशित

3 1990 में चौखम्भा प्रकाशन वाराणसी से प्रकाशित

उपर्युक्त विवेचन एवं अध्ययन के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि कालिदास और विह्लण की ही मानों प्रतियोगिता मे अपने को अधिक आँकने वाले महाकवि शेवडे जी ने मात्र वैदर्भी रीति का ही अनुवर्तन किया है। रीति की प्रशंसा में भी कवि ने अपनी श्रेष्ठता प्रदर्शन की है। कालिदास की वैदर्भी रीति यदि उनके पीछे-2 चलती है तो इनकी वैदर्भी रीति इनके गले में आभूषण स्वरूप रहती है। यदि कालिदास की वैदर्भी सहचरी है तो शेवडे की वैदर्भी उनकी वशवर्ती हो गयी।

कवि ने सभी प्राप्त रचनाओं में विदर्भ देश का निवासी होने के कारण अपने को वैदर्भ अर्थात् वैदर्भी गुणों से युक्त ही प्रदर्शित किया है। अतः शुम्भ वध महाकाव्य वैदर्भी रीति प्रधान है।

(ग) शुम्भवध महाकाव्य में वृत्ति विवेचन

अलङ् कार शास्त्र में वृत्ति नाम से अनेक काव्य तत्वों का उल्लेख मिलता है। (1) शब्द की अभिधा, लक्षणा, तात्पर्या और व्यंजनाशक्तियों को भी वृत्ति नाम से कहा जाता है। (2) 'वर्तन्ते अनुप्रासभेदा आसु इति वृत्तयः' इस विग्रह के अनुप्रास प्रकारो को ही वृत्ति कहा जाता है। भट्टोभट्ट नेइस्टी के अनुप्रास प्रकारों को परूषा, उपनागरिका, और ग्राम्या तीन वृत्तियों के रूप में माना है। उनके लक्षण इस प्रकार किये हैं -

शषाभ्या रेफसंयोगैमेरवरोण च योजिता।
परूषा नाम वृत्तिः स्यात् ह्र्यह्र्यह्र्याद्यैच संपुता।।
सरूपसयोगयुन्तां मूर्ध्नि वर्गान्तयोगिभिः ।
स्पर्शैर्युतां च मन्यते उपनागरिक्तं बुधाः ।।
शेसौवर्णैर्यथायोगं कथितां कोमलाख्यया ।
ग्राम्यां वृत्तिं प्रशंसन्ति काव्येष्वाद्धतबुद्धयः ।। उद्भर का0 1/5/3/7

आलोककार आचार्य आनन्दवर्धन के द्वारा इन तीनों वृत्तियों का सङ्घटना के साथ सम्बन्ध करने से 'वृत्ति' सङ्घटना और इन तीनों का भेद प्रत्यक्ष आ जाता है। किन्तु आचार्य आनन्द वर्धन ने दीर्घ समास रचना होने पर भी ग्राम्यावृत्ति का व्यवहार वर्जित बताया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि रचना को वर्ण और पद की दृष्टि से दो प्रकार से विभक्त किया जा सकता है -

1. पदो की दृष्टि से असमासा मध्यम समासा और दीर्घ समासा। इन्हें ही आलोककार सङ्घटना भी कहा है।

2 वणो के प्रयोग की दृष्टि से रचना के परूषा, उपनागरिका तथा ग्राम्या के कोमला कहा है यही तीन विभाग भट्टोभट्ट ने आदि ने किये हैं और उनको ही वृत्ति कहा है।

अतः पद स्थिति प्रधान रचना के लिए 'सड् घटना' शब्द तथा वर्ण स्थिति प्रधान रचना के लिए 'वृत्ति' शब्द का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार भट्टोभट्ट की वृत्तिका स्थानीय प्रतीत होती है। रचना के इन दोनों भागों का सम्बन्ध गुणों के स्वरूप से भी है। अतः यह भी कहा जा सकता है कि वृत्ति और सड्.घटना ये दोनों रीति के अंग हैं और उन दोनों की समष्टि का नाम रीति है इससे स्पष्ट होता है कि वृत्ति रीति का ही अंग है। रीति का नियामक है।

इसी प्रकार नाट्य शास्त्र में चार प्रकार की वृत्तियाँ पायी जाती हैं - 1. कौशिकी 2 साहवती 3 आरभटी 4. भारती

परन्तु अलड् कार शास्त्र का प्रसड् ग होने से परूषा उपनागरिका आदि को प्रस्तुत किया जाता है -

शुम्भवध में वृत्तियाँ :
------------- भट्टोभट्ट के काव्यालड् कार में परूषा आदि की परिभाषित किया गया है। जिसका विवचेन इस प्रकार है -

परूषा शषाभ्या रेफ सयोगैष्टवर्गेण योजिता ।

परूषानाम वृत्तिः स्यात् ह्यह्यह्याद्यैश्रसयुता ।। का0 ।।

अर्थात श, ष, रेफ उचित वर्णानुसार सयोग वणो से युक्त, ह्स्वड्कार व हि से युक्त परूषा वृत्ति कहलाती है।

प्रस्तुत महाकाव्य में परूषा ·
----------------- शुम्भवध महाकाव्य वीररस प्रधान होत हुए भी प्रसाद गुण प्रधान महाकाव्य है। ओज का दर्शन यत्र-तत्र हुआ है। अत परूषा का उदाहरण उपयुक्त महाकाव्य के दशवे सर्ग मे दर्शनीय है।

हहो। वीरौ चण्डमुण्डौ भवन्तौ सेना वहीं मस्मन्दीयां गृहीत्वा।

गत्वातूर्णं शैलश्रृङ्गास्थितां केशग्राहं दुर्मदामानेयताम् ।। शु0व0 10/8

प्रस्तुत उदाहरण ओजगुण युक्त है, संयोग वर्णो से युक्त भी है अतः परूषा वृत्ति है। वहीं जब पार्वती चण्ड मुण्ड के आने पर क्रोधित होती हैं तो परूषा का दर्शन होता है -

आसन्नानां स्फारमुच्छृङ्खलानां द्रृष्ट्वा तेषामुद्यम प्रग्रहीतुम् ।

ब्राह्माण्डाना सार्वभौमाधिकारं बिभ्राणासा शैलकन्या चुकोप । शु0व0 10/15

इस प्रकार नवम सर्ग में धूम्र नेत्र भस्म हो जाने पर बचे दानव भाग जाते हैं। जिसका चित्रण परूषा में होता है -

शलभवदुपयाते भस्मतां धूम्रनेत्रे विलयमुपगतेषुप्रायश· सैनिकेषु ।

मृगपतिपरिमुक्तस्त्यन्तशस्त्रास्त्रवस्त्रा दिशि-दिशि दिति पुत्राः कान्दिशीकाबभूवु.

शु0व0 9/41

यहाँ पर भी श, रेफ, संयोग वर्ण अत्यल्प समास युक्त होने पर परूषा है। इस प्रकार के शब्द व्यवहारा का प्रयोग प्रस्तुत महाकाव्य में चतुर्थ, पचम, नवम, दशम, एकादश, द्वादश तथा त्रयोदश सर्गो मे भी यत्र-तत्र प्राप्त होता है। अतः शुम्भ वध में परूषा नाम की वृत्ति प्राप्त है।

महाकाव्य में उपनागरिका :

सरूपसंयोगयुतां मूर्ध्निवर्गान्तयोगिभिः ।

स्पर्शैर्युतां च मन्यन्ते उपनागरिका बुधैः ।।

अर्थात् समान स्वरूप वाले संयोग युक्त अपने सिर पर स्थित अपने वर्ग के अन्तिम वर्णो से युक्त वर्णो वाली वृत्ति को विद्वान लोग उपनागरिका कहते हैं।

महाकाव्य में उपनागरिका : उपनागरिका भी लगभग सभी सर्गो में है जैसे चतुर्थ से एक उदाहरण प्रस्तुत है -

गड्.गातटे प्राप्तरणप्रसड्.गा वड्.गा निशुम्भ्रागजलब्धभड्.गा. ।

सड्.गीतभाव सहसा बिहाय जड्.बाबलं सादमाश्रयन्तः ।। शु0व0 4/54

यहाँ 'ड्.गा' - 'त् गा' जैसे अलड्कारों का प्रयोग होने अन्य लक्षणो के प्राप्त होने से यहाँ उपनागरिका वृत्ति है। प्रथम सर्ग मे भी उपनागरिका दर्शनीय है।

विध्यातयन्ति प्रसभ नरेन्द्रान विधाय सामन्तजनेषु भेदम् ।

वहिःस्थितांछत्रुजनानेकानेकोडाते शेते सदनान्तरस्यः ।। शु0व0 1/48 ।।

इस प्रकार तृतीया सर्ग भी दर्शनीय है -

यात्राकाले मन्थरंसंचरन्तः शैलोक्तुड्.गाः सिन्धुवन्धुराड्.गाः ।

दानाम्भोभिः सन्ततं प्रस्रवाभ्दिर्मांगान् भूयः पड्.कलानड्.कयक्तः ।।

शु0व0 3/13

इसी प्रकार अन्य स्थल पर भी उपनागरिका वृत्ति है।

ग्राम्या या कोमला :
----------- इसे ग्राम्या या कोमला दो कहा जाता है।

शेषैर्वर्णैर्यथायथायोगं कथिताकोमलाख्यया।

ग्राम्यां वृत्तिप्रशंसन्ति काण्वेडवादृतबुद्धयः ।। का0 1/7 ।।

अर्थात परूषा और उपनागरिका के चार शेष वर्णो के यथोचित योग कही जाने वाली कोमला इस नाम से कही जाने वाली वृत्ति को काव्यों में आदर रखने वाले सहृदयबुद्धि वाले लोग ग्राम्या वृत्ति कहते हैं। अर्थात् कुछ उदाहरण प्रस्तुत है -

निर्मिताः सुमनसः सुनूलोकाल्लुब्धका इव वनेविचरन्ति ।

संवसन्ति वनिता अपि तेषा कन्दरासु विपिनेषु गुहासु ।। शु0व0 7/23 ।।

यहाँ परूषा और उपनागरिका के बाद शेष लक्षणों से सुशोभित ग्राम्या वृत्ति का उदाहरण है। अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत है -

प्रत्यालय मणिमयाः प्रदीपकाः निरस्ततिमिरः समुज्ज्वला ।

यत्रक्षमातल निवासिनां मुहुर्नूनं शक्ति नवतारकाभमय् ।। शु0व0 5/52

फुल्ला विलासविपिनेषु मल्लिका गुंजन्तिषट्पदकुलानिमजुलम्।

दृष्टाष्च पड्.कजवनेषु खंजना आनन्दयन् हि दिति नन्दनानमृशम ।

शु0व0 5/5

अद्यान्न भोज्यं न परीक्ष्य किंचिन्न कामिनी कारभसादुपेयात् ।

विषेणनाश विषकन्यया वा प्रत्यर्थिभूपैर्वहवोऽपिनीता ।। शु0व0 1/46 ।।

अन्तः शुक्लवध मे कोमला वृत्ति का भी प्रयोग है।

उपर्युक्त विवचेन से ज्ञात होता है कि शुम्भ वध महाकाव्य में सभी वृत्तियों का प्रयोग हुआ है। अधिकांश कोमला वृत्ति का प्रयोग हुआ है।

:: सप्तम अध्याय ::

(महाकाव्य में रस विवेचन विमर्श)

*****

शुम्भ वध महाकाव्य में रस-विवेचन - विमर्श

संस्कृत साहित्य में रस अपना प्रमुख स्थान रखता है। यदि रस की अनुभूति न हो तो व काव्य ही नहीं होता है। रस का अर्थ है- रस्यते इति रसम्, अर्थात् रसित होना या द्रवी भाव को प्राप्त हो जाना रस है। जब काव्यानन्द की अनुभूति में सहृदय विगलित-वेद्यान्तर हो जाय वह द्रवी भाव को प्राप्त हो जाय तो उस प्राप्त आनन्द को ही रस कहते हैं। इसी रस को काव्य की आत्मा कहा गया है।

"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"

परिभाषा :

रस की परिभाषा अनेकानेक काव्य शास्त्रियों ने अनेकानेक प्रकार से की है -

विभावानुभावव्यभिचारि संयोगाद्रसनिष्पत्तिः [2]

अर्थात् विभाव, अनुभाव और सञ्चारिभाव के संयोग से परिपुष्ट इत्यादि स्थायिभाव आस्वादावस्थान होकर रस कहलाते हैं।

यह भरतमुनि का सूत्र देखने में तो सीधा है परन्तु बड़ा विवादित रहा है। धनञ्जयाचार्य ने निम्न परिभाषा दी है:-

विभावैरनुभावैश्च सात्त्विवैर्व्यभिचारिभिः ।

आनीयमानः स्वाद्यत्वं स्थायीभावो रसः स्मृत. ।।[3]

---

1. साहित्य दर्पण, 2. ना0शा0 3. दशरूपक ।

विभाव, अनुभाव सात्विक भाव और सञ्चारी भावों द्वारा आस्वादन (चर्वणा) के योग्य बनाया गया (इत्यादि) स्थायीभाव ही रस कहा गया है। अर्थात् काव्य पढ़कर सुनकर या नाटकादि देखकर सामाजिकों के हृदय में प्रस्फुटित या विस्फुटित होने वाला इत्यादि स्थायी भाव ही जब आस्वादन-योग्य हो जाता है तो उसे ही रस कहते हैं। आचार्य मम्मट ने सभी सभी आचार्यों के मतों को लेकर निष्कर्ष स्वरूप रस की परिभाषा दी है –

कारणान्यथ कार्याणि सहकारिणि यानि च ।
रत्यादे स्थायिनो लोके तानि चं चेन्नाट्यकाव्ययोः ।।
विभावानुभावस्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः ।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रस स्मृतः ।।[1]

अर्थात् –

लोक में रति आदि रूप स्थायिभाव के जो कारण, कार्य और सहकारी होते हैं वे नाटक या काव्य में (प्रयुक्त) होते हैं तो क्रमशः भाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव कहलाते हैं। उन विभावादि (रूप कारण कार्य तथा सहकारियों के योग से व्यक्त वह स्थायीभाव रस कहा जाता है।

इस प्रकार भाव ही रस का बीज रूप या मूल सिद्ध होता है।

<u>भाव</u> ·

मनोऽनुभूतिः भावः मन की अनुभूति को भाव कहा जाता है।

भाव दो होते हैं – स्थायी भाव और व्यभिचारी भाव।

नाट्य शास्त्र में केवल आठ स्थायी भाव ही माने गये हैं। इसीलिए ना०शा० में केवल रस माने गये हैं।

---

1 का०प्र० : 27-28/43

<u>स्थायिभाव</u> :

यह भाव रसानुभूति का आन्तरिक और मुख्य कारण है। स्थायित भावाः स्थायिभावाः । स्थायी भाव मन के भीतर रहने वाला प्रसुप्त संस्कार है जो अनुकूल आलम्बन तथा उद्दीपन रूप उद्बोधक सामग्री को प्राप्त कर अभिव्यक्त हो उठता है और हृदय में एक अपूर्व आनन्द का सञ्चार कर देता है। अत स्थायिभाव रस्यमान होता है। अतः –

विरूद्धैरविरूद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न यः ।
आत्मभावनवात्यन्यान् सस्थायी लवणाकर . ।।[1]

रस स्मृतः " इति –

अविरूद्धाविरूद्धा वामं तिरोधातुमक्षमा ।
आस्वादाङ्कासुन्ययोऽसौभाव स्थायी इति सम्मतः । 1/3/14

<u>भेद</u> :

काव्य प्रकाशकार ने दिखलाकर उनकी गणना इस प्रकार की है–

रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहो भयं तथा ।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः ।।[2]

इसके अतिरिक्त मम्मट ने 9वां रस भी माना है –

"निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः ।।"

---

1. दश0रू0 4/34, शु0का0प्र0 4/30/45

2. सादर्पण ।

इसी विवरण औ0शा0 में भाग आ रस माने गये हैं जिनका उल्लेख आचार्य मम्मट ने भी किया है –

श्रृड्.गारहास्यकरूणरौद्रवीर भयानकाः ।

वीभत्साद्भुत संज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रस स्मृतः ।।

<u>विभाव</u> :

रसानुभूति के कारणको विभाग कहते हैं । यह दो प्रकार का होता है –

ज्ञायमानतया तत्र विभावो भावो पोष्कृत ।

आलम्बनोद्दीपनत्वंप्रमदेने स च द्विधा ।।

अर्थात् उन (रस के कारण तत्त्वों) में विभाव वह है जो ज्ञायमान होकर स्थायिभाव को पुष्ट करता है। वह विभाव आलम्बन और उद्धीपन के भेद से दो प्रकार का है।

आचार्य भरत की दृष्टि में विभव "विज्ञान" या एक विशिष्ट ज्ञान है ।

विभाव के कारण, निमत्त हेतु आदि पर्यायवाची शब्द है। अतः वाचिक, आड्.गक एवं सात्त्विक अभिनय द्वारा जो विशिष्ट रूप से जाने जाते हैं वे विभाव है। यह दो प्रकार का है – (1) फयलम्पन (2) उद्दीपन। जिसको आलम्बन करके रस की निष्पत्ति की जाती – "आलम्बन विभाव" कहते हैं। जैसे सीता को देखकर

राम के मन में और राम को देखकर सीता के मन में रति की उत्पत्ति होती है और उन दोनों को देखकर सामाजिक के मन के भीतर रस की अभिव्यक्ति होती है। अत. सीता, राम आदि श्रृङ्गार रस के आलम्बन हैं जिसके द्वारा रति की उत्पत्ति होती है। उद्दीपन विभाव है। जैसे – चाँदनी, उद्यान, एकान्त स्थान आदि के द्वारा उस रति का उद्दीपन होता है। प्रत्येक रस के आलम्बन तथा उद्दीपन अलग"–अलग होते है।

<u>अनुभाव</u> :

आन्तरसानुभूति से उत्पन्न उसकी वाह्याभिव्यक्ति के प्रयोजक शारीरिक व्यापार है। आचार्य विश्वनाथ ने इस प्रकार अनुभाव की परिभाषा दी है–

उद्बुद्ध कारणैः स्वैः स्वैर्बहिर्भावं प्रकाशयन् ।

लोके यः कामरूपः सोऽनुभावः काव्यनाट्ययोः ।।[1]

भरत ने कहा है –

वागङ्गाभिनयेनेहव्यस्त्त्वर्थोऽनुभाव्यते ।

शाखाङ्गोपाङ्गसंयुक्तस्त्वनुभवःततः स्मृत : ।।[2]

अतः अलग–अलग रति को प्रकाशित करने वाले स्मृत. आदि वाह्य व्यापार " अनुभाव" कहे गये हैं।

अनुभावो विकारस्तु भावसंसूचनात्मकः । [3]

---

1. सा0द0 – 3/13
2. ना0शा0 1/7
3. दशरूपक

रति आदि भावों को सूचित करने वाला विकार (परिवर्तन) अनुभाव है । अनुभवावयन्ति इति अनुभावः अर्थात् साक्षात् अनुभव कराने वाला अनुभाव है –

अनुभाव्यते अनेन वाङ्गसत्त्व कृतो अभिनयो ।[1]

अर्थात् –

अनु पश्चात् भवति इति अनुभावः । अनुभाव भी आठ हैं –

स्तम्भःस्वदऽथरोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽवेपथुः ।

वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्त्विकाः स्मृताः ।।[2]

व्यभिचारी भावः

स्थायिभाव से उल्टा व्यभिचारी भाव है। उसे सञ्चारिभाव भी कहते हैं। स्थायि भाव का उपमा लवणाकर से की गयी है। साँभर झील में जो कुछ डाल दो नमक बन जाता है। इसी प्रकार किसी भी भावों से जो विच्छिन्न नहीं होता स्थायिभाव है। इसके विपरीत व्यभिचारी भाव होता है–

उद्‌बुद्ध हुए स्थायी भावों की पुष्टि तथा उपचय में जो उनके सहकारी होते हैं, उनको व्यभिचारि भाव कहते हैं जो रसों में नाना रूपों से विचरण करते हैं और रसों को पुष्ट कर आस्वाद के योग्य बनाते हैं उन्हें व्यभिचारि भाव कहते हैं ये 33 प्रकार के होते हैं –

विशेषादाभिमुख्येन चरन्तो व्यभिचारिणः ।

स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नाः कल्लोलइववारिधौ ।।[3]

---

1 काव्य प्र0, 2. सा0द0, 3/135, 3. दश रूपक

इन्हीं विभाग, अनुभाव तथा व्यभिचारिभाव के संयोग से रस निष्पत्ति होती है।

<u>रस के भेद या रसों की संख्या</u> :

रसों की संख्या के विषय में मतभेद है। नाट्य शास्त्र में रसों की संख्या आठ मानी गयी है।

श्रृङ्गारहास्यकरूणरौद्रवीरभयानकाः ।

वीभत्साद्भुतसंज्ञो चेत्यष्टौ नाट्येरसा. स्मृताः ।।[1]

अर्थात् – श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्भुत ये आठ रस माने गये हैं।

आचार्य मम्मट ने इन आठ भेदों के अतिरिक्त एक नवें रस "शान्त रस की स्थापना की है। वे कहते हैं कि "निर्वेद" भी एक स्थायिभाव होता है, इसलिए शान्त को भी नवाँ रस मान लेना चाहिए ।

निर्वेद स्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः ।। का प्र 35/47 ।।

दश रूपक कार कहते हैं कि कुछ लोग "निर्वेद" को स्थायिभाव न मानकर शान्त रस नहीं मानते हैं –

शममपिकेचिद् प्राहुः पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य ।। दश. 4/35 ।।

निर्वेदादिरता द्रप्यादस्थायी स्वदते कथम् ।

वैरस्यायैव तत्पोषस्तेनाष्टौ स्थायिनो मताः ।। दश 4/36 ।।

अतः काव्य प्रकाश कार आचार्य मम्मट के अनुसार ही रस का विवेचन प्रस्तुत किया जाता है। इसलिए नव रस मान्य है – (1) श्रृङ्गार (2) हास्य (3) करूण (4) रौद्र (5) वीर (6) भयानक (7) वीभत्स (8) अद्भुत और (9) शान्त।

शुम्भ वध महाकाव्य में प्रयुक्त रस .

शुम्भ वध महाकाव्य रस प्रधान होने के साथ भी भक्ति मय प्रधान महाकाव्य भी है। परन्तु रस का प्रसङ्ग होने से महाकाव्य का गहनावलोकन करने से ज्ञात होता है कि प्रस्तुत महाकाव्य श्रृङ्गार रस विहीन महाकाव्य है। श्रृङ्गार रस का मुख्यतः दर्शन ही नहीं हुआ है, कहीं-कहीं श्रृङ्गार के भाव हैं परन्तु विशुद्ध श्रृङ्गार नहीं है जैसे- आठवे सर्ग में बसन्त वर्णन में –

विहाय देशान्तरवासवासनां गृहाय गन्तुं पथिका प्रास्थिरे ।

प्रसार्य दृष्टिं बलभीमधिष्ठिता व्यलोकयन् पोषितभर्तृकापथि।। शु.व 8/37 ।।

यहाँ पर देश में रहने वाले पथिक घर के लिए प्रस्थान तो कर दिये हैं परन्तु अपनी प्रेषित भृर्तकाओं से मिल नहीं पाये हैं उधर अट्टालिकाओं से प्रेयसियाँ मार्ग देख रही हैं। अत. यहाँ पर विप्रलम्भ का मात्र भाव उत्पन्न है जो रस न होकर भाव में पर्यवसित हो जाता है। इसी प्रकार कुछ एक और दर्शनीय है जैसे- प्रवासी वाटिकाओं को देखकर मूर्छित होते हैं और पुनः चेतना प्रश्रृत कर रोते हुए ही चल देते हैं –

निरीक्ष्य मार्गे कुसुमैर लङ्कृतामशोकवीं मुमुहुः प्रवासिनः ।

कथाचिदेते पतिपद्य चेतनां रूदन्ते रस प्रतिचेलरग्रतः ।। शु.व.8/38 ।।

प्रपां प्रविष्टास्तरूणाः पिपासवः विलोक्य लावण्यवतीं चपालकीम् ।

तदोननेन्दुप्रतिबद्धदृष्टयो विरम्य पातुं सलिलं विसस्मरूः।। शु व 8/41 ।।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि मात्र भाव का ही बोध होता है। अत प्रस्तुत महाकाव्य में श्रृङ्गार रस नहीं है। यह श्रृङ्गार विहीन महाकाव्य है।

<u>हास्य रस</u> :

उपर्युक्त महाकाव्य में हास्य रस के भी दो ही उदाहरण ही स्पष्ट मिलते हैं। जिस छन्द में स्थायिभाव "हास" रहता है वह हास्य रस कहलाता है जैसे –

आकुञ्चय पाणिमशुचिं मूर्ध्नि वेश्या

मन्त्राम्भसां प्रति पदं पृषतैः पवित्रे ।

तारस्वरं प्रथितथूत्कमदात् प्रहारं

हा हा हतोऽहमिति रोदिति विष्णुशर्मा ।। का.प्र. 4/37 ।।

<u>महाकाव्य में हास्य रस</u> :

शुम्भ वध में मात्र निम्नलिखित श्लोक ही हास्य रस के मिलते है – जैसे तीसरे सर्ग में सेना प्रयाण के समय जाते हुए ऊँटों का वर्णन दृष्टव्य है –

मार्गस्थाना बबुरादिद्रुमाणां मध्ये स्थित्वा कण्टकान् भक्षयन्त : ।

दीर्घग्रीवा वक्रगत्या चलन्तः प्रायो जाता हास्यपात्र महामङ्गाः ।।"

।। शु.व 3/16 ।।

यहाँ "महागड़्गा" (ऊँट) आलम्बन विभाव है। लम्बी गर्दन होना टेढ़े मेढ़े ढंग से चलना, उद्दीपन विभाव है, हँसी का पात्र होना आदि का विचार अनुभाव है, लोगों के अनेक प्रकार के हँसी के भाव व्यभिचारि भाव है।ह्रास स्थायिभाव है। हास्य रस दृष्टिगोचर है।

उसी प्रकार प्रस्तुत श्लोक भी है –

वक्रग्रीवो लम्बमाना धरोष्ठः प्रोद्यत्पृष्ठो ह्रस्वकर्णोमहाड़्गः ।

पादक्षेपैः कुत्सिहैढौकमानो ग्रामीणानां हासयामास बालान् ।।शु व 3/24 ।।

(2) **करूण रस** :

जब दो में से एक की मृत्यु हो जाय वहाँ करूण रस होता है । जैसे –

हा मातस्त्वरिताऽसि कुत्र किमिदं हा देवताः क्वाऽऽशिषः

धिक् प्राणान् पतितोऽशनिर्हुतवस्तेऽड्.गेषु दग्धे दृशौ ।।

इत्थं घर्घरमध्य रूद्धकरूणाः पौराड्.गनाना गिर–

श्चित्रस्थानमपि रोदयन्ति शतधा कुर्वन्ति भित्तीरपि ।।

।। क प्र 4/38 ।।

यहाँ पर राजामाता आलम्बन विभाव, उसका दाादि उद्दीपन विभाव, रोदन अनुभाव, दैन्य, ग्लानि, मूर्च्छा आदि व्यभिचारिभाव है। उन सब सामग्री से अभिव्यक्त करूण राज है।

महाकाव्य में करूण रस:

शुम्भ वध महाकाव्य का गहनावलोकन करने पर भी करूण का कोई

उपयुक्त उदाहरण नहीं मिलता, फिर एक श्लोक 13वें सर्ग में मिलता है। जब निशुम्भ की मृत्यु को सारथी के मुख से सुनकर शुम्भ का हृदय विध जाता है। फिर भी वह धैर्य से आगे लड़न के लिए तैयार हो जाता है–

वृत्तं तदेन्निधमस्य बन्धोः सन्तप्त कालाय सशैल्य कल्यम्।

प्रविष्य कर्णं दनुजेश्वस्य सौभ्रात्रभाजो हृदयं विभेद ।। शु व. 13/11 ।।

केवल यही पर करूण रस झलकता है। क्योंकि शुम्भ विलाप भी नहीं करता –

निगृह्य शोकं विनिरूध्य वाष्पं स्थैर्यं च नीत्वा हृदि धैर्ययोगम् ।

नेतुं रथं युद्ध भुवं स्वकीयं शुम्भासुरः सारथिमादिदेश ।। शु व. 13/12 ।।

<u>रौद्ररस</u>: जहाँ पर व्यक्ति मरने या मारने पर उतारू होकर अपने प्रचण्ड कोध के प्रचण्ड रूप को प्रकट करें या बदला लेने के लिए उद्यृत हो जाय वहाँ रौद्र रस होती है – जैसे –

कृतमनुमतं दृष्टं वा यैरिदं गुरु पातकं

मनुजपशुभिर्निर्मर्यादैर्भवद्भिरूदायुधैः ।

नरकरिपुणा सार्धं सभीमकिरीटिना –

मयमहमस्टड्.नेदोमासैः करोमि दिशांबलिम् ।। का.प्र. 4/39 ।।

यहाँ कृष्ण, अर्जुन आदि आलम्बन विभाव है। द्रोणाचार्य की मृत्यु की सूचना उद्दीपन विभाव है। बदला लेने की भावना अनुभाव और कृष्ण, अर्जुन, भीम आदि पर क्रोधोक्ति व्यकभिचारि भाव है। क्रोध स्थायि भाव है इन सबसे व्यञ्जित रौद्र रस है।

<u>महाकाव्य में रौद्र रस</u> ·

10वें सर्ग में धूम्रलोचन वघ के बाद शुम्भ क्रोधित होकर कहता है कि हे देत्यों वह स्त्री जीवित या मृत जैसे भी मिले पकड़ लाइए–

जीवन्तीं तामुद्धतां पाशबद्धमानेतुं वा संशयो यदि वा स्यात् ।

यूयं सर्वे तर्हि तां तं च सिंह शास्त्राघातैकर्न्निदयं मर्दयद्धम् ।।

।। शु व 10/9 ।।

यहाँ पर दुर्गा आलम्बन हैं – धूम्र लोचन की मृत्यु का समाचार उद्दीपन विभाग समाचार सुनकर अनेकों विचारों का आना, मारने के लिए ललकारना, यहाँ व्यभिचारि भाव है। क्रोध स्थायिभाव है। यहाँ रौद्र रस है। तेरहवें सर्ग और बारहवें सर्ग में भी कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं –

समातृकां त्वां समृगाधिपां च निहत्य युद्धे सह भद्रकाल्या ।

कवोष्णरक्ताञ्जलिभिस्तवाऽहंमृतं निशुम्भं परितर्पयामि ।। शु.व 13/24 ।।

नाशं चकर्थ बलिनो महिषासुरस्य या कैतवेन भुवनत्रयजित्वरस्य ।

तां त्वां निषूद्य परिपन्थिनिदानवानां वैरंचिरन्तनमहं प्रतितर्पयामि ।।

।। शु.व 12/24 ।।

हिंस्रं च वाहनममुं तव नाशयित्वा कण्ठीरवं क्षतिकरं मम सैनिकानाम् ।

तच्चर्मणाऽहमचिरादसुराधिपस्यसिंहासनं मणिमयं समलङ्करिष्ये ।।

।। शु व. 12/16 ।।

उपरोक्त श्लोक में क्रोध स्थायिभाव है। दुर्गा, आलम्बन, रक्तबीज आदि के बध उद्दीपन हैं और रौद्र रस है।

<u>वीर रस</u> :

वीरता पूर्ण कार्य या बातों का जहाँ उल्लेख हो वहाँ वीर रस होता है जैसे –

क्षुद्रा संत्रासमेते विजहत हरयः क्षुण्णशक्रेभकुम्भा ।
युष्मद्देहेषु लज्जां दधति परममी सायका निष्पतन्त : ।।
सौमित्रः ! तिष्ठ ! पात्रं त्वमसि नहि रूषांनन्वहं मेघनादः ।
किञ्चिद्भ्रूभङ्गलीला नियमित जलधिं राममन्वेषयामि ।।[1]

।। का.प्र 4/40 ।।

यहाँ राम आलम्बन हैं, उनके द्वारा समुद्र बन्धन उद्दीपन विभाव, क्षुद्र वानर आदि की उपेक्षा और राम की खोज अनुभाव ऐरावत के गण्स्थल के भेदन का स्मरण आदि गम्य गर्व व्यभिचारिभाव हैं। राम से लड़ने का उत्साह स्थायिभाव है। अत. वीर रस व्यञ्जित होता है।

<u>महाकाव्य में वीर रस</u> :

मृतोऽसि सम्मूढ, मम प्रहारं सोढुं न शक्नोषि वृथाप्रलापिन् ।
कस्त्वं ममाऽग्रे मशको दुरात्मन्निति बुवाणा उभयेप्रजह्नुः ।।[2]

यहाँ पर, योद्धा आलम्बन है, एक दूसरे पर प्रहार कला उद्दीपन विभाव है, एक दूसरे पर आरोप प्रत्यारोप अनुभाव है। एक दूसरे को भवाक के समान मानना गर्व व्यभिचारिभाव है। लड़ने का "उत्साह" स्थायिभाव है। अतः वीर रस व्यञ्जित है।

---

1 हनुमन्नाटक से

2. शुम्भ वध – 4/23

चतुर्थ सर्ग में महापुराण के युद्ध वर्णन में रौद्र द्रष्टव्य है –

अश्राच्धिरूढा धृतवारबाणा दीर्घेण शूलेन च युध्यमानाः ।

आम्रेऽयन्तो रशब्दमुच्चैः कृतान्तवद्दैत्यपतेस्त आसन् ।। [3] शु व. 4/70 ।।

इसी तरह नवें सर्ग में धूम्रलोचन देवी पर क्रोधित होता है–

याहि सत्त्वरमतस्तदन्तिकं निर्भरं जहि द्धि गर्वमात्मनः ।

मा भजस्व मम हस्तकल्पितं केशकर्षण पराभवं शिवे ।। [4]

दशम सर्ग में दैत्यराज पुनः दैत्यों को फटकारता है –

हेहो वीरौ चण्डमुण्डौ भवन्तो सेनाबह्वीमस्मदीयां गृहीत्वा ।

गत्वा तूर्ण शैलश्रृड्.गस्थिता केशग्राहं दुर्मदामानेयताम् ।।[5]

हंहो निशुम्भ पृतनाधिपते तरस्विन् येन त्वया भुजबलाद् विजिता त्रिलोकी।

स त्वं वभूविभ जितेन्द्र वृथाप्रयासो मां दुर्बलां हि चतुरड्गबलो ग्रहीतम् ।।[6]

द्वादश सर्ग में निशुम्भ के अचेत होने पर –

दृष्ट्वाऽनुज निपतितं व्रणितं पृषत्कैः सम्मूर्च्छितंमृतमिव प्रतिभासमानम्

शुम्भासुरः परिवृतः स्वबलैरूदग्रैरभ्याययौ भगवतीं कुपितंरथस्थः ।।[7]

---

3 वही– 4/70, 4. वही 9/13, 5. वहीं– 10/8

6 वही – 12/10, 7. वही – 10/28

वीर रस के भेद :

कुछ आचार्यो ने युद्ध वीरः दानवीर और दयावीर भेद किये हैं। साहित्य दर्पण कार ने तीन के स्थान पर चार प्रकार का वीर रस माना है –

"स च वीरो दान वीरो धर्मवीरो युद्धवीरो दयावीरश्चेति चतुर्विधः–सा0दर्पण

कुछ लोग वीर रस में ही सबको समाहित करके केवल युद्धवीर ही मानते हैं।

भयानक रस :

जहाँ "भय" स्थायिभाव होता है वहाँ भयानक रस होता है।

जैसे – ग्रीवाभुङ्गाभिराम मुहुरनुपतति स्यन्दने वद्धदृष्टिः
पश्चार्द्धेन प्रविष्टः शरपतनभयाद् भूयसा पूर्वकायम् ।
दर्भैरर्द्धविलीढैः श्रमविवृत मुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
प्रश्योदग्रप्लुप्तत्वाद्वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति ।।[1]

।। का0पृ0 4/41 ।।

यहाँ राजा या रथ आलम्बन, बाण लगने का भय और अनुसरण उद्दीपन गर्दन मोड़ना और भागना आदि अनुभाव, त्रास, श्रम आदि व्यभिचारिभाव है। "शरपतनभयात्" में भण पद का उपादान करने से स्थायिभाव की स्वशब्दवाच्यता का दोष नहीं आता है क्योंकि, शरपतन भय वही केवल उद्दीपन है न कि स्थायिभाव। रथ से या राजा से उत्पन्न भय स्थायिभाव है। अतः यहाँ भयानक रस का उदाहरण है।

---

1 अभिज्ञान शकुन्तला से – प्रथम अंक

महाकाव्य में भयानक रस :

वीर रस प्रधान होता हुआ भी शुम्भ वध महाकाव्य विशुद्ध भयानक रस रहित है कुछ छाया जरूर दिखाई देती है स्वाभाविक चित्रण की ओर प्रेरित करती है। कुछ श्लोक प्रस्तुत है – चतुर्थ सर्ग में शुम्भासुर का अन्यों राज्यों से युद्ध का प्रसङ्ग है .–

जगर्ज सर्वङ्कषशङ्.रणध्वनिसिंहनादव्यामिश्रितोऽभूत तुमुलो निनादः ।।

।। शु व. 4/25 ।।

पञ्चम् सर्ग में देवासुर सङ्गाम में भयानक रस द्रष्टव्य है –

कल्पान्तवत् क्षुभितभूतपञ्चकं सर्वङ्.कषं त्रिभुवनप्रकम्पनम् ।

विक्षिप्तितिग्मरूचिचन्द्रतारकं दैवासुरं तदभवन्महारणम् ।।

।। शु व 5/45 ।।

अट्टाट्टहासमशिवं विदधे शिवानां फेत्कारशब्दसदृशशिवदतिका च।

त्रेसुस्ततःसमुदितादसुरा समस्ता मन्त्रध्वनेरिव पिशाचगणाद्विजानाम् ।।

।। शु.व 12/33 ।।

अट्टाट्टहासेन च भद्रकाली कण्ठीरवो भैरव गर्जितेन ।

तं वृहयामास दिगन्तराले वेवं पुराणेन यशेहिराहासः ।। शु व 13/17 ।।

अभूतपूर्वं जगदम्बिकायास्तन्मुष्टिसयुद्धं दनुजाधिपेन ।

दिदृक्षवो व्योमघटे समीयुर्गन्धर्व– विद्याधर– सिद्ध – साध्या : ।।

।। शु व 13/47 ।।

यह सभी पूर्वोक्त उदाहरणों में वीर रस व्यञ्जित है ।

वीभत्स रस :

जहाँ पर जुगुप्सा स्थायिभाव हो वहाँ वीभत्स रस होता है –

जैसे –

उत्कृत्योकृत्य कृति प्रथगमथ पृथूम्त्सेधभूयांसि मांसा

न्यसस्फिक्पृष्ठपिण्ड्याद्यवयवसुलभान्युग्रूतीनि जग्ध्वा ।।

आर्त्तः पर्यस्तनेत्रः प्रकटितदशनः प्रेतरङ्क. करङ्का–

दङ्कस्थादस्थिसंस्थं स्थपुगतमपि क्रव्यमत्यग्रमत्ति ।।[1]

।। का.प्र 4/42 ।।

अर्थात् पहिले खाल को उखाड़–उखाड़ कर कन्धे, नितिम्ब, पीठ. पिण्डली आदि अवयवों में ऊँचे उभरे हुए अधिक मात्रा में उपलब्ध, भयंकर दुर्गन्धयुक्त, सड़े हुए मांस को खा चुकने के बाद (दूसरा छीन न ले इस दृष्टि से) चारों ओर देखता हुआ दाँत निकाले हुए भूखा, दरिद्र प्रेत गोद में रखे हुए मुर्दे की हड्डी के भीतर लगे हुए और गढ़ों में स्थित क्रव्य (कच्चे मांस) को भी धीरे–धीरे खा रहा है।

यहाँ दरिद्र प्रेत आलम्बन, खाल को उखाड़ना, मांस को खाना, उद्दीपन उसको देखने वाले का नाम बन्द करना, मुँह फेर लेना, थूकना आदि अनुभाव और उद्वेग आदि व्यभिचारिभाव हैं और जुगुप्सा स्थायिभाव है। अतः वीभत्स रस परिलक्षित है।

महाकाव्य में वीभत्स रस :

उपरोक्त उदाहरण की तरह तो शुम्भ वध में वीभत्स रस नहीं है फिर भी वीभत्स रस कुछ पद्यों में व्यञ्जित होता है।

---

1. मालती माधव – अंक –5

जैसे – चतुर्थ सर्ग में पञ्जाब नरेश से युद्ध के प्रसङ्ग में वीभत्स रस दर्शनीय है–

रक्तासबंस्वादुरसं पिवन्तः कृत्वाऽट्टहासं ननृतुः पिशाचाः ।

आस्वादन्तः पिशितं मृतानां ववाशिरे व्यात्तमुखाः श्रृगाला .।।

।। शु व 4/28 ।।

यहाँ पिशाचगण आलम्बन विभाव है, स्वादिष्ट रक्तासव का पान करना, अट्टहास करना, नाचना आदि उद्दीपन विभाव है। देखने वाले का व्यग्र होना, डरना आदि आदि अनुभाव, उद्वेग करना व्यभिचारि भाव है। जुगुप्सा स्थायिभाव है। इसी प्रकार मृतो के मांसों का स्वाद लेने वाले मुख फैलाये हुए सियारों की स्थिति पर घटित होता है। अतः यहाँ पर वीभत्स रस है। इसी प्रकार अन्यत्र भी नवे सर्ग में धूम्रलोचन की मृत्यु के बाद अन्य दैत्यों के साथ युद्ध के वर्णन में वीभत्स रस दर्शनीय है –

"कौणपारूधिरमांसभोजिनो व्यन्तराश्च कटपूतनाश्तथा ।

शोणितासव मवाप्य कर्परे वन्धुभिः सह कवोष्णमापिवन् ।।

।। शु व 9/36 ।।

आन्त्रसन्तति विनिर्मितं स्रजो कीकस ग्रथित कर्णभूषणाः ।

प्रेतपाणिकृतलम्बिमेखला आनटन् युद्धपिशाचयोषितः ।।

।। शु व 9/37 ।।

इन स्थलों पर भी वीभत्स रस व्यञ्जित होता है ।

<u>अद्भुत रस</u> :

जहाँ पर आश्चर्य प्रकट हो, विस्मय स्थायि भाव हो वहाँ अद्भुत रस होता है –

जैसे – चित्रं महानेष बतावतारः क्वकान्तिरेषाऽभिनवैव भङ्गिः ।

लोकोत्तरं धैर्यमहो प्रभावः काऽप्याकृतिर्नूतन एष सर्गः ।।

।। का प्र 4/43 ।।

यहाँ "वामन" आलम्बन, कान्ति तथा गुणातिशयादि उद्दीपन, स्तुति आदि अनुभाव, मति, धृति, हर्षादि व्यभिचारि भाव और "विस्मय" स्थायिभाव है। अतः अद्भुत रस है ।

महाकाव्य में अद्भुत रस :

समुद्र मन्थन के प्रसङ्ग में –अद्भुत रस द्रष्टव्य है।

निर्मथ्यमानस्य महार्णवस्य सफेनपुञ्जाः पयसां प्रवाहाः ।

समुत्पतन्तः स्फुटपुण्डरीकामाकाशगङ्गामपरां वितेनुः ।।

।। शु. व 1/15 ।।

समुच्छलद्भिः सगिरिः पयोधेः कल्लोलजालैरभिषिच्यमान. ।

प्रदोषपूजा समये पुरारे ज्योर्तिमयं लिङ्गमिवाऽऽबभासे ।।

।। शु व. 1/16 ।।

समुत्थितैर्निर्मथनप्रसङ्गे पयोनिधेरम्बुकणैः समन्तात् ।

आच्छादितं विष्णुपदं दिवाऽपि निरन्तरं तारकितं बभूव ।।

।। शु.व 1/17 ।।

इन तीनों श्लोकों में त्रिक् में अद्भुत रस है क्योंकि मन्दराचल आलम्बन विभाव है मथे जाते हुए समुद्र में उठती हुई सफेद पुञ्जों की धारा और लहरों का ऊपर तक उठना आदि अनुभाव, हर्षादि और (ज्योर्तिलिङ्ग जैसे प्रतिबिम्बित होना) व्यभिचारि भाव है और विस्मय स्थायिभाव है अतः अद्भुत रस की चर्वणा हो रही है।

शुम्भ महाकाव्य में शान्त रस का प्रयोग कहीं भी नहीं हुआ है चर्तुदश सर्ग में मात्र भक्ति भाव ही दृष्टव्य है। इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य में मात्र सात रसों का ही प्रयोग परिलक्षित होता है।

<u>शुम्भ वध– महाकाव्य में रस की समीक्षा</u>

शुम्भ वध महाकाव्य में "शुम्भ" नामक दैत्याधिपति के भाई निशुम्भ और सेना सहित शुम्भासुर की मृत्युपर्यन्त वर्णन है। प्रथम सर्ग में शुक्राचार्य के द्वारा शुम्भ निशुम्भ को देवताओं के प्रति भड़काकर दिग्विजयी बनाने तक शुम्भासुर की वीरता एक दैत्य के रूप में न होकर साधारणतया शूरवीर के पराक्रम के द्वारा दर्शाया गया है। शुम्भासुर को कहीं अत्याचारी नहीं बताया गया है। यदि कुछ अनुचित कार्य हुआ है तो मात्र प्रमाद वश ।

इन सबके होते हुए भी शुम्भ वध का अङ्.गी रस वीर रस है क्योंकि पूरे महाकाव्य में कहीं न कहीं युद्ध जरूर हो रहा है या युद्ध प्रसङ्ग छिपा है। मात्र चतुदर्श सर्ग शेष है। प्रथम सर्ग, तृतीय सर्ग, चतुर्थ सर्ग, पञ्चम सर्ग, नवम् सर्ग, दशम सर्ग, एकादश सर्ग, द्वादश सर्ग, त्रयोदश सर्ग पर्यन्त वीर रस भरा पड़ा है। यह महाकाव्य साहित्य में अपना एक स्थान रखेगा।

अत. वीर रस प्रधान महाकाव्य है।

श्रृङ्.गार रस और शान्त रस है ही नहीं अतः हास्य, करूण, वीभत्स, रौद्र, भयानक, अद्‌भुत और वीर रस है। अतः प्रस्तुत महाकाव्य ओज गुण एवं प्रसाद गुण सम्पन्न वीर रस प्रधान महाकाव्य है।

****

अष्टम् अध्याय

(गहाकवि की भाषा शैली एव अन्य महाकवियों का) महाकवि पर प्रभाव

*****

(भाषा शेली एव अन्य महाकवियों का प्रभाव)

(शुम्भ वध की भाषा शेली)

महाकवि वसन्त त्रयम्बक शेवडे जी एक उच्च कोटि के महाकाव्यकार है । उन्होंने स्वय कवित्व की प्राप्ति और कवि होने का दम्भ नहीं भरा है । वे स्वय अपने को भक्ति भावना से ओत - प्रोत मानते हे । उनकी एक सबसे विशेषता यह है कि इन्होने स्वयं यह प्रदर्शन नहीं किया हे कि मे महाकाव्यों की रचना कर रहा हू बल्कि यह दिखाया हे कि मुझे देवी की कृपा से सब कुछ प्राप्त हुआ और आम लोगो और डा0 ब्रह्मानन्द त्रिपाठी और डा0 भोला शकर व्यास, डा0 रेवा प्रसाद द्विवेदी आदि अनेकानेक विद्वानो के आग्रह पर महाकाव्यो की रचना की । जिनमे विन्ध्यवासिनी विजय, शुम्भवध और देवदेवेश्वर महाकाव्य जेसे तीन महाकाव्यो सहित अनेकानेक रचनाओ को अपने कर कमलो से लेखनीबद्ध किया । प्रस्तुत प्रकरणानुसार शुम्भवध की भाषा शेली निम्न रूप मे व्यक्त की जा सकती हे -

(1) **रीति** :- शेवडे जी के महाकाव्यो के अध्ययन से पता चलता कि इन्होंने मात्र प्रसाद गुण गुम्भित वेदर्भी रीति का ही प्रयोग किया हे, जबकि भवभूति आदि ने तो गोरी और वेदर्भी का प्रयोग किया हे ।

वेदर्भी रीति की मुख्य विशेषताए हे - मधुर शब्द, ललित रचना, समासो का सर्वथा अभाव या स्वल्प समासयुक्त पदो की रचना । अत आचार्य विश्वनाथ ने लिखा है -

माधुर्यव्यञ्जकेर्वर्णे रचना ललितात्मिका।
आवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वेदर्भी रीतिरिष्यते ।।[1]

---

1 सा0 द0 6/ 2.3.

अध्ययन से पता चलता है कि ये मुख्यत कालिदास से ही प्रभावित महाकवि है । कालिदास ने यदि माधुर्य का प्रयोग किया तो इन्होने केवल प्रसाद और कहीं ओज गुण का प्रयोग किया है जब कि सम्पूर्ण महाकाव्य वीर रस प्रधान है ।

इन्होंने स्वय वेदर्भी रीति की प्रशंसा की है -

वर्वर्ति सर्वत्र कविप्रपञ्चे गुणेरनूनेरिह कालिदास' ।

यदाश्रिता मञ्जुलसन्निवेशावेदर्भी रीति प्रथते पृथिव्याम् ।।

माधुर्य ओज एव प्रसाद गुण युक्त पद रचना - शेवडे जी के द्वारा रचित शुम्भ वध मे माधुर्य भी है । माधुर्य के व्यञ्जन वर्णो के आधार पर तो माधुर्य है परन्तु श्रृगार रस नहीं है । मात्र भावों के आधार पर माधुर्य है । प्रसाद गुण की प्रस्तुत महाकाव्य मे भरमार है । कहीं - 2 ओज गुण है । इसकी यह भी विशेषता है कि महाकाव्य तो वीर रस का है । परन्तु वीर रस के वर्णन मे भी इन्होंने प्रसाद गुण का ही वर्णन किया है । प्रसाद गुण की विशेषता होती है कि पढ़ते ही अर्थ समझ में आता चला जाय ।

इस प्रकार शुम्भ वध मे ओज एवं प्रसाद गुण ही मुख्य है । शेष गुणों का विवरण गुण प्रकरण मे दृष्टव्य है ।

भाषा - शेवडे जी का भाषा पर अधिकार है । शुम्भ वध मे सरल एव सरस तथा सुबोध भाषा का प्रयोग हुआ है । समास बहुल पदों की रचना नहीं है । श्री हर्ष जेसे कवियों की तरह दुरूह पदों का प्रयोग नहीं किया गया है । महाकवि ने अपनी भाषा को आज के युग को परिलक्षित करते हुए

ही प्रयोग किया है । क्योंकि श्री हर्ष और भारवि जैसे विद्वानो की भाषा सबके वश भी नहीं है । अत. कालिदास आदि के समान ही शुम्भवध मे कार्य विषय को ध्यान मे रखते हुए बनाया गया है । सरल पदो का प्रयोग जैसे -

वसुन्धराया कुलनायिकाया सुवर्ण काञ्चीव विभासमाना ।
गरीयसी सा नगरी व्यतानीदसम्मित दैत्यपते प्रमोदम् ।।

फुल्लाविलासविपिनेषु मल्लिकामुञ्जन्ति षट्पदकुलानिमञ्जुलम् ।
द्रष्टाश्र पङ्.कजवनेक खञ्जना आनन्दयन् हि दितिनन्दनानाम्।।

गते विलोप शिशिरे सभं हिमै समुच्छ्रिते नूतनपल्लवध्वजे ।
अजूघुषच्चान्यभृत कुहुरवैर्वसन्तसाम्राज्यमखण्डित भुवि ।।

3 भाषा मे सक्षेप और ध्वन्यात्मकर्ता - कालिदास के समान शेवडे जी ने अपने महाकाव्यों मे भाषा में सक्षेप और ध्वन्यत्मकता को प्रदर्शित किया है । "शिशुपाल वध और किरातार्जुनीयम्" की तरह एक - एक सर्ग मे एक - एक प्रसगो का वर्णन शुम्भ वध में नहीं है बल्कि एक एक सर्गो मे कई प्रसग है । जैसे द्वितीय सर्ग मे पूरी तैयारी भी हो जाती है और समस्त औपचारिकता -ओ को पूर्ण कर के शुम्भ आक्रमण भी कर देता है । मात्र दो श्लोक मे वर्षा और शरद ऋतु के मध्य का समय प्रदर्शित कर दिया गया है । श्री हर्षादि मे जिस वर्णन के लिए एक - एक सर्ग लगाया है, शुम्भ वध मे केवल 15 या 20 श्लोकों मे ही वर्णित है ।

शुम्भवध मे ध्वन्यात्मकता पद - पद में झलकती है ।

धराभुज नीतिपरायणस्य जयैषिणो विक्रमण्डितस्य ।

अनड्गरड्गे निपुणस्य यून प्रयाति कान्तेव वश जयश्री ।।

-शु0 व0 -1/38

आस्थाम मानसजलेषु सुख निवास

वर्षादिनेषु सकलेल्वपि राजहसा ।

आपृच्छ्य साश्रुनयना निजबन्धुवर्ग

स्व स्व जलाशयपदाश्रयन्त ।।

- शु0 व0 -2/22

प्राच्या स्फुरद्दाडिमवल्लिकायां पूर्वाचलस्थाणुमुपाश्रितायाम् ।

अनुरूपुण्य प्रथम परस्तात् फलं नव भास्करविभूमासीत् ।।

- शु0व0 -4/21

4 वर्णनीयता · शेवडे जी ने एवं सीधे - साधे ढग से प्रसग को प्रस्तुत किया है । शुम्भवध का वर्णन ऐसा लगता है जेसे कि महाकवि एक जगह खडे हो कर किसी कथानक को पढ रहे हों, जो धारा प्रवाह है । जिसमे कहीं भी रूकावट नहीं झलकती । तुरन्त मगलाचरण, एक श्लोक मे कवि ओर काव्य दोनों का परिचय तथा वश परिचय सभी हो जाता है सीधी प्रसग उठा कर प्रथम सर्ग मे ही शुम्भ द्वारा पृथ्वी की विजय के लिए तेयारी द्वितीय में घोडो आदि का चयन चतुर्थ मे पृथ्वी को जीत लेता है ओर पञ्चम सर्ग मे सभी देवताओं को जीत कर अमरावती को वश मे कर लेता है और देवता विचार - विमर्श कर के देवी के पास जाते है । छठे म हिमालय वर्णन 30 श्लोक मे कर के 12 श्लोक मे गंगा वर्णन और 21 श्लोक मे देवी की स्तुति के साथ सर्ग समाप्त हो जाता है ।

अत शेवडे जी ने कथानक को बोझिल करने का प्रयास ही नहीं किया है । जितनी जल्दी हो सका है । कथानक आगे बढता गया ।

5 प्रसगानुकूल भाषा का प्रयोग
- - - - - - - - - - - - - - - - - शुम्भवध मे प्रसगानुकूल भाषा का प्रयोग है पूरा - पूरा शुम्भवध वीर रस प्रधान होते हुए भी भक्ति भाव से परिपूर्ण है । भक्तिभाव की प्रबलता इतनी है कि शुम्भ के सेवक सुग्रीव मे भी शिव - पार्वती को देखने से भक्ति भावना जाग जाती है ।

श्रृगाररस का प्रयोग नहीं है । वीर - रस का प्रयोग होते हुए भी ऐसा ओज गुण है, जो प्रसाद गुण की छाया से ढका है ।

6 वाच्यार्थ एव सक्षिप्त शैली का प्रयोग
- शुम्भवध को अनावश्यक बोझित नहीं किया गया है । कहीं - कहीं तो एक ही श्लोक मे एक प्रसग समाप्त हो गया है, कितना भी बड़ा प्रसग क्यों न हो 20 या 25 श्लोक से ज्यादा नहीं है । कोई सर्ग ऐसा नहीं है जो केवल एक प्रसग वाला हो । अत जितना कवि को कहना है उतना ही कहा गया है । ज्यादा कल्पना मे उडने का प्रयास शुम्भवध मे नहीं है बल्कि विन्ध्यवासिनी विजय आदि मे बढा चढा कर रखा गया है ।

शुम्भवध को पढने मात्र से उसका प्रसंग आँखों के सामने नाचने लगता है ।

7 रसपरिपाक
- - - - - - शुम्भ वध महाकाव्य में श्रृंगाररस का नितान्त अभाव है । हास्य रस के भी एक दो श्लोक है । मुख्य रूप से वीभत्स, भयानक, वीर, अद्भुत रस आदि का प्रयोग किया गया है ।

वीर रस प्रधान शुम्भ वध और देवदेवेश्वर महाकाव्य लिख कर उदार चरित मर्यादापालक निकले । अत कालिदास श्रृगार के आश्रित रहे तो शेवडे जी ने श्रृगार का विरोध किया, क्योंकि कालिदास ने कुमार सभव मे अष्टम सर्ग मे पार्वती और शिव के वैवाहिक सुख को इतना घोर सम्भोग श्रृंगार मे परिवर्तित कर दिया है, शायद पार्वती और शिव उस अमर्यादा की सीमा पर पहुंचे ही न रहे हो, जैसे -

नाभिदेशनिहित सकम्पया शकरस्य रुरुधे तया कर ।
तद्दुकुलूथ चाभवत्स्वय दूरमुच्छ्वसितनीविवन्धम् ।।कु स 8/4 ।।

शूलिन करतलद्वयेन सा संनिरुध्यनयने हृताशुका ।
तस्य पश्यति ललाटलोचने मोघपत्नविधुरा रहस्यभूत ।।कु स 8/7 ।।

सस्वजे प्रियमुरोनिपीडनं प्रार्थित मुखमनेन नाहरत् ।
मेखलाप्रणयलालता गत हस्तमस्य शिथिलं रुरोध सा ।।कु स 8/14 ।।

अत इतनी घोर विलासिता को प्रदर्शित करना अनुचित ही है । इन्हीं सब का शेवडे जी के मन मे घृणा उठने का कारण है । फिर भी शेवडे जी ने कालिदास का अनुसरण किया ही है ।

कालिदास ने ऋतुसहार के तृतीय सर्ग मे शरद्ऋतु मे इन्द्रधनुष इत्यादि ना दिखाई देने का वर्णन किया है -

नष्ट धनुवलभिदो जलदोदरषु सोदामिनी स्फुरति नाद्य वियत्पताका ।
धुन्वन्ति पवनैर्न नभोवलाका पश्यन्ति नोन्नतमुखा गगन मयूरा ।।

ऋतु0 3/12

इसी प्रसग को शेवडे जी ने सरस और पद लालित्य मे प्रस्तुत किया हे-

शक्रायुद्ध न ददृशे, न घने बलाका, नाऽऽभूसयन् सरसशाद्वलमिन्द्रगोपा ।

सस्येर्निर्वसुमती, नलिनेस्तडागा शीताशुना च रजनी रुरुचे तथाऽपि ।।

शु0 व0 2/22

वसन्त वर्णन मे भी ऋतुसहार के छठे सर्ग मे पुरुष कोकिल अपनी प्रियतमा कोकिल को केसे चूम रहा है आदि का वर्णन कवि पर प्रभाव डाला हे । जेसे -

पुँस्कोकिलश्यूतरसासवेनमत्त प्रिया चुम्बति रागहृष्ट ।

कूजदद्विरेफोऽप्ययमम्बुजस्थ प्रिय प्रियाया प्रकरोति चाटु ।।

ऋतु0 6/16

इसी कथन को शेवडे जी ने इस प्रकार कहा है -

निशेव्य नव्या सहकारवल्लरि कषायकलकण्ठ कोकिलो युवा ।

व्यधत्त सन्तर्जनशास्त्रपण्डितो मनस्विनामपि मानभञ्जनम् ।।

शु0 व0 8/15

ऋतु सहार मे ही अशोक के फूल देखने मात्र से कामिलियों के हृदय को शोक से भर देते हे -

कुर्वन्त्यशोका हृदय सशोक निरीक्ष्यमाणा नवयोवनानाम् ।।

ऋतु0 6/18

तो शेवडे जी आमों के ही नवाड् कुर छटा से कामिजनो के हृदय का वेधान करा देते हे -

यथा यथा प्रादूरभून्मनोहरा रसालवृक्षेषु नवाड् करच्छरा ।

तथा तथा कामिजनस्य मानस चकार विद्ध कुसुमेषु सायक ।।

शु0 व0 6/14..

इस वर्णन के बाद भी समस्त वसन्त वर्णन, पर ऋतुसहार मे वर्णित वसन्त वर्णन का प्रभाव है । जिसका भाव तो वही है मात्र शब्दों मे थोडा कुछ परिवर्तन है ।

हिमालय वर्णन पर भी कुमार सभव के हिमालय वर्णन का प्रभाव है, जेसे - चमरी गाये अपनी पूँछ हिला हिलाकर रात्रि मे दोडती है, तो मानो वे हिमालय का पूँछ से पड् खा करती है -

लाड् गूल विक्षेपे वालव्यजनेश्चमर्य ।।कु स ।/।3।।

यही वस्तु निर्देश शुम्भ वध मे इस प्रकार है -

अमरीकबरीभरोपम चलयन् वालधिमत्र कोमलम् ।

कुरुते चमरीगण स्वय कुतूकादस्य नगस्य बीजनम् ।।शु0 व0 6/9.

रघुवश मे जगल मे गाय चराते राजी दिलीप जगली हाथी लगते है, तो शुम्भवध मे शुम्भ दिग्विजय के समय जगली भैंसा लगता है -

तमापतन्तं निजराजधानीमभ्यापयो पञ्चनदाधिनाथ ।

तड् गेण शार्दूलमिवाऽरून्धन् बलावलिप्तो महिषो वनस्थ ।। शु व 4/20 ।।

रास्ते मे राजा दिलीप के ऊपर लताओं से ऐसे फूल गिर रहे थे मानो लता रूपी कन्याए लावे की वर्षा करती हो --

अवाकिरन्बाललता प्रसूनेराचारलाजेरिव पोरकन्या ।।रघु0 2/10 . ।।

तो जब शुम्भ वध मे युद्ध के पहले जब शुम्भासुर शमी पूजन आदि के लिए निकलता है तो वास्तविक रूप से लोटते समय अटारियों से स्त्रियाँ लावे की वर्षा शुम्भासुर के ऊपर करती है-

सम्भावितो युवतिभि पथिलाजवर्षै

सौधस्थिताभिरविशन्नि जुराजधानीम् ।।शु व 2/44 ।।

इन अनेकानेक तथा अन्य प्रमाणों के आधार पर यह जोर दे कर कहा जा सकता है कि महाकवियो मे सर्वाधिक प्रभाव कालिदास का शेवडे जी पर पडा है । अत यदि इन्हे उत्तर कालिदास कहा जाय तो अतिश्योक्ति नही होगी ।

****

8 अलकार विधान

--------- शुम्भवध मे श्लोक, रूपक, उपमा, अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, समासोक्ति, विभावना, परिकर, विशेषोक्ति, दृष्टान्त, सकर, ससृष्टि - विशेष, उदात्त तुल्योगिता विनोक्ति, व्याजोक्ति आदि अलकारो का वर्णन है।

अन्य महाकवियों का शेवडे जी पर प्रभाव

शेवडे जी की कृतियों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि इनके कवित्व पर कुछ कवियों की छाप है, जो इस प्रकार है -

भारवि और माघ का प्रभाव

--------------- प्रथम सर्ग मे यत्र - तत्र सन्निविष्ट राजनीतिक वेशारद्य भारवि और माघ की कृतियों का बलात् स्मरण करा देती है । जेसे - उपाययुक्त, व्यवहारकुशल राजा के पास लक्ष्मी स्वय अपनी चचलता छोडकर सुशोभित होती है -

तन्वन्नुपायांश्चतुरो यथावन्तिवर्तयेत् राजति राजलक्ष्मी ।।

शु0 व0 1/4।

माघ तीन शक्तियो और छ गुणो का उल्लेख करते है -

षड्गुणा शक्तयस्त्रिस्र सिद्धयस्योदयास्त्रय ।।

शु0व0 2/26

शेवडे जी भी छ: गुणों का सकेत तथा तीनों शक्तियो का वर्णन करते है -

उत्साह शक्ति प्रभुशक्तिरेवं मन्त्रस्य शक्तिस्त्रितयं तदेतद् ।।

शु0 व0 -

तथा गुण संकेत के सातवं सर्ग में वृहस्पति के मुख से स्पष्ट हो जाता है-

नीतिशास्त्र निपुणा इह सन्धि विग्रहादहिततरं कथयन्ति ।।

शु० व० - 7/14..

माघ ने शिशुपालवध की रचना की तो शेवडे जी ने शुम्भवध की रचना की । माघ ने शिशुपाल को निकृष्ट, अत्याचारी, यहाँ तक कि रावण का अवतार माना है तो इन्होंने शुम्भ नामक देत्य को सबसे अच्छे मानवीय गुणों से परिपूर्ण कर दिया है ।

भारवि ने किरातार्जुनीयम् में वनेचरादि के सुख से हितकर बातों को कहलवाया है तो शेवडे जी ने शुक्राचार्य के द्वारा शुम्भ और निशुम्भ को राजनीतिक उपदेश दिलाते हैं । "किरातार्जुनीयम्" में वनेचर कहता है-

कियासु युक्तैर्नृप। चारचक्षुषो, न वञ्चनीयाप्रभवोऽनुजीविनः। किरात। 1/4..

शुक्राचार्य शुम्भासुर से कहते हैं -

भृत्यान् सखीन् बन्धुजनान्मात्यान् सम्मानयेत, क्षोणिपतिर्यथार्हम्

।। शु.व. 1/44..।।

अतः शेवडे जी पर भारवि का प्रभाव झलकता है ।

माघ ने नारद की उपमा हिमालय से की है -

दधानमम्भोरुहकेसरद्युती जटाः शरच्चन्द्र मरीचिरोचिसम् ।

विपाकपिङ्गास्तुहिनस्थलीरूहो धराधरेन्द्र व्रततीततीरिव ।।

शु० व० 1/5..

तो शेवडे जी ने हिमालय की उपमा भगवान् शिव से की है -

प्रथित प्रथमो महीयसामपथाचारजुषा दुरासद ।

भगवानिव भूतिभूषिते हिमवान् भाति भृश नगाधिप ।।

शु0 व0 - 6/1

पदलालित्य मे भी माघ का प्रभाव कवि पर झलकता है -

प्रफुल्लतापिच्छनिभैरभीषुभि शुभैश्च सप्तच्छदपासुपाण्डुभि· ।

परस्परेणच्छुरितामलच्छवी तदेकवर्णाविव तौर बभूवत ।।

शिशु व 1/22

शेवडे जी का पद लालित्य भी शरदृतु मे दृष्टव्य है -

जाता कदम्बपवना इवसेवनीया , सप्तच्छदप्रवगन्धहरा समीरा ।

अस्थानिप्रयुक्तसकलार्भकरा. प्रसिद्धा आदेशतामुपगता इव पाणिनीये ।।

और भी नवम सर्ग में देवी के रूप का दर्शन धूम्रनेत्र करता है, जो उत्कृष्ट है -

सश्रिता हिमगिरेराधित्यका तप्तकाञ्चन विभास्वरच्छविम् ।

उच्छवसत्कमलदीर्घलोचना तत्र शैलतनया ददर्श स ।।

-शु0 व0 - 9/7

प्रति वर्णन के प्रसग मे माघ ने शिशुपाल वध के चतुर्थ सर्ग मे कल्पना का वर्णन करने से ही "घण्टा - माघ" नाम से प्रसिद्ध है । एक ओर अपार सूर्योदय दूसरी ओर चन्द्रास्त ये दोनो विशालकाय हाथी के दोनों ओर लटकते हुए घण्टे है, का वर्णन किया है ।

उदयति विततोर्ध्वरश्मिर जजातहिमरुचो हिमवान्नि यातिचास्ताम् ।

वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टाद्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम् ।।

शिशु0व0 - 4/20

शेवडे जी ने भी तृत्तीयसर्ग में पश्चिम मे लटके सूर्य को सडसी से पकडा गया तपता हुआ लोह पिण्ड बताया है -

पारावारे पश्चिमे लम्बमानो वीचिग्रस्तो भास्करो रक्तवर्ण ।

सन्दशेन प्रापितस्तोयमध्य रेजेयदवल्लोहपिण्ड प्रतप्त ।।

शु0 व0 3/49

वही सूर्य प्रात काल मे अनार की शाखा पर लटकता हुआ नयाफल लग रहा था -

प्राच्या स्फुरद्दाडिमवल्लिकाया पूर्वाचलस्थानुमुपाश्रितायाम् ।

अनुरूपुष्य प्रथम परस्तात् फल नव भास्करबिम्बमासीत् ।।

शु0 व0 - 4/2 .

अत भारवि से अधिक माघ का प्रभाव शेवडे जी के शुम्भ वध मे दिखाई देता है ।

श्री हर्ष का प्रभाव
------------ शेवडे जी के महाकाव्य मे श्री हर्ष के नैषध का भी प्रभाव दिखाई पडता है । श्रीहर्ष ने सरस्वती को राजा नल की जिह्वा के अग्रभाग पर नाचने वाली नर्तकी बताया है -

अमुष्य विद्या रसनाग्रनर्तकी त्रयीव नीताङ्गगुणेन विस्तरम् ।।

नैषध - 1/5

तो शेवडे जी ने भी द्रुहिणदुहिता को वृहस्पति की रसनाग्र नर्तकी बताया है-

यस्य नृत्यति चिर रसनाग्रे नर्तकीइव दुहिता द्रुहिणस्य ।

यस्य कण्ठकुहरे निवसन्ति स्वेच्छयेव हि चतुर्दशविद्या ।।

शु0 व0 - 7/5..

अत इस प्रसंग मे हर्ष का प्रभाव है ।

महाकवि कालिदास का प्रभाव
---------------- महाकवि - शेवडे जी ने स्वय कालिदास का अनुवर्ती होने को कहा है । शुम्भ वध के "निवेदन" नामक शीर्षक मे कालिदास का भी गुणगान किया है -

वर्वर्ति सर्वत्र कविप्रपञ्चे गुणैरनूनैरिह कालिदास ।

यदाश्रित मञ्जुलसन्निवेशा वैदर्भीरीति प्रथते पृथिव्याम् ।।

-निवेदन - 3

कालिदास का सर्वाधिक प्रभाव इनके काव्यो मे पडा है । इसीलिए इन्हे "विन्ध्यवासिनी विजय महाकाव्यम्" पर "कालिदास" का पुरस्कार भी उत्तर प्रदेश अकादमी द्वारा दिया जा चुका है । कालिदास का प्रभाव होने के प्रमाण कुछ इस प्रकार हो सकते हैं -

1 कालिदास ने रघुवश और कुमारसभव दो महाकाव्यो की रचना की तो शेवडे जी ने तीन महाकाव्य - विन्ध्यवासिनी विजय, शुम्भवध और देवदेवेश्वर महाकाव्य की रचना की ।

2 कालिदास ने खण्ड काव्य मेघदूत की रचना की, तो इन्होने भी खण्ड काव्य पर आधारित "आधुनिक मेघदूत" नामक खण्ड काव्य रच डाला । इन्होंने भी कालिदास की ही भाँति "वैदर्भी" रीति का अवलम्बन किया । कालिदास अनुष्टुप का प्रयोग किया तो ये अनुष्टुप्विहीन महाकाव्य की रचना किये ।

3 कालिदास ने श्रृगाररस प्रधान महाकाव्य (कुमार सभव) लिखे , कविता - कामिनी - विलास हुए तो शेवडे जी श्रृगाररस विहीन

:: नवम् अध्याय ::

(महाकवि का कवित्व एवं पाण्डित्य)

*****
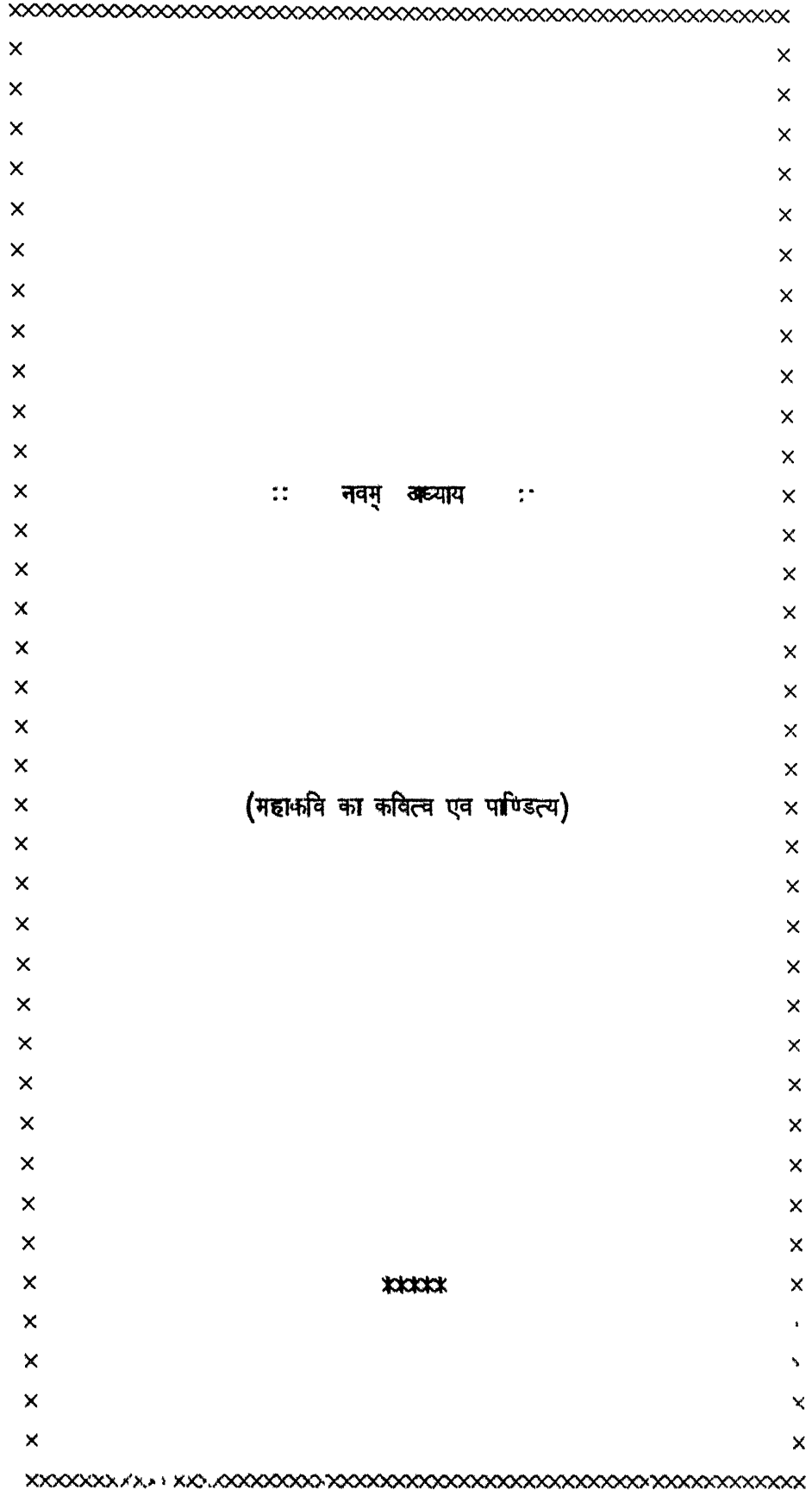
महाकाव्य में 'निवेदनम्' में कवित्व

'निवेदनम्' नामक शीर्षक में कवि-प्रतिभा की समीक्षा :

महाकवि श्री शेवडे जी द्वारा कृत निवेदन में महाकवि ने भारतीय सस्कृति और परम्परा का निर्वाह किया है। सर्वप्रथम इन्होंने 'वल्मीकजन्मा' अर्थात वाल्मीकि जी को कवियों में प्रथम स्थान दिया है। आदि कवि होने के नाते सबसे पहले उन्हीं का जय-जय कार करते हैं जिनका शोक श्लोक बनकर फूट पडा -

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगः शाश्वतीसमाः ।

यत्क्रौन्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ।।

द्वितीय श्लोक में महाभारत के रचयिता व्यास जी को द्वितीय परन्तु गुणों में अद्वितीय मानते हैं। जिन्होंने महाभारत की रचना करके ऐसा ज्ञानरूपी दीपक जलाया जिससे अज्ञान रूपी अन्धकार दूर हो गया। 'भारत' शब्द का अर्थ है (भा + रत) 'भा' का 'रत' होना अर्थात् प्रकाश का निकलना, प्रस्फुटित होना। अर्थात 'भारत' वही है जहाँ से निरन्तर प्रकाश की किरण रूपी ज्ञाप की आभा पूरे विश्व में निकल रही हो या फैल रही हो। महाभारत मे श्रीमदभगवत गीता का उपदेश ही ऐसा भाग है जो भारत में ही नहीं वरन् परे विश्व में ज्ञान शास्त्र और धर्म शास्त्र में सर्वोपरि है। कहा भी गया है

सर्वोपनिषदोगावः दोग्धा गोपालनन्दनः ।

पार्थोवत्ससुधीर्भोक्ता दुग्धंगीतामृतंमहत् ।। गीता महात्म्य ।।

अतः यदि व्यास जी न होते तो ऐसी रचना कौन करता और यदि महाभारत की रचना न होती तो इसमें जो नाना प्रकार के ज्ञान योग, कर्मयोग,

सांसारिक, व्यावहारिक, सामाजिक आदि उपदेश भरे हैं - कहाँ मिलता? इस प्रकार बाल्मीकि के बाद व्यास की वन्दना उचित ही है। अत. व्यास जी अद्वितीय गुणों के खान हैं।

शेवडे जी तीसरे स्थान पर कविकुल गुरू कालिदास जी को रखा है, जो ससार के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। कवि प्रपच में अपार गुण वाले हैं यह सच है। लन्दन में एक कालिदास रिसर्च सेन्टर बनाया गया है जहाँ विश्व के साहित्य शास्त्री एवं विद्वान इनके बारे में अनुसन्धन कर रहे हैं फिर भी इनके ज्ञान के रहस्य को समझने मं हर कोई भी टेढ़ी खीर ही पा रहे हैं। ये वैदर्भी रीति प्रधान कवि हैं। जब जहाँ जैसे चाहा वैदर्भी रीति का उचित रूप मे प्रयोग कर दिया। वैदर्भी रीति तो इनकी सहचरी के समान अनुवर्तन करती है। वैदर्भी रीति तीनों रीतियों - वैदर्भी, गौडीया और पाचाली रीतियों म सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है। वामन ने तो रीति को काव्य की आत्मा माना है-

रीतिरात्मा काव्यस्य (काव्यालङ कार सत्र ।/2/6)

समग्रगुणावैदर्भी - ।/2/।।

समग्रैः ओजः प्रसादप्रमुखैगुणैरूपेतावैदर्भी नामरीति ।

तामेव कवयः स्तुवन्ति -

सति वक्तरि सत्यर्थे सतिशाब्दानुशासने ।

अस्ति तन्न बिना येन परिश्रवातिवाड मधुः ।।

अतः इतनी प्रशंसनीय रीति कालिदास के काव्यों मे है। ऐसा लगता है कि कालिदास की वाणी के पीछे सहचरी की भाँति चल रही है अत कालिदास के लिए तीसरी वन्दना सही है।

चतुर्थ श्लोक में अन्य कवियों की भाँति सीधे तौर पर दुष्ट और सहजन की वन्दना न करके शिव और पार्वती का सपरिवार वर्णन करते हैं। सभी को अपना परिवार मानते हैं। महेश को पिता, पार्वती को माता, षडानन और गजानन को दो बडे भाई तथा शिव भक्त नन्दी प्रमुख शिवजी के गण हैं उन्हे अपना कुटुम्बी मानते हैं। हिमाचल को नाना कहते है। इन्होने कभी भी किसी महाकाव्य में अपने माता-पिता या परिवार स्थान का उल्लेख नहीं किया है।

ऐसा घनिष्ठ सम्बन्ध मानने वाला कोई कवि नहीं दिखाई देता है "ज्ञान में श्रेष्ठ तो कालिदास हैं परन्तु उन्होने रघुवंश में पार्वती और शिव की वन्दना न करके प्रयोजन रख दिया है।" - (श्री शेवडेजी और डा0 जयकृष्ण त्रिपाठी की बातचीत)[1]

वागर्थाविवसम्पृक्तो वागर्थो प्रतिपत्तये।

जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ ।। रघु0 1/1 ।।

परन्तु त्र्यम्बक जी ने तो सभी को अपना वास्तविक परिवार मान लिया है। यही कारण है कि किसी काव्य में कहीं भी अपने माता-पिता का उल्लेख नही किया है। यह वन्दना अन्य कवियों से महानता को प्रदर्शित करती है। कालिदास ने तो देवों से दूरी बना ली है परन्तु शेवडे जी ने तो माता-पिता बनाकर अपनापन और बीच की खाई को पाट दिया है।"[2]

---

1 शेवडे और डा0 जयकृष्ण त्रिपाठी की वार्ता द्वारा प्रेमशंकर मिश्र

2 डा0 श्री रूद्रकान्त मिश्र इ0वि0

पुन. पाँचवे श्लोक मे कालिदास के बाद श्रेष्ठता में विह्लण का स्थान दिया है। इन्होंने शुरूआत मे 'कुलक्रमादीश्वर भक्तिभाजन' कहा है। इससे स्पष्ट होता है कि ईश्वर की उपासना और देवताओं की उपासना पूजा इनके कुल की परम्परा रही है जिसकी भक्ति भी प्राप्त हो चुकी है और परम्परा से जो प्राप्त ईश्वर की भक्ति है, उसके पात्र बसन्तत्र्यम्बक जी हैं। 'पुरस्कृत पुत्रवदद्रिकन्यया' - अर्थात पार्वती जी ने पुत्र मानकर 'पुरस्कृत' कर दिया यहाँ दो अर्थ हैं - 'पुरस्कृतः' अर्थात पुरःकृतः - आगे खडा किया हुआ तथा 'पुरस्कारीकृतः' अर्थात पुरस्कार रूप में पुत्र बनाया हुआ। द्वितीय अर्थ समीचीन भी है।

आगे 'पथिस्थितविह्लणकालिदासः' - "अर्थात विह्लण और कालिदास के मार्ग में खडा हुआ - अर्थात ये श्रेष्ठ कवि हैं। इनकी रचनाए ससार प्रसिद्ध हैं। इसीलिए ये बसन्त त्र्यम्बक जी की ऐसे काव्य रचना रूपी मार्ग में है जो आगे चलकर प्रसिद्धि को प्राप्त होवे। यहाँ पर यश प्राप्ति की इच्छा है। अत. यहाँ पर प्रयोजन है। कवि की इच्छा गर्वरहित श्रेष्ठ कवि बनने की है। इसीलिए 'कविः बसन्तः विदुषा वशतदः'[1] कहा है। 'वशवद' अर्थात आज्ञाकारी या काव्यों के पढ़ने से प्रभावित बसन्त कवि खडा है। यहाँ 'बसन्त' शब्द श्लिष्ट है - 'वसन्त' को ऋतुराज कहा जाता है। 'कविः बसन्तः' अर्थात कवियों बसन्त - अर्थात कवियों में बसन्त ऋतु के समान श्रेष्ठ होने की तमन्ना वाला।

---

1. डा0 श्री रुद्रकान्त मिश्र उपा0 इ0 वि0

पूर्व के अन्य कवि कोई करुण रस प्रधान है तो कोई उपमा प्रधान तो कोई वीर रस प्रधान परन्तु 'वसन्त' जो तो समशीतोष्ण ऋतु 'मधुमास' के समान अपने काव्यों मे हरगुणों का सामजस्य करते हुए 'हरफनमौला कवि' बनना चाहते हैं। अतः 'वसन्तरूपी वसन्त कवि' यही व्याख्या यहाँ उचित होगी।"

छठे श्लोक मे अपनी महाकाव्य की रचना की इच्छा लेकर उतरते हैं। साहित्य शास्त्रियों के हाथ में समर्पित करने के लिए उनसे छपवाने की इच्छा से करबद्ध प्रार्थना करते हैं।

"यहाँ कवि की अत्यन्त विनम्रता परिलक्षित होती है। क्योंकि विनम्रता कुल और वंश का आभूषण है। किसी भी समाज मे कहीं भी हाथ जोडकर प्रार्थना की जाती है - यह हमारी संस्कृति है। अहङ्कार कभी भी नहीं होना चाहिए।" कवि के कहने का अभिप्राय है 'हम हाथ जोडकर आप सब साहित्य शास्त्र सागर का बेड़ा पार लगाने वाले नाविक रूपी ज्ञानियों के सामने तो तुच्छ ही हैं फिर भी मेरा एक अपना महाकाव्य है जिसका नाम है 'शुम्भवध'। उसी को मुद्रित कराने लिए आप सब साहित्य शास्त्रियो के सामने करबद्ध प्रार्थना करता हूँ। चाहे बेडा पार लगाओ या न लगाओ डुबा दो। यहाँ पर कालिदास के इस श्लोक से कवि की श्रेष्ठता प्रदर्शित होती है -

मन्दः कवि यशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् ।

पाशुलभ्ये फले लोभाद् उद्बाहुरिव वामनः।। रघु0 1/1/3 ।।

परन्तु श्री शेवडे जी मे पूर्ण समर्पण की भावना आ गयी है। उनका बेडा पार साहित्य शास्त्री और पाठ कही कर सकते हैं।

सातवे मे श्रेष्ठ व्यक्ति वही कहा गया है जो दोषों को न आँककर गुणो को ही ग्रहण कर लेते हैं। 'विहगावतस' स्वरूप आभूषणों मैं कान का आभूषण बडा मनोहर माना गया है। इसीलिए पक्षियों म 'अवतस' 'हस' को माना जाता है।

जो हंस हुआ करते हैं वे क्षीर और नीर मैं क्षीर को ग्रहण करके नीर को छोड देते हैं। अर्थात श्री शेवडे जी मानते हैं कि ऐसा नहीं है कि मेरे काव्य म दोष ही न हो। अर्थात दोष तो अवश्य हुआ करते हैं। अत आप सब काव्य मे दोषों को दूर करके अर्थात छोड़ करके जितने भी गुण हैं उन्हे आप सभी लोग ग्रहण कर लेवें। अत॰ शेवडे जी यह नहीं मानते कि किसी-2 मैं दोष होता ही नहीं बल्कि दोष तो सब में होता है।

आठवे श्लोक म प्रदर्शित है कि ससार मैं ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसमे गुणन हो और ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो दोष विहीन हो। अत. सभी सांसारिक वस्तुओं मे गुण और दोष दोनों हैं। 'गुण-दोष एक सिक्के के दो पहलू हैं।' बस कहीं कम तो कहीं ज्यादा। अतः गुणानुरागी वही है जो दोषों को उपेक्षित करके अभीप्सित गुणो को आदरपूर्वक ग्रहण कर लेता है।

यहाँ कवि की इच्छा झलकती है कि उसके काव्य मे जो कमियाँ हो उसे छोडकर जो कुछ गुण मिले उसे ग्रहण कर लिया जाये। यह सोच भी आधुनिक काव्य युग मे विरलापन ही है। इससे ऐसा लगता है कि यह कवि काफी सुलझे हुए और पूर्णतयः परिपक्व और गर्वहीन रहे हैं।

जो कुछ अवशिष्ट बात रह जाती है उसे नवे श्लोक में कीच में खिले हुए, गन्दे पैरो वाले भौरों तथा घास फूस से ढके हुए कमल का ही पूजन आदि मे प्रयोग किये जाने की परम्परा की बात करते हैं। अतः सारे संसार में गुणों की ही पूजा होती है -

"गुणस्यपूजास्थानं गुणिषुनलिङ्ग न च वयः ।"

दसवे में काव्य रचना के प्रयोजन की पुष्टि करते हैं। संसार की माता जगदम्बिका के गुणों का अनुवाद अर्थात बार-बार अनुवर्तन करने के लिए बार-बार गुणों का बखान करने के लिए ही इस महाकाव्य की रचना की गयी है। 'भवताम्' काव्य शास्त्रियों, ज्ञानियों, पाठकों को कहा गया है। उपायनम (उपहार) शुम्भ वध महाकाव्य है। समर्पण भावना विनम्रता है। ऐसा लगता है मानो काव्य शास्त्रियों का समाज लगा है और उसमें सबसे निरीह और विनम्र बसन्त त्र्यम्बक जी खड़े होकर सबके सामने अपनी बात करते जा रहे हैं।

ग्यारहवे मे कवि कहता है - 'प्रणतशङ्करशङ्करकिङ्करः' अर्थात 'प्रणत. प्रकृष्टरूपेणनतः शङ्करशङ्करकिङ्करः - शं सुख करोति इति शङ्करः वा शम् करोति विनाशयति पापान् दुर्गुणान् कामक्रोधमदलोभान्

यः सः शङ्करः, शङ्करः शिव. इत्यर्थः। तस्य किङ्करः अनुचर इति। अर्थात् अत्यन्त विनम्र सभी सुखों को प्रदान करने वाले या सभी दुर्गुणो या शत्रुओं का विनाश करने वाले का शङ्कर का किङ्कर अर्थात् ऐसे शिव का दास तथा नगसुता अर्थात् पार्वती का पुत्र (स्वरूप) विनम्रता से उज्ज्वल अर्थात् कपटरहित (कवियों में बसन्त रूपी) वसन्त कवि आप सब सहृदयों के हाथ में शुम्भवध को समर्पित करके अत्यन्त आनन्द का अनुभव करता है। इस श्लोक में एकदम लोकव्यवहारिकता प्रदर्शित है।

बारहवें श्लोक में अन्त में सिर पर बाल चन्द्रमा धारण करने वाले शिव का जय जयकार किया गया है। फिर शुम्भ निशुम्भ निषदिनी माँ जगदम्बा का जय जयकार किया गया है। पुनः कर्णामृतस्वरूप कवि की वाणी के जय जयकार के बाद काव्य के (रसभेदुर) रसों से लबालब या सराबोर अर्थात् परिपूर्ण स्निग्ध रसीले शुम्भ वध का जय जयकार किया गया है।

कवि ने इस श्लोक में अन्त मे मङ्गलाचरण किया है। अतः आदि मे मङ्गलाचरण और निवेदन के अन्त में भी मङ्गलाचरण करके महाभाष्यकार पतंजलि के कथन का भी पालन किया गया है -

मङ्गलादीनि मङ्गलमध्यानि मङ्गलान्तानि च प्रथन्ते।। (महाभाष्य))

द्वादश श्लोक पर्यन्त कवि ने श्लोक में निवेदन किया है उसके बाद महाभाग में कवि ने सम्बोधित करते हुए कहा है। जिसकी समीक्षा प्रस्तुत है। परन्तु पहले श्लोकों का निष्कर्ष है।

निष्कर्ष :

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि बसन्त त्र्यम्बक शेवडे जी ने उन सभी बातों, गुणो और विद्वता का प्रदर्शन तो 'निवेदनम्' शीर्षक मे दिखा दिया है जैसा कि अन्य कवियों ने अपने महाकाव्यों के सर्गो की शुरूआत अथवा प्रसङ्ग में विद्वता का प्रदर्शन किया है।

"संसार मे देखा जाता है कि अन्य कवियों ने देवता और मानव मे अन्त कर रखा है, परन्तु शेवडे जी ने देव शक्तियों का मानवीकरण कर डाला है। पार्वती को ता साक्षात अपनी सगी माँ माना और शिव को साक्षात पिता, कार्तिकेय और गणेश जी को भाई और नन्दि प्रमुख गणों को कुटुम्बी माना है। कवि अपने को बड़ा ही गुणहीन नहीं मानता है, न तो दोषहीन ही मानता है बल्कि कहता है कि गुण-दोष तो कम ज्यादा रूप से हर जगह होता है और सज्जन पुरूषों को चाहिए कि वे दोष को अलग करके गुणों को ग्रहण करें। इसी में कमल का उदाहरण दिया है कि कमल कितने गन्दे स्थान पर क्यों न हो देवताओं की पूजा के लिए श्रेष्ठ होता है। अत. गुणों की पूजा होती है। अन्त में महाकाव्य की रचना करके सहृदयों के हाथ में सर्मपित करके लगता है भार मुक्त हो जाता है।

'बालशशाङ्कशिखामणि:' - कहकर यह प्रदर्शित करना चाहा है कि चन्द्रमा भी पूर्ण नहीं है, उसमें भी दोष है जिसे शिव शिरोमणि के रूप में धारण करते हैं उसी प्रकार कवि भी अभी अपरिपक्व बुद्धि वाले बालक के समान है, अतः उसे भी सामाजिको के द्वारा अपना लिया जाना चाहिए।

'शुम्भनिशुम्भनिषूदिनी' कहकर कवि ने महाकाव्य का उद्देश्य बतलाया है कि उन्हीं देवी के गुणों का बखान इस महाकाव्य मे किया गया है जो शुम्भ और निशुम्भ का वध करने वाली है। इसी कारण प्रतिनायक के नाम के आधार पर महाकाव्य का नाम भी 'शुम्भ वध' रखा गया है।

अन्त में कवि की वाणी की श्रेष्ठता बताई गयी है जो कर्णामृत के समान अच्छी लगे। अन्त में सभी रसों से परिपूर्ण महाकाव्य का जय जयकार किया गया है।

निवेदन के गद्य भाग में कवि प्रतिभा :

कवि कहते है कि श्री जगन्माता की कृपा से कटाक्ष के प्रसाद से उनकी कीर्ति गाथा रूपी विन्ध्यवासिनी विजय महाकाव्य पहले ही लिखा गया है। विन्ध्यवासिनी विजय को शुम्भ वध से पहले की बात बताना चाहते है। इस महाकाव्य में प्रस्तावना नहीं लिखा है क्योंकि दोनों की प्रस्तावना पहले ही विन्ध्यवासिनी विजय में लिख देने की बात कही गयी है।

"श्री जगन्मातु:' और 'जगदम्बिकाया:' में 'श्री' शब्द का महत्व :

दशम श्लोक में महाकवि ने 'जगदम्बिकाकाया' और गद्य भाग में 'श्रीजगन्मातु:' कहकर एक स्थान पर 'श्री' शब्द का प्रयोग किया है।

"जहाँ पर सामान्य रूप से किसी का वर्णन किया जाय वहा पर श्री शब्द का प्रयोग नहीं हुआ करता। जैसे- संसार के पिता परमेश्वर हैं। इसमें श्री नहीं लगता परन्तु यदि किसी व्यक्ति विशेष के पिता विशेष का नाम हो

तो वहाँ 'श्री परमेश्वर' लिखा या पुकारा जाता है। अतः 'गुणानुवादं जगदम्बिकाया:' में सामान्य वर्णन होने से 'श्री' का प्रयोग नही हुआ है।"

"श्री शब्द का प्रयोग जीवन्त अर्थ को प्रकट करने के लिए निकटता स्थापित करने के लिए, वात्सल्य भाव के प्रदर्शन के लिए, मानव सुलभ परिस्थितियों को द्योतित करने के लिए किया जाता है। यदि कोई पूछे तुम्हारे पिता जी का क्या नाम है? उसे बतलाते समय 'नाम' में 'श्री' शब्द का प्रयोग किया जाता है। क्योंके पिता में अपानापन है, अपना निजी सम्बन्ध है अपने से श्रेष्ठ हैं। अतः 'श्री' शब्द का प्रयोग किया जाता है।"

'पिताजी' कहने से पिता श्री ही तात्पय निकलता है। गुणानुवाद जगदम्बिकाया: कहकर गुणों के बार-बार वर्णन को उठाकर गौण अर्थ में 'श्री जगदम्बिकाायाः' नहीं कहा है क्योंकि मुख्य कार्य तो उनके गुणों का बखान करना है।

जबकि 'श्री जगन्मातुः कृपाकटाक्षप्रसादेन' कहकर पार्वती के अटूट सम्बन्ध को जोडा है, क्योंके इनमें किसी भी स्थल पर ओछापन नहीं दिखाई देता। ये देवी को अपनी सगी माँ ही मानते हैं। इनका भाव है कि 'मेरी उन्हीं माँ के अनुग्रह के कटाक्ष के प्रसाद से कीर्ति गाथा वर्णित है जो जगत को माता है, अर्थात् जगत की माता होने के साथ-साथ मेरी अपनी माँ भी हैं, जिनकी थोड़ी सी कृपासे 'विन्ध्यवासिनी विजय' महाकाव्य प्रणीत कर डाला, यदि पूरी की कृपा मिल जाती तो न जाने क्या हो जाता।'

यहाँ 'जगदम्बा' का ही अर्थ प्रधान है। अत: निकटता और शारीरिक उपस्थिति मानने से 'श्री' शब्द का प्रयोग उचित है जो आज के आधुनिक कवियों में श्री शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। श्री शेवडे जी ने 'श्री' का प्रयोग करके भारतीय संस्कृति की रक्षा की है जो आज की पाश्चात्य धारा में बहकती सी प्रतीत हो रही है क्योंकि लोग अपने से बड़ों का सम्मान करना ही भूल गये हैं। अत: इन्होंने लोगों के सामने भारतीय संस्कृति की परम्परा का ही पालन किया है। आधुनिकता के दौर मे इनकी एक विशेषता है भारतीय संस्कृति के परम्परा का निर्वाह।

इस प्रकार श्री बरकत त्र्यम्बक शेवडे जी ने भारतीय संस्कृति की परम्परा को अधिक निभाने का प्रयास किया है। शिष्टाचार का पालन किया है। जबकि आज के भारतीय भूल चुके अपने से श्रेष्ठ और जिनका किसी न किसी रूप से अपना निजी रिश्ता होता है उसके पहले 'श्री' शब्द का प्रयोग होता है जिसका कि विदेशियों में भी अपनी परम्परा का निर्वाह पाया जाता है। अंग्रेजी में अपने से बड़ों के नाम के पहले 'श्री' और 'श्रीमती' के स्थान पर मिस्टर और मिस्टेस विवाहितों के लिए प्रयुक्त होता है जो अविवाहित होते हैं उनके नाम के पहले मास्टर और मिस लगाते हैं। इसी प्रकार भारतीय संस्कृति में बालिकाओं के नाम के पहले 'कुमारी' लगाने की परम्परा रही है और विवाहिता होने के बाद कुमारी के स्थान पर श्रीमती लगाया जाता है।"

"और भी पुरूषों के नाम के आगे 'प्रसाद', प्रताप, प्रकाश आदि जैसे राम प्रसाद, श्याम प्रकाश, विजय कान्त आदि लिखने की परम्परा रही है और स्त्रियों के नाम के आगे 'देवी' शब्द (जैसे आशा देवी व राधा देवी) लगाने की परम्परा रही है। परन्तु आज के भारतीय इन सबका पालन करने में शर्म महसूस करते हैं। परन्तु श्री शेवडे जी ने 'श्री' शब्द का प्रयोग करके आज के परिवेश में बदलाव लाने का प्रयास किया है।"

श्री शेवडे जी ने 'श्री' शब्द का प्रयोग करके 'मङ्गल' की कामना भी की है। क्योंकि श्री शब्द ज्ञान, मङ्गल, कल्याण, लक्ष्मी, भक्ति भावना आदि को द्योतित किया है।

देवी देवताओं का मानवीकरण

"अन्य महाकवियों और कवियों ने प्रकृति आदि का मानवीकरण किया है तो आपने देवी देवताओं का मानवीकरण किया है। शिव और पार्वती आदि को देवता और देवी न मानकर एकदम सजीव मानव मानकर वर्णन किया है। 'श्री' इत्यादि का जो आन्तरिक प्रयोग है वह भारवि कालिदास, माघ आदि में भी ऐसा नहीं मिलता। भारवि का 'श्रियः' का प्रयोग मात्र मङ्लार्थक है।[1] ये सभी महाकवि भक्त और भगवान में उपासक और देवताओं में दूरियाँ बनाते हुए ही वर्णन किया है। परन्तु शेवडे जी ने तो एकदम से बीच की खाई को पाट दिया है। यहाँ इनकी अनिर्वचनीयता सिद्ध होती है। अतः ये अनिर्वचनीय कवि है। यह भी उक्ति सिद्ध होती है।"

तत्पश्चात् शुम्भ बधादि महाकाव्य के मुद्रण आदि में सहायता देने वाले डा0 भोला शड्.कर व्यास और डा0 ब्रह्मानन्द त्रिपाठी आदि को शुभाशीर्वाद आदि प्रदान करते हैं। भारतीय संस्कृति के प्रचार प्रसार में लगे 'सुरभारती प्रकाशन चौखम्भा' के अधिकारियों की वृद्धि की भी कामना करते हैं।

'भारतीय संस्कृतेः संस्कृतसाहित्यस्य च प्रचार-प्रसाराय' का तात्पर्य :

"अधिकांशतः संस्कृत संस्कृतिस्तया' ऐसा प्रयोग मिलता है। 'संस्कृत' साध्य है और 'संस्कृति' साधन यही दिखाई देता है। क्योंकि सभी कवियों ने सस्कृत पर जोर दिया है। वे समझते है कि 'सस्कृत भाषा' के प्रचार-प्रसार से 'संस्कृति' रक्षित रहेगी। परन्तु श्री शेवडे जी ने इसके विपरीत तर्क सिद्ध किया है। वे 'संस्कृतेः संस्कृतं तथा' - यह तर्क सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। इसीलिए 'निवेदनम्' में भारतीय संस्कृतेः संस्कृत साहित्यस्य च' - ऐसा कहा है। शेवडे जी के सिद्धान्त का आशय है कि 'यदि भारतीय संस्कृति अर्थात हमारा रहन-सहन, हमारे आचार-विचार-व्यवहार, उठल-बैठन आदि यदि सस्कृत है अर्थात सभ्यतापूर्ण है तभी हम सस्कृत हैं। और जब हम 'सस्कृत' हैं तो हमारी संस्कृति भी स्वच्छ और साफ रहेगी।"

बसन्त कवि 'संस्कृति को साध्य और संस्कृत को साधन मानते है। "इनका मानना है कि 'भारतीय संस्कृति' और संस्कृत साहित्य दोनों का प्रचार प्रसार करना चाहिए। 'भारतीय संस्कृति के छा जाने से संस्कृत को अपनाने में कोई कठिनाई नहीं होगी। यदि 'संस्कृति' की लहर दौड़

गयीं तो 'संस्कृत' स्वयं हरी भरी हो जायेगी।

इस प्रकार भारतीय संस्कृत साहित्य तभी तक रक्षित रहेगा जब तक भारतीय संस्कृति रक्षित रहेगी। इस संस्कृति और संस्कृत साहित्य के प्रचार प्रसार का जिसने वीणा उठाया है, कमर कसकर तैयार है वे हैं 'सुरभारती प्रकाशन चौखम्भा वाराणसी' के अधिकारी वर्ग, जिन्होंने महाकवि के काव्य का मुद्रण प्रकाशनादि किया है।

'बालशशाङ्.कशिखामणि:' और 'तरूणेन्दुशेखर: का तात्पर्य:

बारहवें श्लोक में 'बालशशाङ्.कशिखामणि:' कहा है - जिसका अर्थ है बाल-छोटा शिशु स्वरूप, शशाङ्.क अर्थात ऐसा चन्द्रमा - जो 'शश' का अङ्.क है चिन्ह है। वहाँ कलङ्.क का भी अर्थ है। यहाँ आशय हे कि बच्चा जो दोषयुक्त होता है वह भी बड़ों का सिरमुकुट ही हुआ करता है। 'तरूणेन्दुशेखर:' अथोत 'तरूण' अर्थात 'नवयुवक' होने पर भी वह चन्द्रमा रूपी वही बालक बुद्धिमान होकर शिरोभूषण होता है (शिरोधार्य होता है)"

अत: कवि पहले अपरिपक्व बुद्धि का है और बाद में कुछ प्रखर बुद्धि का हो गया है। दोनों ही दशा में वह सामाजिकों और सहृदयों के बीच में महान पराकाष्ठा का सम्मान चाहता है। 'बाल चन्द्र' की चर्चा लोक साहित्य में हुई है। बालचन्द्र के बारे में श्री विद्यापति जी ने कहा है -

'बालचन्द्रद्विजन्न हासा' (विद्यपति)

उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि श्री बसन्त त्र्यम्बक शेवडे जी ने कालिदास माघ आदि के काव्य ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया है जिसका स्वण प्रभाव झलकता है। शेवडे जी ने अध्ययन तो सभी के महाकाव्यादि ग्रन्थों का अध्ययन किया परन्तु उन पर विचार करके। उनमें नवीनता भी लाने का प्रयास किया। सभी के गुणों का अनुसरण करते हुए अपने एक अनूठे ज्ञान को रखा है। इन्होंने अपनी कमियों को हर प्रकार से दूर करने का प्रयास किया है। इन्होंने ऐसा भी प्रयास किया है कि अगर कोई दोष भी हो तो वह इनकी विनम्रता और भक्ति भावना में गायब हो जाय। "ये कवि भावना से ज्यादा विनम्र भावना, भक्ति भावना और वात्सल्य की भावना से परिपूर्ण है। इन्होंने हर कवियों से हटकर एक-एक विरला विरला प्रयोग किया है और सबसे श्रेष्ठ होने का प्रयास किया है।"

"इस प्रकार यह कवि सबसे अलग और आधुनिक कवियों से हटकर कवि हुए हैं। जो अपने में एक अनिर्वचनीय महाकवि है। इनकी दृष्टि में 'संस्कृति' का अर्थ है 'अर्थ' और साहित्य का अर्थ है 'वाक'। संस्कृत साहित्य कहने से 'वाक्' और 'अर्थ' दोनों की प्रतीति हो जाती है। जिसे कालिदास ने प्रयोग किया है। इनकी 'संस्कृति' का प्रयोग कालिदास से बढ़कर है। 'संस्कृति' विनय रूप है। भारतीय संस्कृति को 'गङ् गा-जमुनी' संस्कृति भी कहा जाता है। शेवडे जी साहित्य से पहले 'संस्कृति' का नाम लेते हैं, जो विनय, शिष्टाचार, सदाचार की जीवन शैली है। ये उसकी (संस्कृति की) भी जय-जय कार करते हैं। इनके काव्य का लक्ष्य है 'भारतीय संस्कृति'

का प्रचार-प्रसार पहले हो और 'संस्कृत' का बाद में। ऐसी सोच किसी भी कवि की नहीं दिखलाई पड़ती है।"

अतः आधुनिक युग में कालिदास जैसे ज्ञानी और माघ जैसे पण्डित कवि तो नहीं मिलेगें फिर भी शेवडे जी सर्वश्रेष्ठ हैं। इसमें सन्देहावकाश नहीं है। क्योंकि हमेशा से - 'भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे - संस्कृतं संस्कृतिस्तथा' यह सिद्धान्त चला आ रहा है। परन्तु श्री शेवडे जी ने इसके विपरीत 'भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतिः संस्कृतं तथा' - सिद्ध कर दिखलाया है।"

अतः हम निःसङ्.कोच कह सकते है कि श्री त्र्यम्बक जी आज के भारतीय परिवेश में एक नवीन छाप के रूप में उभरे हुए कवि हैं जो साहित्य शास्त्र में समाज सुधारक का कार्य करने में तत्पर जान पडते हैं।

शेवडे जी का पाण्डित्य :

भारतीय परम्परा में संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में पाण्डित्यपूर्ण महाकवित्व की प्रकर्षता को बनाये रखने वाले अनेकानेक श्रेष्ठ, महनीय, महाकवि एवं विद्वान हुए हैं। जिनमें कालिदास, राजशेखर भारवि, माघ और श्रीहर्ष, अश्वघोष, वाणभट्ट, सुबन्धु, भास, भवभूति, आचार्य विश्वनाथ, जगन्नाथ, जयदेव, कल्हण, विह्लण, दण्डी आदि हुए हैं। जिनमें यदि देखा जाय तो सबसे ज्यादा पाण्डित्य माघ के महाकाव्य में मिलता है इसीलिए कहा भी गया है - "नव सर्ग गतेमाघेनवशब्दो न विद्यते।" और भी मेघे माघे वयोगतम्।" इत्यादि। इन सब महाकवियों में श्रीहर्ष भी नैषधीय चरितम्" महाकाय लिखकर अपना स्थान जमा लिया/कहा भी गया है।

"तावद्भा भारवेर्भातियावन्माघस्य नोदयम् ।

उदिते नैषधे काव्ये क्वं माघः क्वच भारविः ।।

बल्कि कालिदास जी कविकुलगुरू जरूर है परन्तु इनके महाकाव्यों में इतने दुरुह शब्दों का समावेश नहीं है। उन्होने कविता की [illegible] को ही संजोया है। कहा भी गया है - "भासो हासः कविकुलगुरूकालिदास. कविताकामिनी-विलासः

सभी श्रेष्ठतम महाकवियों के महाकाव्यों का अवलोकन करने के बाद देवी श्री दुर्गा की कृपा कटाक्ष से परिपूर्ण महामाया जगदम्बा को पुत्र मानने का वरदान प्राप्त करने वाले, अपने जन्म से महाराष्ट्र में सतारा नामक गॉव की धरा को अपने जन्म से अलङ् कृत करने वाले, शेवडे कुल को सुशोभित करने वाले और अपने माता-पिता का यशोवर्धन करने वाले तथा वाराणसी जैसे स्थान पर स्व0 डा0 श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी जी के यहाँ निवास करते हुए कुल गौरव को बढ़ाते हुए काव्य रचना की धारा में पैर जमाने वाले तथा उस काव्य धारा में हिलोरे लेते हुए रचनाओं के अपूर्ण होने पर भी हमेशा-2 के लिए देवी आदि शक्ति के ऑचल में समा जाने वाले महाकवियों ने बसन्त रूपी श्री बसन्तत्र्यम्बक शेवडे जी ने सभी महाकवियों के अच्छे गुणों को ध्यान मे रखते हुए उदारता पूर्वक कात्य रचना करते हुए महाकाव्य रचने का मन बनाकर तीन महाकाव्य सहित कुल ग्यारह रचनाएं मुद्रित करा पाये और अनेकानेक रचनाएं मुद्रित कराने से पहले ही इस धरा की गोद से जह्नुसुता की गोद में समाकर सुरसरि की गोद से होते हुए जगदम्बा की गोद में सदा के लिए प्रस्थान कर गये

आपकी उपलब्ध रचनाओं एवं तीनों महाकाव्यों के आधार पर जो कुछ ज्ञान की परछाई झलकती है उसका वर्णन प्रस्तुत है।

व्याकरण शास्त्र का ज्ञान

शेवडे जी को व्याकरण का भी ज्ञान था। उन्होंने पाणिनीयशास्त्र का बहुत सम्मान दिया जैसे - प्रथम सर्ग में शुक्राचार्य की शुम्भादि से वार्ता में दृष्टिगोचर होता है -

नमर्थभात्मन्यनुसन्दधाना ययुजर्गत्मामसुराभिधानम् । शु0व0 1/11 ।।

जाताः कदम्ब पवना इव शेवनीयाः सा तच्छप्रसवगन्धहराः समीराः ।

स्थानिप्रयुक्तसकलार्थकराः प्रसिद्धा आदेशतामुयगता इव पाणिनीये ।। शु0व0 2/2। ।।

आसीत् प्रेयः पद्मपत्रं, दुकुसात् प्रत्याचख्यौ मृदघटस्ताम्रकुम्भम् ।

तैलाभ्यङ्ग चन्दनस्यङनुलेपो भूत्वादेशः स्थानिभाव निनाय ।। देवदेव म0 7/54।।

आदेशभावं भजतां तनूजः स्थानित्वमीयादवरङ्.गजीवः ।

कार्यं यथा व्याकरणोपदिष्टे निमित्तभावं नयमत्र यामः ।। देव 3/70 ।।

दर्शनशास्त्र

शेवडे जी ने दर्शन शास्त्र का अच्छा प्रदर्शन अपने महाकाव्यों में किया है -

गुणानुबन्धे विबुधा वदन्तिप्रयोजकं कारणकार्यभावम् ।

सूर्यात् कथं तार्हि शनैश्चरोडभूत् कथं धनाजैरपिचन्दसेनः ।। देवेदव ।।/6 ।।

कलेवरं तैजसमस्ति तेषामित्यूचिरे तान्प्रतिगौतमीयाः ।

मिथः स्वसिद्धान्तसमर्थनार्थं बभूव तेषामधिवत्म वादः ।। विन्ध्यवा0वि0 6/50

व्याख्याऽऽकाशं तस्य लब्ध्वा गुणत्वं चक्रुस्तथ्यां गौतमीं तत:तदानीम ।। 3/10 ।।

नैय्यायिकं प्रविशति प्रसभं कोटिक्रमो हतधियामिव सौगतानाम् ।। 2/19 ।।

ज्योतिष शास्त्र

ज्योतिष शास्त्र पर इन्हें ज्ञान और पूर्ण विश्वास था 'स्तवमन्जूषा' में इन्होंने 'नक्षत्रमालास्तव' और 'राशिस्तव:' शीर्षक में इन सबकी विशेषता प्रकट की है। स्तवमंजूषा में वर्णन द्रष्टव्य है -

समरे महिषासुरस्य नाशाद भुवनोपप्लव कारिण: प्रकामम् ।।

श्रवणाभरणीबभूव मातस्तव कीर्तिर्दशदिग्विलासिनीनाम् ।। नक्षत्र मा0 स्त0 2 ।।

जिष्णुर्विष्णुविधिमौलिलालितं विभ्रती पदमनन्यगोचरम ।

जायसे मयि शिवे दगोत्तरा फाल्गुनीति विदधाति विस्मयम् ।। न0मा0 स्त0 ।2 ।।

जगदम्ब वृषध्वजप्रिये वृषमुख्यामर-वृन्दवन्दिते ।

करूणामृतवर्षणं तव प्रसमं मे भवतापमानयेत् ।। रा0स्त0 4 ।।

इसी तरह विन्ध्यवासिनी विजय में द्रष्टव्य है।

राशिंनार्डी घातचक्रंलिखित्वा गर्गाचार्योजन्मपत्रीचकार ।

राजनीति विषयक ज्ञान :

'शेवडे जी' को राजनीति का भी ज्ञान था शुक्राचार्य जी शुम्भ और निशुम्भ को राजनीति की शिक्षा देते है। प्रथम सर्ग में निम्न स्थलों में राजनीतिक ज्ञान झलकता है।

अविक्रम पार्थिवनीतिहीनं पद परं पैतृकामाश्रयन्तम।

स्तम्बेरमं हीनबलं वशेवक्षमाभृतं तं विजहाति लक्ष्मी: ।। शुम्भवध ।/40 ।।

उत्साहशक्तिः प्रभुशक्तिरेवं मन्त्रस्यशक्तिस्त्रितयं तदेतत् ।

जयार्यिनो भूमि पतेरभीष्टं यथा कृशानुत्रयमाहिताग्नेः ।। शु0व0 1/37 ।।

शुम्भ वध के सातवें सर्ग में बृहस्पति ने कहा है -

मल्यपर्वत के मुख से विन्ध्यवासिनी विजय महाकाव्य में कहा गया है

अद्यान्नं भोज्यं न परीक्षा किंचिन्न कामिनीं वा रभसादुपेयात् ।

असमीक्ष्य बलाबल निजं सहसा कर्मसु यः प्रवर्तते ।

ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान :

विन्ध्यवासिनी विजय में कृष्ण का नामकरण ज्योतिषानुसार कराना -

उच्चस्थानेदवस्य सर्वे गृहास्ते सन्तिष्ठन्ते दृश्यते राजयोगः ।

निर्गत्यसप्तर्षिपुरादवाच्या मार्गे स्थितं विन्ध्यनमं विलङ्घ्य ।। वि0वा0वि0 15/16 ।।

पौराणिक ज्ञान :

शेवडे जी को पौराणिक ज्ञान था। रामायण, महाभारत, इतिहास आदि का ज्ञान भी था। शुम्भ वध महाकाव्य में तो कम बल्कि अन्य महाकाव्यों में ऐतिहासिक ज्ञान झलकता है। इन्होंने दशशताक्ष, सुरद्विषां आदि का प्रयोग किया है। देवदेवश्वर महाकाव्य में तो अधिकतर जो भी उपमायें की गयी हैं। पौराणिक और ऐतिहासिक ही है। जैसे - शम्भुराज की उपमा पवनपुत्र से की गयी है -

मल्लयुद्धपरिमानमावछत् क्षमापतिः स पवनात्मजो यथा ।। देवदेवश्वर 3/20

शम्भुराज फिरङ्गियो पर चढ़ाई करते है तो हनुमान आदि लगते हैं-

चञ्चाल जेतुप्रबलान् फिरङ्गि गणो निशाचरान् संयति राघुवोयथा । देवदेव 5/33

पवनेश्वर 'खानजमान' को हिडिम्ब की उपमा देते है -

तस्मिन्नभूदधिकृतो यवनेश्वरस्यमूर्तो हिडिम्बइव खानजमाननामा ।। दे०ना० 6/30 ।।

और भी छठे सर्ग में, 'खाण्डवताण्डव' का प्रयोग, शिवराज पुत्र का जटायु की उपमा देना। आठवे सर्ग में 'भैरव' का 'हनुमान' की उपमा देना -

हनुमानिव राघवं निजांसे कलयन् भैरव एषरामराजम् ।। देव0 8/83 ।।

शिवराज के पुत्र को भी भीष्म की संज्ञा देना -

शाहुन्तप को भी द्वैमातुर बताना। यह भी पौराणिक प्रयोग है। झिनतुन्तिसा को लिजटा बताना और विजया बन में तुलसी बताना।

पालक और शर्विलक की उपमा ऐतिहासिक कथाओं से सम्बन्धित।

एकादश सर्ग में अफजुल्लखान के महिषासुर का नया अवतार बताया है -

नवाबतारं महिषासुरस्य खड्गाभिघातादफजुल्लाखानम् ।। देव0 11/9 ।।

और भी अनेकों उदाहरणों से शेवडे जी के ऐतिहासिक और पौराणिक नाम ज्ञान का आभास होता है।

नाट्यशास्त्र का ज्ञान :

शुम्भ वध में शुम्भासुर का नरों का नामक मानकर नाटक का अभिनय प्रदर्शित कराना नाट्य शास्त्र के ज्ञान का द्योतक है -

दैत्यैर्नटैः सह कृतान्तमुखप्रवेशं शुम्भः सनाटकमिवभिनयन्नवीनम् ।

निर्वर्तयन् दनुजनायक भूमिकां च धीरोद्धतः समरङ्.ग भुवं सिषेके ।।

।। शुम्भ वध 12/37 ।।

पाक शास्त्र का ज्ञान :

शुम्भ वध मे जब शुम्भासुर की सेना पडाव डालती है तो जो भोजन बनाने आदि सम्बन्धी वर्णन है वह पाक शास्त्र के ज्ञान का द्योतक है -

आज्यं प्राप्तं स्थापयित्वा कटाहं वह्निज्वालाप्रोल्लसच्चुल्लिकायाम् ।
सूदाः पक्तुं प्रारभन्त क्षणार्धे सूपापूपान मोदकान् पूरिकाश्च ।। शु०व० 3/36
पाकस्थानात् वेसरान्चितानां सर्पन् दिक्षु क्वाथभाजां तदानीम ।
निन्ये नानाव्यंजनानां सुगन्धः सैन्यस्थानामार्द्रतामाननानि ।। शु०व० 3/36 ।।

सामरिक ज्ञान

शुम्भवध में सामरिक ज्ञान भी मिलता है। सबसे पहले अच्छे घोडों, हाथियों आदि से युक्त सेना तैयार करना, अच्छे सैनिकों का सेना मे प्रवेश आदि सामरिक ज्ञान का द्योतक है -

सल्लक्षणाः प्रजविनस्तरूणा विनीता, धारासु पंचसु पदक्रममादधानाः ।
कृष्णाः सिताश्च शबला. प्रबलाः शरीरे, सैन्ये तयोः शुशुभिरेशतशस्तुरङ ग ।
।। शुम्भवध 2/4 ।।

हस्त्यश्वयत्तिरथिकं बलमस्मदीयं दोर्दण्डचण्डिविस्वाण्डितशत्रुसङ घम ।
तत्तद्बलाधिपपरिष्कृततत्तदङ ग सज्जं विभातु विजयाय जगन्त्रयस्य ।। शु0 2/50 ।।

पशु-पक्षी सम्बन्धी ज्ञान :

महाकवि श्री शेवडे जी ने शुम्भ वध में शुम्भासुर के दिग्विजय यात्रा में घोड़ो, हाथियों, तोतो, कुक्कुरो आदि स्वाभाविक एवं धारा प्रवाह वर्णन देखते ही बनता है। सेना प्रस्थान में पशु पक्षियों का वर्णन प्रस्तुत है -

जग्मुमार्गे मन्यर वारणेन्द्रा मुक्त्वा रश्मि सादिनो बल्गितेन ।

सड क्रीडदिभ' स्यन्दनाड गै शताड का हर्षोत्फुल्लवृत्तय: पत्तयोडपि।।

शुम्भ वध 3/।।

यात्राकाले मन्थरं संचख्त. शैलोत्तुड गा: सिन्धुराबन्धुराड का. ।

दानाम्भोभि: सन्तुतं प्रस्रवदिभर्मार्गान् थृय. पडि.कलानड कयन्त ।।

शुम्भवध 3:13 ।।

चक्रीवन्तश्चकमुदैत्यचक्रे पृष्ठे घृत्वा स्वामिनां वस्तुजातम।

तत्साजात्य विभृतो भारहारा. स्कन्धोद्वेल्लत्केसरा बेसराश्च ।। 3/15 ।।

आखटार्सै शिक्षितान सामेयानादायैके वग्रानु: श्रृड्वलेन ।

श्यवानकचित्तित्तिरीन् सांयुगीनान कीरान् धीरान भाषणपजरेषु ।।

शु0व0 3/19

महाकवि श्री शेवडे जी का काव्य सौष्ठव :

काव्य के जनक बाल्मीकि जी है जिससे वे आदि कवि कहे जाते हैं। उनके काव्य म स्वाभाविकता, सरलता एव प्रसाद गुण का समन्वय पाया जाता है। उन्होंने सरसमयी शैली का जन्म दिया कालिदास तथा अश्वघोष ने आगे बढ़ाया। बाद में भारवि में कृत्रियता और पाण्डित्व प्रदर्शन का जन्म दिया, जिसका विकास माघ ने यिका। माघ के बाद श्रीहर्ष ने नैषध रचकर पाण्डित्य प्रदर्शन को और आगे बढ़ाया -

तावदभा भारवेर्भाति यावत माघस्य नोदयम।

उदिते नैषधे काव्ये क्व माघ क्व7 चभारवि: ।

समय-समय पर साहित्य में परिवर्तन होते रहते हैं। इसी कविता के प्रभाव से प्रभावित होकर श्री शेवडे जी ने कालिदास और विह्लण आदि से प्रभावित होकर तीन महाकाव्य सहित अनेकानेक काव्य कृतियों का रचना कर डाली है महाकवि ने स्वयं कहा है -

कुलक्रमादीश्वर भक्ति भाजनं पुरस्कृतः पुत्रवद्द्रिकन्यया।

पार्थस्थितोविह्लणकालिदासयो. कविर्वसन्तो विदुषां वशंवद ।। निवेदनम् 5

श्री शेवडे जी ने कालिदास से ही ज्यादा प्रभावित होकर काव्यों और महाकाव्यों की रचना की है। कालिदास ने दो महाकाव्य कुमारसम्भव और रघुवंश लिखा तो शेवडे जी ने तीन महाकाव्यों -विन्ध्यवासिनी विजय, शुम्भवध और देवदेवेश्वर महाकाव्य आदि2

शुम्भवध महाकाव्य में श्री शेवडे जी की प्रतिभा पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हुई है। इसमें काव्य की समस्त विशेषताएं है जैसे - वर्णनचातुरी भावगाम्भीर्य कोमलपदन्यास एवं क्लिष्ट पदोपन्यास, अलंकारों का सुन्दर प्रयोग आदि।

वर्णन चातुरी :

महाकवि ने एक छोटे से भयानक शुम्भवध को समन्वित ढंग से प्रस्तुत किया है। उन्होंने माघ की तरह ज्यादा न तो बढ़ाया चढाया है और न ही कथानक में शिथिलता आने दिया है। इनकी विशेषता यह भी है कि इन्होंने माघ आदि की तरह मर्यादा का उल्लङ्घन नहीं किया है जैसा कि माघ ने वन विहार, जल बिहार, मद्यपान, रतिक्रीड़ा, सूर्यास्त और प्रभात वर्णन आदि में मर्यादा का अतिक्रमण किया है -

अम्भोधिविकसितवारिजाननोडसौमर्यादांसपदिविलङ् यांबभूव ।। शिशुपाल वध 8/6 ।।

कवि ने युद्ध वर्णन में भी बड़ी अद्भुत साहसिकता का परिचय दिया है -

मृतोऽसि सम्मूढ मम प्रहारं सोढ़ं न शक्नोमि वृथाप्रलापिनृ ।

कस्त्वं ममाऽग्रे मशको दुरात्मन्निति ब्रुवाणा उभये प्रजह्रुः ।। शु0व0 4/23

सामंजस्य :

इनके वर्णन में सामंजस्य पाया जाताहै जबकि माघ के काव्य में यमराज की शैय्या पर हाथी का मत्कुणत्व प्राप्त होना, रात्रि में भौरों का गुंजार करना आदि से असामंजस्य होता है।

परिहासात्मकता :

द्वितीय सर्ग में सेना के तैयारी में घोड़े, बैल आदि का चित्रण करना परिहासात्मता के लिए ही किया गया है।

वर्णन की सरलता :

शुम्भवध में वर्णन को सरल एवं सरस ढंग से प्रस्तुत किया गया है। मूढता का प्रदर्शन नहीं किया गया है।

अलङ्कार विधान :

अलङ्कार विधान में श्री शेवडे जी ने कालिदास और माघ की शैली का अनुसरण किया है। तीनों महाकाव्यों में अलङ्कार का प्रयोग किया है। विन्ध्यवासिनी विजय में तो अनुप्रास का प्रयोग ज्यादा किया है और उपमा

उत्प्रेक्षा आदि का भी प्रयोग किया है। वैसे देवदेवश्वर महाकाव्य में उतना अनुप्रास का प्रयोग नहीं किया है। अर्थान्तरन्यास का प्रयोग तो महाकवि ने अधिकांशत: किया है। अनुप्रासमथा नीपाः समीपाः कुटजद्रुमाणा काला प्रियाला स्तवकैः फलानाम्। शाला विशाला निविडस्तमाला जालानियस्मिन् लवलीलतानाम।।

विन्ध्यवासिनी वि0 1/8

सगलं सहबल्लवं सवत्सं सवृषं घोषमवेक्ष्य लब्धनिद्रम ।

स तु नन्दगृहं निरस्तबन्धं समुकुन्दः प्रविवेश मन्दमन्दम् ।। वि0वि0 14/18

रङ्गत्तरङ्गा मुदितान्तरङ्गा संस्पर्शमात्राद विहितत्रिभङ्गा ।

रेवाऽपि सेवाव्रतमाचरन्ती यत्पादनिर्णेजनमातनोति ।। वि0वि0 1/18 ।।

शुम्भवध में अनुप्रास :

श्येनो विहङ्गं नकुलो भुजङ्गं व्याघ्रः कुरङ्गं रथिकस्तुरङ्गम् ।

आक्रम्य शुम्भो वशं चकार स कान्यकुब्जाधिपतिं यथैव ।। शु0व0 4/46

स्तवमंजूषा में अनुप्रास द्रष्टव्य है -

कम्पातटकृतवासा शम्पाशतसमुज्ज्वला ।

सम्पादयतु कामांक्षी सानुकम्पामदीप्सितम ।। पीठा देवता0 । ।।

काली ताली वनश्यामा नाली कदलोचना ।

प्रोक्तापमपाकुर्याद् गौडदेश समाश्रया ।। पीठा0देवता स्तव ।।

इसी प्रकार इनके महाकाव्यो में उपमा, अर्थान्तरन्यास इत्यादि रसों का भी बहुतायत महाकवि ने उल्लेख किया है।

इसी प्रकार महाकवि ने गुण, रीति तथा प्रकृति चित्रण तथा छन्द योजना में भी अपना काव्य कौशल दिखाया है।

परिशिष्ट

(1) शुम्भ वध महाकाव्य का अन्य चित्रण :

शुम्भ वध महाकाव्य में महाकवि में सांस्कृतिक, सामाजिक, भौगोलिक, आदि चित्रण भी प्रस्तुत किया है। काव्यावलोकन से भिन्न बिन्दुओं पर विचार व्यक्त किया जा सकता है .-

(क) सांस्कृतिक चित्रण .

शुम्भ वध महाकाव्य में भारतीय परम्परा के आधार पर कार्य करना महाकाव्य में सांस्कृतिक चित्रण को प्रस्तुत करता है। शुम्भ-निशुम्भ का शुक्राचार्य को पुरोहित बनाना, उनकी नीति का पालन, उदार-जीवन और स्वाभिमान का निर्वाह किया जाना, त्रैलोकादि विजय से पहले वेदोक्त रीति से स्वस्त्ययन किया जाना, शुभ मुहूर्त और लक्षणों को दिखाना इत्यादि कार्य भारतीय संस्कृति के सांस्कृतिक आधार की पुष्टि करते हैं। कश्यप का ध्यान करके यात्रा करना आदि भारतीय संस्कृति के पोषक तत्व प्रदर्शित हैं।

जैत्र यात्रा- प्रस्थान के पहले शमी और अश्मन्तक आदि का पूजन नगर सीमा में प्रवेश के समय नागरिकों द्वारा अपने राजा का अभिनन्दन, स्त्रियों द्वारा लावे की वर्षा करना, राजसभा में शुम्भासुर की आरती उतारा जाना, तिलक किया जाना, तथा शुम्भ द्वारा उपहार भेंट किया जाना तथा पान इत्यादि को उपचारार्थ दिया जाना ये सभी भारतीय परम्परा के द्योतक हैं।

(ख) सामाजिक चित्रण :

शुम्भ वध महाकाव्य में समाज को बड़े सादगी से प्रस्तुत किया गया है। समस्त प्रजा शुम्भासुर का सम्मान करती है। ऐसा चित्रण पुराणों में नहीं है।

शुम्भासुर को प्रजा का हितैषी चित्रित किया गया है। जब वह त्रैलोक –विजय के लिए प्रस्था करता है तो रास्ते में आबालवृद्ध सभी निर्भय होकर आ जाते हैं। वह शुम्भ प्रजा के द्वारा किये गये प्रणाम को स्वीकारता हुआ और आर्शीवाद देता हुआ आगे बढ़ जाता है :–

नानादेशाम्यागतैः सार्थवाहैः पश्यन् व्याप्तां पण्यवीथिपुरस्य ।

अंङ्गीकुर्वंस्तत्कृतान् स प्रणामान् मन्दं मन्दं वन्दमानो जगाम ।।

शु.व. 3/5 ।।

ग्राम्या वृद्धा. शैशवस्था युवानः पर्यावव्रुः कौतुकात् प्रान्तदेशम् ।

3/22 ।।

अतः तृतीय सर्ग सामाजिक चित्रण को प्रस्तुत करता है ।

(ग) **स्त्री–चित्रण** :

श्री शेवडे जी ने महाकाव्य में स्त्री–समाज को बड़े सौहार्द्रपूर्ण वातावरण में दिखलाया है। स्त्रियाँ अपने मन की नहीं निकलती हैं। वे अट्टालिकाओं से ही शुम्भ और निशुम्भ को देखती हैं। खिड़कियों से झाँकते समय लगता है मानो वे कटाक्षों से कमलों की वर्षा कर रही हैं –

निर्यात्यस्मिन् पत्तनात् पौरनार्यो मध्ये मार्गं सौधवातायनस्था ।

कर्णाभ्यर्णस्पर्शिनेत्राः कटाक्षैश्चक्रुर्धारावृष्टिमिन्दीवरणाम् ।।

शु.व 3 ।।

अतः यहाँ पर स्त्रियों की सामाजिक दशा का वर्णन है। राजा प्रज का हितेषी प्रदर्शित है अतः कुलीन स्त्रियों में देखने की इच्छा होती है।

(घ) **सैन्य चित्रण** :

शुम्भासुर की सेना में, हाथी, घोड़े, ऊँट, खच्चर, बैल, भैंसा, सिन्धी घोड़े आदि का वर्णन किया गया है। जो मूलकथा में नहीं है। शुम्भासुर की सेना के माध्यम से महाकवि का सैनिक-ज्ञान के चित्रण को प्रस्तुत हो जाता है।

(च) **लोक चित्रण** :

लोक चित्रण तो ऐसा है जैसे कवि एक जगह खड़ा होकर आँखों देखा हाल कह रहा है। क्षेत्र वर्णन मनोहर है -

कारण्डवी. कलकलै' क्वणितैर्मराला, गुञ्जारवैर्मधुकरा विरूतैः शुकाश्च।
उत्खातवप्रणलया वृषभा नदन्तो, व्यातेनिरे जयरवं शरदागमस्य ।।

शु.व 2/29 ।।

क्षेत्रे निषद्य बहुवार तरोरधस्तात् स्त्रीभिः समेत्यकृषकमः मृयकम्बलेषु ।
आस्वादयन्त रूचिरन्नवयानालान् मूलोपदशमसकृनमधुरेक्षुदण्डान् ।।

शु व 2/31 ।।

आदायशालिकणिशं शिशवः शुकानां चञ्चुपुटेषु गगनं द्रुतमुत्तन्तः ।
केदारसीम्न्यजनयन् प्रतिषेधवानां हर्ष च सम्भ्रममुभौ कृषीवलानाम् ।।

शु. व 2/31 ।।

इसके माध्यम से कवि ने मनोरम चित्रण किया है।

(छ) **राजनीतिक चित्रण** :

जगह-जगह राजनीतिक प्रसंग प्रस्तुत करके महाकवि ने राजनीति का परिचय दिया है।

प्रथम सर्ग में शुक्राचार्य द्वारा राजनीतिक उपदेश, द्वादश सर्ग में देवी द्वारा निशुम्भ को फटकारना, षष्ठ सर्ग से देवी और वृहस्पति का संवाद आदि राजनीतिक चित्रण को प्रस्तुत करते हैं। जैसे – देवी का फटकारना –

तद्गच्छ तुच्छपरिपृच्छ गुरूं स्वीकीयं भूयस्ततश्चिरमधीश्र च राजनीतिम् ।।

शु व. 12/12 ।।

उपरोक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि शुम्भ वध महाकाव्य भी सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक आदि चित्रण से परिपूर्ण है।

(ज) **शुम्भ वध महाकाव्य में प्रकृति चित्रण** :

शुम्भ वध का प्रकृति वर्णन बड़े ही उदात्त ढंग से किया गया है। कहीं भी कठोरता का परिचय नहीं है। बड़ी ही सरस भाष का प्रयोग है। ज्यादा बढ़ाकर वर्णन नहीं है। एक साधारण, सार्थक वर्णन है। वर्षा के बाद शरद ऋतु का प्राकृतिक वर्णन भी मनोरम है जो लगभग 40 श्लोकों तक चलता है।

"वर्षावसानसमयक्रमामाश्रयन्ती साहायकंश्चयितुं शरदाजगाम ।।

शु.व. 2/12 ।।

तिम्यत्तमालमलिनैर्वलितैः समन्तान्निमुक्तमम्बरतलं परलैर्घनानाम् ।

विद्या,/गमादुदितरात्यगुणप्रकाशं रेजे तमोगुणविहीनमिवाऽन्तरङ म् ।'

शु.व. 2/1॰ ।।

वातायपुर्नविरतिंवनकेतकानां केकाखोऽपिशिखिनां न कटुत्वमाप ।

तारूण्यबाल्यदश्योरिव सम्बभासे प्रावृट्छरत्समयोः स तु सन्धिकालः ।।

शु.व. 2/15 ।।

शरद वर्णन का मनोरम वर्णन है :

सौदामिनी विबुधवारविलासिनीव

नृत्यं निधाय रूचिरं दिवि रंगःभूमौ ।

खिन्नाचिरं बिलसादिव शारदीयां

कादम्बिनीं जवनिकां द्रुतमाविवेश ।। शु व 2/20 ।।

शारदीय धूप से व्याकुल लोग आम के वृक्षों के नीचे बैठे हैं। तो धान के खेत में रखवाली करने शालि गोपियाँ जोर–जोर से गा रही है –

तापं विहन्तुमधिकं शरदातपस्य–

च्छायामुपध्नसहकार तरौः प्रपन्नाः ।

व्याधुन्वतीष्विव शिरांसि मुहुः प्रमोदा,

दुच्चैर्जगुः कलमपंगलिषु शालिगोप्यः ।।

।। शु.व 2/23 ।।

इन्दीवरेषु कमलेषु कुशेशयेषु

रक्तोत्पलेषु कुमुदेषु च हल्लकेषु ।

आस्वाद्य साधु मकरन्द रसं मिलिन्दा

मन्दायिता इव मदेन कलं जुगुञ्जुः ।। शु.व. 2/26 ।।

कारण्डवाः कलकलैः क्वणितैर्मराला

गुञ्जरवैमधुकरा, विरूतैः शुकाश्च ।

उत्खातवप्रवलया वृषभा नदन्तो

स्त्रीभिः समेत्य कृषका मृदुकम्बलेषु ।।

आस्वादयन्त रूचिरान्नवयावनालाम्

मूलोपदंशमसकृन्मधुरेक्षुदण्डान् ।। शु.व. 2/31 ।।

अन्य वर्णन ·

आपीनभारसुभगं च गवां कदम्बं

मन्दं चचार हरितासु वनस्थलीषु ।

गोपालकास्तचतले मिलिता वितेन्द्र –

र्वंशीनिनादमुखराणि दिशां मुखानि ।। शु.व 2/36 ।।

फुल्लानि पँङ्कजवनानि सरोवरेषु

प्राप्ताश्च मानस जलादपि राजहंसा· ।

वृत्तं निशम्य तदिदं पथि गन्धवाहा –

दम्याययुद्धिजगणा इव चञ्चरीकाः ।। शु. व. 2/38 ।।

अष्टम् सर्ग में बसन्त वर्णन वर्णनीय है –

प्रवर्तमानष्वसुरेषु सज्जितुं निशुम्भशुम्भादिषु युद्धकाँङ्.क्षया ।

चिरप्रसक्तं शैशिरं निवर्तपरं वसन्त आदेश इवऽगमद् भुवम् ।। शु व 8/4 ।।

चुकूर्दिरे वृक्षशाखासु वानरा हिमात्ययासंकुड़.चितॉड़.यष्टपः ।

शशा· कुरँङ्गा; गवया विहँङ्गमा. सुखं विचेरूस्तृणसकुङ्ले वने ।।शु.व 8/9 ।।

(झ) दार्शनिक चिन्तन ·

शुम्भ वध महाकाव्य में अनेकानेक भारतीय दर्शनों का प्रभाव मिलता है। दूसरे सर्ग में कहीं न कहीं कोई न कोई उपमा अवश्य दार्शनिकता की ओर प्रेरित करती है। जैसे –

तिम्यत्तमालमलिनैर्वलितैः समन्तान्निर्मुक्तमम्बर तलंपरलैर्घनानाम् ।

विद्याऽऽममादुदितसत्त्वगुणप्रकाशं रेजे तमोगुणविहीनामिवाऽन्तरँङ्.म्।।

।। शु.व 2/13 ।।

प्रकृतिं निगदन्ति कापिला जननि त्वां त्रिगुणात्मिका ।

परिणाममयं चराचरं सृजतीं लोहितशुक्लमेचकाम् ।। शु व 6/53 ।।

प्रलपन्ति जगदीश्वरं हिमवन्नन्दिनि येऽपिनास्तिका. ।

तव तेऽप्यनुमन्वते स्थितिं प्रतियोगिमुद्रया ।। शु व 6/54 ।।

प्रतिषेधतु देवविग्रहं जगतामीश्वरि जैमिनिर्मुनि: ।

न तव रूपमलंप्रबाधितुं परमब्रह्ममयात्मिके तव ।। शु व. 6/60 ।।

छिन्नं तस्यां शस्त्रजातं द्विषद्भिश्छिन्नं भिन्नं निष्फलंसम्बभव ।

वादारम्भे तार्किकाणां सभायां चार्वाकाणां युक्तिवादों यथैव ।। शु.व. 10/27 ।।

मायां वदन्ति भवतीं कतिचिद् विमूढा वेदान्तशास्त्रजनितं भ्रममावहन्त: ।

एका महेश्वरि सदातनसत्स्वरूपा शून्याकथं भवित कोटिचतुष्टयेन ।।

।। शु.व 14/5 ।।

त्वं सांख्यशास्त्रकथिता प्रकृति: सङ्.ख्यायसे कतिपययेर्जगदादिभूता ।

मन्यामहे तदपि जृम्भितमज्ञतायास्तादात्म्यम्ब जडचेतनयो: कथंस्यात् ।।

।। शु. व 14/6 ।।

साधारणं भवसि कारणमद्रिकन्येत्वं कार्यमात्रइतितर्कविदोवादन्ति । शु.व 14/8 ।।

(ज) **<u>तुरीय स्वरूप की सिद्धि</u>** :

गौरी समुल्लससि सत्त्वगुणप्रधाना, दुर्गाविराजसि रजोगुणमावहन्ती ।

काली तमोगुणमयी जगदम्बिका त्वं तुर्यापरिस्फरसि व्यात्व्यविचिन्त्यरूपा ।।

।। शु.व. 14/23 ।।

जितने भी शास्त्र है देवी के अनेकानेक स्वरूप ही है। इसी बात को आगे कहते हैं –

यच्छब्द तत्त्वमतिसूक्ष्ममनाद्यनन्तं

ब्रह्मात्मकं भवति किञ्चन शब्द शास्त्रे ।

तद्वैश्वरीप्रमुखवाक् – त्रितयातिरिक्तं

मातस्त्वमेव मुनिवृन्दसमधिगम्यम् ।। शु.व. 14/28 ।।

अनिवर्चनीयता, शून्यवाद का खण्डन :

नाऽसन्नसन्नसदसन्न च नो भयं ये,

तत्त्वं वदन्ति हि चतुष्टयकोटि हविम् ।

शून्यं जगन्निगदतां जगदम्बतेषां

शून्यं प्रमाण इति जीर्यति शून्यवादः ।। शु.व. 14/33 ।।

विज्ञानवाद और क्षणभंगुरवाद का खण्डन :

विज्ञानमेव सकलं क्षणिक ब्रुवन्ति

नेच्छन्ति बाह्यमिह केचन वस्तु जातम् ।

संस्कार संङ् क्रममुखानुवपत्ति दोषात्

सोऽयं महेश्वरि हतः क्षणभंङ्.गुरवादः ।। शु व. 14/34 ।।

शुम्भ वध महाकाव्य के माध्यम से बड़ी सरलता से वेदान्त का अनुपालन करते हुए सभी दर्शनों का खण्डन कर डाला है । उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि शुम्भ वध में परिमार्जित शैली शुद्ध, सरल एवं सरस पदावाली, अल्प सवागली का प्रयोग है –

प्रकृति चित्रण में , ऋतु वर्णन, हिमालय वर्णन और देवी की संस्तुतियों का वर्णन तो कहना ही क्या ?

(1) **प्रकृति का मानवीकरण** .

शेवडे जी ने ज्यादा हाव-भाव दिखाने का प्रयास नहीं किया है बल्कि एक बात कह आगे ही बढ़ने का प्रयास किया है। जैसे एक ही श्लोक में हिमालय वर्णन में एक-एक प्रसंग समाप्त हो जाते हैं :-

अमरीकबरी भरोपमं चलयन् वालधिमत्त कोमलम् ।
कुरूते चमरीगणः स्वयं कुतुकादस्य नगस्य वीजनम् ।। शु व. 6/9 ।।
परिवीजयितुं समागतः शितिकण्ठं मलयाचलानिलः ।
इह जह्नुसुतासमीरणात् स्वयमध्येति विलासचातुरीम् ।। शु व 6/13 ।।
गिरिताहृरगेहवासिनां लघुकौपीन जुषात पस्विनाम् ।
विरचय्य कुलायमात्मनो निवसन्त्यत्र जटासुपक्षिणः ।। शु.व 6/28 ।।

गंगा वर्णन में -

दुहितेव तुषारभूभृत. क्वचिदुत्संगतरे विहारिणी ।
गृहिणीव पयोनिधेरियं क्वचिदत्यन्तगभीरगामिनी ।। शु व. 6/35 ।।

(2) **कुशल रूप चित्रण** :

शुम्ना वध महाकाव्य में तो प्रसंगानुकूल रूप चित्रण प्रस्तुत किया गया है। शरद ऋतु में शरागमन, वसन्त के समय में वसन्त ऋतु का अधिकार सर्वत्र प्रदर्शित किया है जो ऋतु प्रसंग में दिया गया है।

(3) **अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग** :

शुम्ना वध में कवि ने अलंकार विधान उपमा प्रधान और अर्थान्तरन्यास प्रधान रखा है। ऐसा लगता है कि प्रसंगानुसार ये सभी अलंकार स्वयं ही प्रस्फुटित

हो गये हों। प्रथम सर्ग में अर्थान्तरन्यास की झड़ी लग गयी है। उपमा का प्रयोग तो इस कदर है कि अर्थान्तरन्यास और अन्य अलंकारों को भी कहीं -कहीं उपमा में ही व्यक्त किया है।

प्रकृति का उपकारक रूप :

महाकवि में प्रकृति को उपकारक रूप में प्रस्तुत किया है। शुम्भ वध के षष्ठ समासि में हवा स्वयं हिमालय की सेवा करता है। चमरीमणि (मानो) स्वयं पंखा चलाती हैं। वर्षा समाप्ति के बाद जब शरद् ऋतु आती है तो कवि को ऐसा लगता है मानों शरद रूपी राजलक्ष्मी की जैत्र यात्रा की तैयारीउसे सजाने के लिए आ गयी हो -

एवं तयोरसुनायकपोः प्रयत्नात्,

संसज्जतोस्त्रिभुवनगृह्णोद्यमाय ।

वर्षवसानसमयक्रमयाश्रयन्ती,

साहायकं राचयितुं शरदा जगाम ।। शु व 2/12 ।।

यहाँ शरद ऋतु स्वयं सहायतार्थ आती है । कमल और कदम्ब आदि के फूलों की सुगन्ध से मदमस्त वायु मानों कुरंग (रूपी फूल) पर सवार होकर आ पहुँचा है-

सम्पादयन् परिमलं नवमालतीनां

गृह्णन्प्रफुल्लविषमच्छदपुण्यगन्धम् ।

आमोदमग्नभृङ्गकदम्बभरं विवृण्वन्

मन्दानिलो भुवि कुरंड्.गभृच्चार ।। शु.व. 2/26 ।।

काशा के फूल के बहाने मानो द्विजपति शरद का फूल फैला रहे हो–

निर्मोचितो द्विजपतिर्जलदीपरोधा –

न्नीतानि नाशमवतीर्य च दुर्दिनानि ।

तेनैव काशकुसुमस्तबकच्छलेन

कीर्णानि दिक्षु विबभुः शरदो यशांसि ।। शु व 2/35 ।।

उधर शुम्भासुर देवी के युद्ध करने के लिए तैयार हो रहा है तो इधर मदन वान्धव त्रिलोक जीतने के लिए वायु आ पहुँचा –

करम्बित. सान्द्रमरन्दबिन्दुभिर्विकस्वराम्भोरूगन्धवन्धुर ।

जगत्त्रयी तेजुमिबं प्रयास्यतो बकौ नभस्वान् मनस्य वान्धवः।। शु.व 8/8/25 ।

(5) **सरल एवं स्वल्प समास युक्त रचना :**

शुम्भ वध में सरल एवं स्वल्प समास वाले पदों का ज्यादा प्रयोग है। लम्बे समासों की रचना नहीं है और न ही क्लिष्ट पदों का प्रयोग है बल्कि सुस्पष्ट एवं सरल और पढ़ते ही समझ में आने वालों को कम प्रयोग है जैसे– धूम्रलोचन शुम्भासुर से कहता है :

अहं प्रभो क्षुद्रतमोऽपि सेवकस्तव प्रसादाद् वशमानयामिताम् ।

हरेः प्रसर्पन् गिरिकन्दरान्तरे प्रतिस्वनोऽपि प्रणिहन्तिकुञ्जरान् ।।

।। शु.व. 8/40 ।।

क्वचिद्गृहोद्यानगते महीरूहे निबध्य दोला दृढरज्जुकल्पिताम्

क्रमादहंपूर्विकाया प्रचक्रिरे चिराय न्दिोलविलासमंगड्.नाः ।। शु व. 8/34 ।।

अस्त्र शस्त्रं चाऽधिकाड.गं शिरस्त्रं गात्रात् सद्यो वारबापं तिमुच्चय ।

अध्वाक्लान्ता धूसराः पांशुयोगाद् योधाकेचिन्निम्नगां स्नातमीयुः ।।

।। शु व 3/32 ।।

(6) **जनसामान्य के आधार पर लोक चित्रण** :

शेवडे जी ने शुम्भ बध में जनसामान्य के आधार पर लोक चित्रण किया है। जैसे – तृतीय सर्ग में जब शुम्भासुर सेना लेकर जैन यात्रा के लिए प्रस्थान करता है तो दृष्टि क्षेप द्वारा पौर वृद्धों को सम्मानित करता हुआ वह आकाश में चन्द्रमा जैसे लग रहा था –

शृण्वस्तासां पौरसीमन्तिमीनां मुग्धस्निग्धां सानुरागां च वाचम् ।

दृष्टिक्षेपैर्मानयन् पौरवृद्धान् राजेवाऽभ्रेस्पन्दनस्थोरराज ।। शु व 3/4 ।।

ऊँट तो हँसी के पात्र बन गये –

मार्गस्थानां बर्बुरादिद्रुमाणां मध्ये स्थित्वा कष्टकान् भक्षयन्त ।

दीर्घग्रीवा वक्रगत्या चलन्तः प्रायो जाता हास्यपात्र महाड्.गन्/ ।।

।। शु व.:3/16 ।।

वक्रग्रीवो लम्बमानाधरोष्ठः प्रोन्नतपृष्ठो ह्रस्वकर्णोमहाड्.गः ।

पादक्षेपैः कुत्सितैर्ढौकमानो ग्रामीणानां हासयामास बालान्।। शु.व. 3/24 ।।

इन्द्रधनुष नहीं दिखाई दे रहा है फिर भी रात्रि अच्छी लग रही है ।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शुम्भ वध महाकाव्य एक सरल भाषा में प्रस्तुत महाकाव्य है। जिसमें सुन्दर अलंकारों, छन्दों, रसों और प्रकृति का साधारण सचित्रण दिखाई देता है।

(2) **शुम्भ वध महाकाव्य में अन्य वैशिष्ट्य** :

शुम्भ वध महाकाव्य के अध्ययन से कुछ गुण दृष्टि पथ पर आते हैं। जैसे – "कुमार सम्भव" और "नैषध", और "किरातार्जुनीयम्" की तरह कथानक को बोझिल होने से बचाया गया है। जैसे कि माघ ने शिशुपाल वध में 3 से 12 तक स्नान, सुन्दरी, वन विहार आदि का ऐसा वर्णन किया है कि कथा का सूत्रपात ही टूटा हुआ या भूला हुआ सा लगता है –

(1) **नीतिगत एवं उपदेशपरक कथनों का लक्ष्य** :

शुम्भ वध का प्रारम्भ ही (मंगलाचरणादि के बाद) में शुक्राचार्य के द्वारा नीतिगत कथनों से ही शुम्भ–निशुम्भ को समझाया जाता है। बीच–बीच में भी कई स्थल ऐसे हैं जो सूक्तियों और सुभाषितों से युक्त है। ये सूक्ति परक श्लोक निम्न है :–

(1) स्नातानुलिप्ता असुरा उपेत्यरिक्तां कलाशीमपश्यम् ।
जागर्ति लोके भणितिः प्रसिद्ध विलम्बिना केवलमस्थिलाभ ।।[1]

(2) जघान वृत्तासुरमिन्द्रशत्रुं तपस्तपन्तं विपिने महेन्द्रः ।
कुर्वन्ति लक्ष्मीममिलष्यमाणाः प्राणो महान्तोऽप्यपथे प्रवेशम् ।।[2]

शु.व 1/23, 2/33

इसी प्रकार अन्य –

(1) स्तम्बेरमं हीनवलंवशेव क्षमाभृतं लं विजहाति लक्ष्मी : ।।[1]

(2) उपेक्षितः कष्टकवत्प्रमादात् तुच्छोऽपि जन्तुर्जनयेदपायम् ।।[2]

अन्य सूक्तियाँ

(1) नाऽमीप्सितेषु मतिमान् सहते विलम्बम् । ।। 2/7 ।।

(2) संस्थापितानि महतामिव मानसानि ।। 2/25 ।।

(3) माभूद् विलम्बो विजयप्रसङ्गे जयत्त्वयस्येति हृदाविभाव्य ।

यथोचितं नित्य विधिं समाप्यशुम्भः ससैन्यः पुरुतः प्रतास्थे ।। 4/5 ।।[3]

(2) **अनुष्टुप छन्द रहित महाकाव्य** :

शुम्भ वध महाकाव्य ऐसा महाकाव्य है जिसमें कहीं भी किसी जगह पर [illegible] भी अनुष्पटुप छन्द का प्रयोग नहीं हुआ है। इन्द्रवज्रा छन्द से प्रारम्भ होकर पुष्पिताग्र छन्द में महाकाव्य समाप्त होता है। जबकि कालिदास ने भी अपने महाकाव्यों में अनुष्टुप का प्रयोग किया है।

अतः शुम्भ वध में अनुष्टुप का प्रयोग न होना भी अपने में मायने रखता है।

---

1. शु व. 1/38, 39 (2) वही, 1/40

(3) वही, 2/1, 25, 4/5

(3) दीर्घ समास एवं जटिल पदों से रहित महाकाव्य :

शुम्भ वध महाकाव्य में दीर्घ समासों का प्रयोग नहीं हुआ है और न ही श्रुति, कटुत्व आदि जैसे दोषों से युक्त पदों की रचना हुई है। बल्कि, स्वल्प समास या समास रहित रचना वाले पदों का प्रयोग हुआ है जिससे काव्य के पढ़ने में रोचकता आ जाती है । अर्थ बड़ी आसानी से निकलते आते हैं, जबकि श्रीहर्ष की नैषध जैसी रचना के कुछ श्लोकों को तो बिना टीका के पढ़ाना ही आसान नहीं है। इसमें भी कालिदास का ही अनुवर्तन किया है।

(4) उपमा, अर्थान्तरन्यास और परिकर अलङ्कार पर अधिक बल :

"उपमा कालिदासस्य" इस कथन से प्रभावित होकर शेवडे जी ने शुम्भ वध में लगभग 60% श्लोक उपमा अलङ्कार में ही रचा है। कहीं–2 तो अन्य अलङ्कारों के बाद भी उपमा, परिकर एक ही श्लोक मिल जाता है। यमक का प्रयोग 2 या 3 श्लोकों में है। अतः "उपमा बसन्तस्य" इस कथन को चरितार्थ करने का मन बना डाला ।

(5) निष्पक्ष वर्णन :

आज तक जितने भी महाकाव्य लिखे गये अधिकांश में देवताओं को श्रेष्ठ और दैत्यों को हीन बताया गया है, परन्तु शेवडे जी ने शुम्भ वध में शुम्भ और निशुम्भ जैसे दैत्य सम्राट को उज्जवल चरित्र एवं साफ सुथरी छवि वाला प्रति नायक प्रस्तुत किया है। देवी भागवत का शुम्भ दैत्य कुल के अनुसार गर्व से [illegible] है परन्तु शुम्भ वध का शुम्भ भागने वाले पर वार नहीं करता, हारे हुए को क्षमा कर देता

है, हिन्दू परम्परा और वैदिक परम्परा और वैदिक पूजन के बाद हिन्दू परम्परा अनुसार आक्रमण करके जीतता है। देवता जी विजय के भी वह अत्याचार नहीं करता, वह तो अन्य दैत्यों के अत्याचार के कारण और शुक्राचार्य की नीतियों को भूलकर ही पराभव को प्राप्त होता है। अतः यह उच्च गुणों वाले दैत्यो के चरित्र की स्थापना शुम्भ वध की महान विशेषता है।

(6) **भक्तिमय महाकाव्य** .

विन्ध्यवासिनी विजय से कहीं ज्यादा भक्ति भावना से ओत-प्रोत महाकाव्य है। इस महाकाव्य में शुरू से ही भक्ति भावना से युक्त महाकाव्य है। यह सर्ग 14 पूरा भक्ति काव्य है। छठे सर्ग में भी देवताओं द्वारा गंङ्गा और माँ जगदम्बा की स्तुति प्रसङ्ग है। अतः यह महाकाव्य दुर्गा सप्तशती की ही भाँति भक्ति मय और कल्याण कारक है। देवी चरित्र का गान करके कवि का भी जीवन सफल हो गया।

(7) **आपाणिनीय प्रयोग से रहित** .

शुम्भ वध में इतना ध्यान अवश्य रखा गया है कि उसमें अपाणिनीय प्रयोग नहीं किया गया है। उन्हीं शब्दों को रखा गया है जो कसौटी पर खरे उतरे।

इस प्रकार शुम्भ महाकाव्य अनेकों गुणों से युक्त महाकाव्य है।

महाकाव्य में न्यूनता :

गुण और दोष एक सिक्के के दो पहलू हैं। जहाँ गुण रहता है वहाँ दोष भी होता है। हिमालय महान गुणों वाला होता हुआ भी हिम का क्षय (हिमालय) या बर्फ का पिघलना एक दोष ही है।

अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिमं न सौभाग्य विलोपि जातम् ।

एको हि दोषो गुण सन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्क. ।।[1]

इसी बात को शेवड़े जी ने शुम्भ वध आदि में लिखा है –

गृह्णन्तु काव्येऽपि तथा मदीये दोषानपाकृत्यगुणान् भवन्त. ।।[2]

न निर्गुणं किञ्चन वस्तु लोके न वा भवेत् किञ्चिदपेतदोषम् ।

गुणानुरागी समुपेक्ष्य दोषानभीप्सितं सादरमाददाति ।।[3]

अभिनव मेघदूत में शेवडे जी ने लिखा है –

दोषान् परित्यज्य गुणान् गृहीत्वा परिश्रमं में सफल विदध्युः ।। नि0 10 ।।[4]

शुम्भ वध महाकाव्य का अध्ययन करने से पता चलता है कि आज के युग में जब संस्कृत के नये कवियों का मिलना दुर्लभ हो रहा है। ऐसे में "शेवडे" कुलोत्पन्न लक्ष्मण त्रयम्बक शेवडे के पुत्र श्री वसन्त त्रयम्बक जी ऐसे पुत्र हुए जिन्होंने अपनी वाणी में कवित्व प्राप्त किया और तीन महाकाव्यों सहित अनेकानेक रचनाओं का प्रवचन कर डाला और कुछ अप्राप्य एवं कुछ अधूरी रचनाओं को छोड़कर इस भव सागर से चल बसे।

---

1. कु0सं0 1/3 (2,3) शुम्भ वध –1993 में चौखम्भा वाराणसी द्वारा प्रकाशित।

4 अभिनव मेघदूत – 1990 में चौखम्भा से प्रकाशित ।

इतनी स्पष्ट एवं अनेकानेक गुणों से परिपूर्ण होते हुए भी शुम्भ वध महाकाव्य में कुछ दोष निम्नलिखित है :-

(1) <u>महाकाव्य लक्षणों की न्यूनता</u> :

महाकवि ने पूर्णतया कालिदास के पद चिन्हों का अनुवर्तन किया है। क्योंकि इनके द्वारा रचित "विन्ध्यवासिनी विजय महाकाव्य" पर संस्कृत अकादमी द्वारा "कालिदास" का पुरस्कार दिया गया है। परन्तु कालिदास की पराकाष्ठा अलग ही है। कालिदास कालिदास ही हैं। मुख्यतः कालिदास भारवि, माघ जैसे महाकवियों के जैसे गुण शुम्भ वध में दिखाई नहीं पड़ते, जैसे -

(1) महाकाव्य के लक्षणों में जो चर्तुवर्ग का वर्णन और किसी एक फल की प्राप्ति यही शीर्षक भी पूर्णतया स्पष्ट नहीं है। इसमें कवि द्वारा कहीं भी संकेत नहीं है।

(2) दुर्जन निन्दा या सज्जन प्रशंसा जैसे शीर्षक अन्य कवियों ने अलग से रखा है चाहे बीच में ही क्यों न हो परन्तु शुम्भ वध में थोड़ा सा झलकता है जब शुरु में शुक्राचार्य देवासुरों की कथा बताते हैं। चाहे आप उपदेश माने या अन्य ।

(3) कालिदास और भारवि माघ जैसे विद्वानों ने जहाँ सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, सागर, पुत्र, उदल आदि के वर्णन में एक या दो सर्ग लगा दिया है। उस प्रकार के प्रसङ्ग मात्र संकेत के द्वारा एक ही श्लोक में समाप्त हो गया है जैसे- दरिया में उफान आते ही बैठ गया हो।

(4) ऋतुओं के वर्णनों में कहीं तो केवल "नाम" माना है, पदर्शित कर वर्णन आगे बढ़ा दिया गया। जैसे – शुम्भ वध में वर्षा वर्णन, ग्रीष्म वर्णन हीं नहीं के बराबर है केवल "नमन् मस्त" "वर्षावसानसमये" या "ग्रीष्मताप" इतना कहने मात्र से वर्णन समाप्त हो गया है।

(5) कहीं पर "विवाह" लक्षण और पुत्र जन्म आदि लक्षण आया ही नहीं है, "उदय" आदि भी स्पष्ट नहीं है।

(2) **रसों में न्यूनता** :

जहाँ रसों का प्रश्न है तो शुम्भ वध में वीर रस प्रधान है शेष अड्.गी है, परन्तु कहीं पर श्रृंड्.गार रस नहीं के बराबर है। माना कि महाकवि घोर विलासिता से टूट रहे हैं और अविवाहित भी रहे हैं। अगर उन्होंने मर्यादित महाकाव्य की रचना की तो बहुत अच्छी बात है फिर भी किसी न किसी रूप से इन्हें न सम्भोग श्रृड्.गार के न सही विप्रलम्भ श्रृड्.गार के कुछ प्रसड्.ग देना चाहिए था। सुन्दरियों का वर्णन भी न के बराबर है। शान्त रस तो महाकाव्य में है ही नहीं। अगर भक्ति को भख न मानकर अगर हिन्दी के कवियों की भाँति अगर भक्ति को रस मान लिया जाय तो हो सकता है कि इनके मनोरथ की पूर्ति हो जाय।

(3) **गुणों में न्यूनता** :

शुम्भ वध के अध्ययन से पता चलता है कि इसमें गुणों के प्रदर्शन में भी कुछ न्यूनता है। जैसे कुछ स्थल ऐसे हैं जो जहाँ लक्षण तो पूरे के पूरे माधुर्य से मिलते हैं फिर भी वे प्रसाद गुण से भले ही जाते हैं । यदि ओज गुण से युक्त हो

जाते हैं। क्योंकि माधुर्य में वही होगा जहाँ श्रृङ्गार रस होगा, इस शर्त पर वहीं माधुर्य प्रसाद में बदल जाता है क्योंकि प्रसाद गुण सर्वत्र माना जाता है। इससे साफ झलकता है कि कवि ने केवल प्रसङ्ग को आगे बढ़ाने का ज्यादा कार्य किया है।

(4) **प्रकृति चित्रण में न्यूनता :**

शुम्भ वध के अध्ययन से पता चलता है कि इसमें प्रकृति चित्रण करने में भी शीघ्रता दिखाया गया है। वन–विहार, जल क्रीड़ा, नदी–स्नान, पर्वत विहार आदि का वर्णन न के बराबर है। क्योंकि यदि महाकवि चाहते तो जब शुम्भासुर शमी पूजन के लिए वन में जाता है तो वहाँ पर ये सभी जो वर्णन होना चाहिए था उसे ये अच्छे रङ्ग से प्रदर्शित कर सकते थे, परन्तु पूरा का पूरा प्रकृति दर्शन ही हटा दिया है।

ग्रामीण चित्रण भी मन को आकर्षित नहीं कर पाता। कवि ने अपनी सारी प्रतिभा युद्ध को ही लक्ष्य करके किया है।

(5) **वर्णन में अतिसंक्षिप्तता :**

शुम्भ वध महाकाव्य का वर्णन अति संक्षिप्त किया गया है। मात्र कथानक पर कथा पर ही ध्यान दिया गया है। देवी भागवत में शुम्भासुर की कथा 12 अध्यायों (673 श्लोक) की पाँचवे स्कन्ध में वर्णित कथा को मात्र 14 सर्गों में 816 श्लोक में रख दिया। यही अतः वर्णन में अति संक्षिप्तता की गयी है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि शुम्भ वध महाकाव्य में कुछ कमियाँ अवश्य हैं। फिर आज के युग में एक ऐसे महाकवि पैदा हो गये जो कालिदास से ही प्रेरणा लेकर ही सही महाकाव्य रचने का मन तो बनाया और 3–3 महाकाव्य तथा अनेकानेक रचनाओं को ललित, सुन्दर एवं सरस पदों रचकर लोक सेवार्थ प्रस्तुत कर दिया। अतः यह दोष महाकवि के अपार आत्म–समर्पण को भाव" वाले गुण में तिरोहित हो जाता है।

*****

महाकाव्य में प्राप्त महत्वपूर्ण सूक्तियाँ

1 जागर्ति लोके भणितिः प्रसिद्धा विलम्बिनां केवलमास्थिलाभः ।।शु व 1/23 ।।

2 स्वल्पोऽपि किं वह्निकणो वनेषु दवात्मना न प्रसरीसरीति ।। शु व. 1/24 ।।

3 उपस्थिते हन्त विनाशकाले मतङ्गजं हन्ति पिपीलिकाऽपि ।। शु व 1/27 ।।

4 कुर्वन्ते लक्ष्मीमभिलष्यमाण प्रायो0 महादेऽप्यपये प्रवेशम् ।। शु व. 1/33 ।।

5 उपेक्षितः काष्कवत्प्रमादात् तुच्छोऽपि जन्तुर्जनपेदपायम् ।। शु.व 1/44 ।।

6 नश्यते् स राजा स्वयमेव नूनं नोत्पद्यते यस्य जनानुरागः ।। शु व 1/46 ।।

7 लक्ष्मी. प्रभुत्वमविवेकिता वयो नव्यं न कस्य विकरीकरोति मानसाम्
।। शु व 1/58 ।।

कुछ महत्वपूर्ण उपदेशपरक कथन

1 धराभुजः नीतिपरायणस्य जयैषिणो विक्रममण्डितस्य ।
अनङ्.गरङ्.गे निपुणस्य यूनः प्रयाति कान्तेव वशं जयश्रीः ।। शु.व 1/38 ।।

2 नश्यन्ति सन्तोषगृतः क्षितीशा द्विजा असन्तुष्टतयेव तूर्णम् ।
मूलं श्रियः कर्तुभीप्सिताया बुधा अनिर्वेदमुदाहरन्ति ।। शु व 1/39 ।।

3 अविक्रमम् पार्थिवनीतिहीनं पदं परं पैतृकमाश्रयन्तः ।
स्तबेरमं हीनबलं बशेव क्षमाभृतं त्वं विजहाति लक्ष्मीः ।। शु व 1/40 ।।

4 तन्वन्न्मुपायाँश्र्चतुरो यथावन्निर्वर्तयेत् यो व्यवहार जातम् ।
स्वाभाविकीं चञ्चलतामपास्य तस्मिंश्रि्चरं राजति राजलक्ष्मी.।।शु.व.1/41 ।।

5. बलाबले साधु विचार्य युक्त्या समं सभायां निपुणैरमात्यैः ।
कुर्वीतवैयाकरणोपमेयः सन्धिंतथा विग्रहमात्मनीनम् ।। शु.व. 1/42 ।।

6. चण्डान्नृपादुद्विजते हि लोको मृदुं पुनर्नाद्रियते तमेव ।
अतः क्रमं मध्यममादधीतश्रितो विवस्वानिव मीनराशिम् ।। शु.व. 1/43 ।।

7 नियुज्यचारान् विषये स्वकीये तथा परेषामपि पार्थिवानाम् ।
विद्यादुदन्तं सकलं नृपालो यथार्थवर्णाविकलो यतोऽन्धः ।। शु व 1/45 ।।

8 अन्नानि भोज्यं न परीक्ष्य किञ्चिन्न कामिनीं वा रभसादुपेयात् ।
विशेषनाशं विषकन्यया वा प्रत्यर्थिभूपैर्बहवोऽपि नीताः ।। शु व 1/46 ।।

9 बहिः स्थितात्छन्न जनानेकानेकोऽति शेते सदनान्तरस्थः ।
दधाति तापं बहुवानलेन यथा सरस्वान्न तथाऽर्कपादैः ।।शु व 1/49 ।।

10 मदः सुराया इव सम्पदोऽपि बलात्समग्रं हरते विचारम् ।
विचारशून्यस्य कुतो विवेको विवेकहीनो भजते विपत्तिम् ।। शु व 1/50 ।।

11 यत्पाटवं प्रहरणादिषु दानवानां, बाह्वोर्बलं यदपि तत्प्रकटत्वमेतु ।
विद्यावतामिव विवादपदे सभायामायोधने भवति शस्त्र भृतां परीक्षा।।
।। शु व 2/51 ।।

12 तेजोराशिः सार्वभौमाणो ग्रहाणां निस्तेजभो यद्दिवः सम्पपात् ।
नैतच्चित्रं नो महिष्ठोऽपि यायात् पातका किं वारुणी सेवनेन ।। शु.व. 2/51 ।।

13 विना कलङ्कंन विभाति चन्द्रमा न षष्टपदेनाऽपि बिना महोत्पलम् ।
खलं विना न क्षिति रक्षितुः सभा वसन्तकालो न वियोगिनां विना ।।
।। शु.व.8/29 ।।

14. विना वसन्तं तुहिनांशुना विना वृथाभवेत् पञ्चशरस्य पौरूषम् ।
ससमृद्धकोशेन विना विना बलं जगज्जिगीषोः पृथिवीपतेरिव ।। शु.व.8/31 ।।

उपसंहार :

साहित्य, शिक्षा और ज्ञान का अन्त नहीं होता है, जितना हम किसी भी क्षेत्र मे आगे बढते है, उतनी ही गहराई मे प्रवेश करते जाते है । अपनी बुद्धि, विवेक एवं कौशल के अनुसार हमने शुम्भवध महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन किया है । महाकवि के हर पहलुओं पर गहन विचार कर के अपने ज्ञानानुसार कहीं पर कोई त्रुटि न मिलने का प्रयास किया है । वसन्त त्रयम्बक शेवडे जैसे सस्कृत साहित्य के ऐसे प्रथम कवि है जिनका जीवन परिचय स्पष्ट रूप से उपलब्ध होता है जिसे हम पहले कह चुके हैं । पूर्व के अध्यायों मे क्रमानुसार जीवन परिचय, महाकाव्य से सम्बन्धित कथानक और उनका प्रयोजन, अपने अड्गो सहित नाट्य सन्धियों को तर्क सहित सिद्ध किया गया है । इसी प्रकार पात्र परिचय, अलङ्कार, छन्द, गुण, रीति, वृत्ति तथा रसादि का विवेचन प्रस्तुत करते हुए महाकवि के काव्य कौशल और महाकाव्य की अन्य अनेक विशेषताओं को प्रस्तुत किया गया है ।

प्रस्तुत शोध - प्रबध मे प्रस्तुत समीक्षात्मक विवरण को ही पूर्ण मान कर अवसान कर देना नितान्त भ्रम मे पडना ही होगा । वास्तविकता तो यही है कि साहित्य और ज्ञान का कोई अन्त नहीं है, उसमे भी सस्कृत का साहित्य और वह भी किसी कवि की कल्पना प्ररोह युक्त रचना हो तब तो और कठिनाई आती है, क्योंकि कोई भी कवि कहाँ पर किस समय क्या अभिव्यक्त करना चाह रहा होता है, यह कोई भी नहीं स्पष्ट कर सकता है । यदि कोई अगर डींग मार कर कहे कि ज्ञान हो जाता है, तो उसकी गर्वोक्ति ही होगी ।

अत अन्त में हम अपने सभी श्रेष्ठ गुरुजनो के चरणाम्बुज का ध्यान करते हुए परब्रह्म परमेश्वर का स्मरण करते हुए यहीं पर अपनी लेखनी को विराम देते है । जो भी कमियाँ अथवा त्रुटियाँ रह गई होगी अथवा त्रुटियाँ उत्पन्न हुई होगी , उसके लिये कोटि - कोटिश. क्षमा प्रार्थी है ।

क्व च ज्ञान सम्पन्ना कवि वाणी भारती,
क्व च अज्ञान सम्पन्ना अतिमन्दा वा मति ।
तयोर्द्वयो· समता क्व यत् किञ्चित्गदितमया
एत्सर्वं न मया, गुरुप्रभावेण प्रदर्शित ।।
जयति देवी नगेन्द्रकन्या जयति देवो महेश्वर ।
जयति गिरिजा यश· प्रबन्धा गिरिलो शान-प्रबन्ध ।।
"अक्षर ! परमब्रह्म ! ज्योतिरूपाय सनातन ।
निर्गुणाय गुणातीताय अच्युताय नमो नम ।।
आद्याशक्ति स्वरूपाय परमाह्लाद कारिणे ।
समासक्तउभोरूपं राधाकृष्ण नमाम्यहम्" ।।भ०भा०।।

शोधकर्ता-

(प्रेम शकर मिश्र)
एम. ए "सस्कृत"
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद ।

****